ग्रामीण विकास को समर्पित

कुरुक्षेत्र

वार्षिक मूल्य : 100 रुपये

वर्ष 54 अंक : 4 फरवरी 2008 मूल्य : 10 रुपये

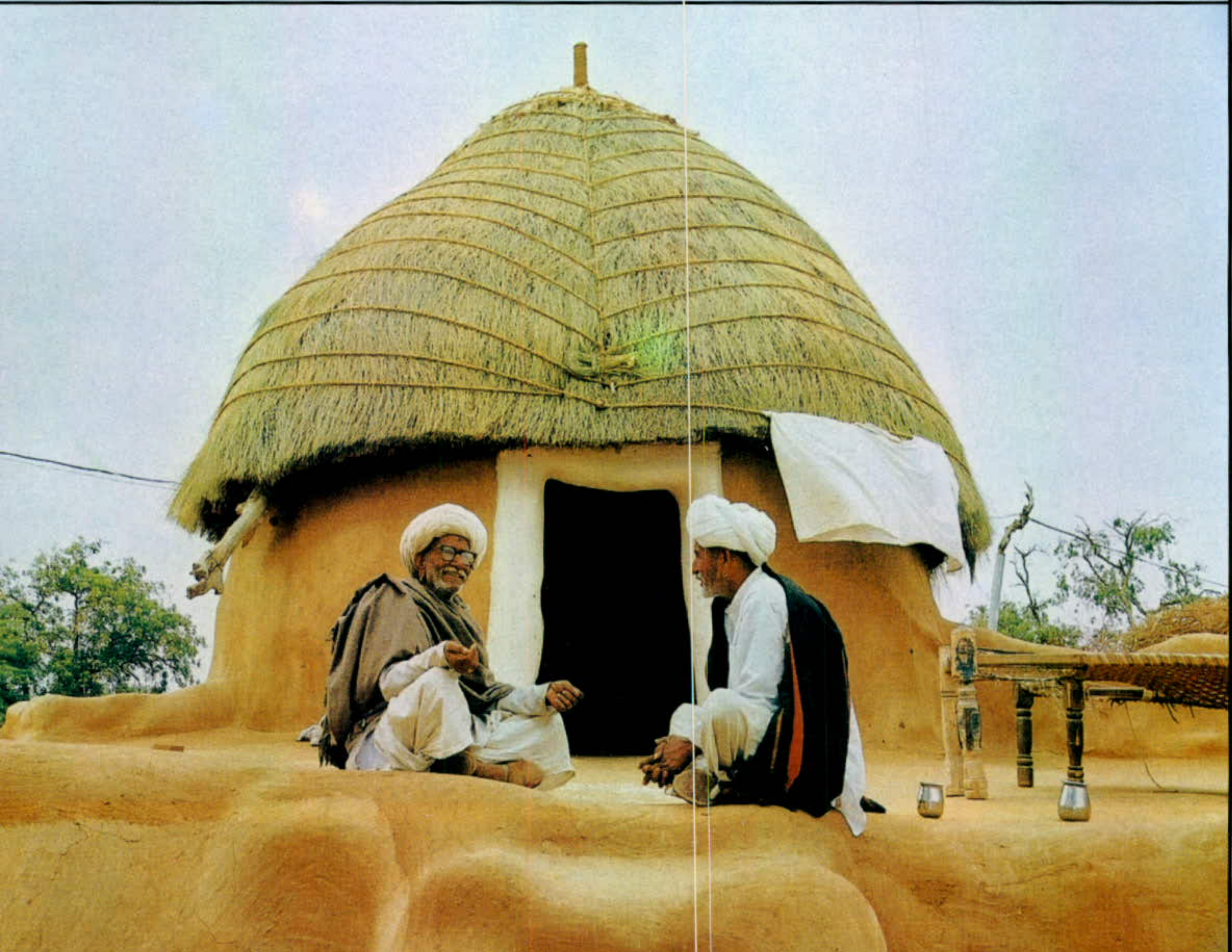

ग्रामीण गरीबी और रोजगार

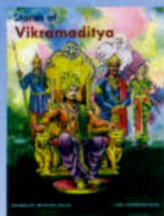

प्रकाशन विभाग की ओर से घरेलू पुस्तक योजना की शुरूआत

विश्व पुस्तक मेले (2 से 10 फरवरी 2008) के मौके पर पुस्तक प्रेमियों के लिए सुनहरा अवसर

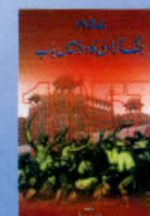

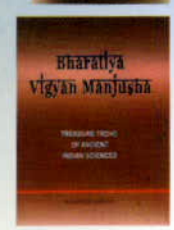

विशेष आकर्षण :

1. केवल 100 रुपये देकर वार्षिक सदस्यता प्राप्त करें।
2. प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित किसी भी पत्रिका का तीन वर्ष के लिए ग्राहक बनने पर वार्षिक सदस्यता केवल 50 रुपये में प्राप्त की जा सकती है।
3. सामान्य छूट के बाद सौ रुपये या उससे अधिक की पुस्तकें खरीदने पर 20 प्रतिशत की विशेष छूट दी जाएगी।
4. सामान्य छूट के बाद पांच सौ रुपये या उससे अधिक मूल्य की पुस्तकें खरीदने पर सदस्य को 25 रुपये मूल्य की पुस्तकें/पत्रिकाएं उपहार में दी जाएंगी।
5. सभी सदस्यों को प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की सूची निःशुल्क दी जाएगी।
6. यह योजना देश-भर में केवल प्रायोगिक तौर पर शुरू की जा रही है।
7. प्रकाशन विभाग समाचार पत्रों में विज्ञापन के जरिए एक महीने का नोटिस देकर इस योजना को समाप्त कर सकता है।

सदस्यता फार्म तथा अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें–

व्यापार व्यवस्थापक
प्रकाशन विभाग
सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्पलेक्स,
लोदी रोड, नई दिल्ली – 110 003

फोन : 26100207, 26175516
फैक्स : 011–2436 5609
ई –मेल : dpd@sb.nic.in, dpd@mail.nic.in
वेबसाइट : www. publicationsdivision.nic.in

DPD / HL -1/08

KH-01/08/05

वर्ष : 54 ★ मासिक अंक ★ पृष्ठ : 48
माघ–फाल्गुन 1929, फरवरी 2008

सम्पादक
कैलाश चन्द मीना
संपादकीय पत्र–व्यवहार
संपादक, कुरुक्षेत्र
कमरा नं. 655/661, 'ए' विंग,
गेट नं. 5, निर्माण भवन
ग्रामीण विकास मंत्रालय
नई दिल्ली–110011
दूरभाष : 23061014, 23061952
फैक्स : 011–23061014, तार : ग्राम विकास
वेबसाइट : Publicationsdivision.nic.in
ई–मेल : kuru.hindi@gmail.com

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
एन.सी. मजुमदार

व्यापार प्रबंधक
जगदीश प्रसाद
दूरभाष : 26105590, फैक्स : 26175516
ई–मेल : pdjucir_jcm@yahoo.co.in

आवरण एवं सज्जा
संजीव सिंह और रजनी दवे

मूल्य एक प्रति	:	10 रुपये
वार्षिक शुल्क	:	100 रुपये
द्विवार्षिक	:	180 रुपये
त्रिवार्षिक	:	250 रुपये
विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)		
पड़ोसी देशों में	:	530 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में	:	730 रुपये (वार्षिक)

कुरुक्षेत्र

इस अंक में

★ कृषि में रोजगार के बढ़ते अवसर	डॉ. सुधीश कुमार पटेल	4
★ ग्रामीण गरीबी एवं रोजगार के बदलते स्वरूप	जवाहरलाल गुप्ता	8
★ ग्रामीण रोजगार में हस्तशिल्प उद्योग का योगदान	डॉ. उमेश चन्द्र अग्रवाल	13
★ घटती निर्धनता और रोजगार के बढ़ते अवसर	डॉ. ऋतु	19
★ ग्रामीण क्षेत्रों में ईंधन की समस्या और समाधान	डॉ. दिनेश मणि	22
★ कमजोर वर्गों के लिए कल्याणकारी योजनाएं	अखिल कुमार मिश्र	24
★ भारतीय गांव प्रगति के पथ पर	डॉ. बद्री बिशाल त्रिपाठी	29
★ चीनी उद्योग की समस्याएं और समाधान	डॉ. नरेन्द्र पाल सिंह	33
★ कृषि विकास में लघु सिंचाई संसाधनों का महत्व	डॉ. रहीस सिंह	37
★ पौष्टिक तत्वों से भरपूर आलू	डॉ. जितेन्द्र सिंह	42
★ आम आदमी बीमा योजना	मोहन कुमार मिश्र	46

कुरुक्षेत्र की एजेंसी लेने, ग्राहक बनने और अंक न मिलने की शिकायत के बारे में व्यापार प्रबंधक, (वितरण एवं विज्ञापन) प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066 से पत्र–व्यवहार करें। विज्ञापनों के लिए सहायक विज्ञापन प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066 से संपर्क करें। दूरभाष : 26105590, फैक्स : 26175516

कुरुक्षेत्र में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

संपादकीय

आजादी के बाद से गांवों के विकास की तरफ सरकार ने ज्यादा ध्यान दिया। पंचवर्षीय योजनाओं में ग्रामीण विकास के लिए अधिक धन का प्रावधान किया गया। शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार के लिए कई नई–नई योजनाएं बनाई गईं। अधिक पैदावार बढ़ाने के लिए किसानों को कृषि पर सब्सिडी दी जाने लगी। गरीबी हटाने के लिए भरसक प्रयास किए गए हैं। समाज के कमजोर वर्गों और महिलाओं के उत्थान के लिए सत्ता में इनकी भागीदारी सुनिश्चित की गई है। जनजातीय, दुर्गम और पहाड़ी क्षेत्रों के विकास पर विशेष ध्यान दिया गया है। गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले लोगों को रोजगार की गारंटी दी गई है।

अब सरकार द्वारा आम जनता और गरीबों के लिए किये गए कार्यों के सुपरिणाम हमारे सामने आ रहे हैं। सरकार द्वारा चलाई जा रही अनेक विकास योजनाओं का ही परिणाम है कि आज जहां एक तरफ गरीबी की दर में कमी आई है वहीं दूसरी तरफ रोजगार के अवसरों में भी वृद्धि हुई है। परंपरागत कृषि के अतिरिक्त फूलों व औषधीय वृक्षों की खेती, काश्तकारी तथा अन्य लघु उद्योगों के कारण रोजगार के नए विकल्प सामने आए हैं।

ग्रामीण गरीबी उन्मूलन और विकास के साथ जैसे–जैसे जनसंख्या बढ़ रही है उसी प्रकार साधन संपन्नता के कारण छोटे–छोटे गांव (ढाणियां) भी पनप रहे हैं। इन ढाणियों में विकास की चमक राह चलते सड़क किनारे देखी जा सकती है। इन गांवों के पास ही सड़क है, बिजली है, पानी है, स्कूल है और स्वास्थ्य केंद्र है। यहां पक्के मकान और घरों में सभी तरह की सुविधाएं देखी जा सकती हैं। सब जगह गरीबों को रोजगार और जरूरी साज सामान आसानी से मिल रहा है।

निर्धनता में लगातार हो रही कमी के साथ–साथ एक सच यह भी है कि जोतों की संख्या कम हो रही है। मशीनीकरण के कारण खेती में लागत बढ़ रही है। किसानों के पास आठ माह काम होता है तो चार माह बेकार बैठना पड़ता है। मजदूर तो पलायन कर सकते हैं पर किसान तो कृषि के भरोसे ही पूरा साल तंगी में निकाल देता है। सरकार इन ग्रामीण किसानों के कल्याण के लिए कई योजनाएं बना रही है पर प्राकृतिक आपदाओं के कारण इनकी हालत में सुधार नहीं हो रहा है।

प्रस्तुत अंक में ग्रामीण समाज में व्याप्त गरीबी और कृषि व लघु उद्योगों में उपलब्ध रोजगार के अवसरों से संबंधित जानकारी दी गई है। इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य व कृषि से संबंधित अन्य लेख भी दिए गए हैं। यह अंक आपको कैसा लगा, आपके सुझावों और प्रतिक्रियाओं का हमें इंतजार रहेगा।

मत सम्मत

मैं कुरुक्षेत्र पत्रिका का नियमित पाठक हूं। दिसम्बर 2007 का अंक मुझे बहुत पसंद आया। खासकर ग्रामीण भारत में एड्स का बढ़ता प्रकोप, ग्रामीण समाज में मानवाधिकार एवं समानान्तर न्याय, गांवों का विकास तथा सूचना का अधिकार और स्वास्थ्य के लिए बहु उपयोगी प्याज मुझे बेहद पसन्द आया। सम्पादक महोदय से अनुरोध है कि वे बिहार में चलायी जा रही जीविका योजना एवं मधुमक्खी पालन उद्योग तथा ग्रामीण विकास में लगे राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के बारे में बतलाने का कष्ट करेंगे। विकलांग लोगों के विकास के लिए राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा चलायी जा रही योजनाओं के बारे में जानकारी देने का कृपा की जाये।

प्रवीण कुमार पाठक, करपी, अखल (बिहार)

मानवाधिकार जैसे गंभीर मुद्दे पर आधारित कुरुक्षेत्र का दिसंबर अंक पठनीय रहा। साथ ही पत्रिका का आवरण पृष्ठ भी बेहद प्रभावी था। मानवाधिकार की समस्या प्रारंभ से ही समाज को उद्वेलित करती है। हर मानव के कुछ मूलभूत अधिकार होते हैं। उसके ये अधिकार ही उसकी मानवीय स्थिति को बेहतर बनाने में सहायता करते हैं। भारत गांवों का देश है। दुःखद यह है कि एड्स जैसी भयंकर बीमारी ने गांवों को अपनी चपेट में ले लिया है। इस पर दिए लेख 'पंचायत की एड्स रोधी भूमिका' डॉ. निर्मल कु. आनंद और आलोक कु. तिवारी का 'ग्रामीण भारत में एड्स का बढ़ता प्रभाव' इस बीमारी की भयावहता एवं इसके सफल रोकथाम व उपचार को समझने में भी सहायता करता है। डॉ. ऋतु सारस्वत का लेख 'एड्स की रोकथाम में मानवाधिकार एक सफल प्रयास' बेहद सराहनीय लेख था। इसी अंक में प्याज जैसी सब्जी के बहुउपयोग को जानना आश्चर्यजनक व लाभकारी दोनों रहा।

अमृता पांडेय, गुलाबी बाग, दिल्ली

मैंने दिसम्बर 2007 का कुरुक्षेत्र अंक पढ़ा। मानवाधिकार तथा एड्स के अनेक लेख प्रकाशित किये गये हैं। एड्स से संबंधित जानकारी बहुत ही जागरूकता भरी है। विश्व के एड्स प्रभावित देशों में भारत का 'तीसरा' स्थान है। इसको रोकने के लिए ग्राम स्तर पर जागरूकता लाना बहुत जरूरी है। फिर भी राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण संगठन (नाको) यू.एन. एड्स तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन ने जो आंकड़े प्रस्तुत किये हैं, इसके अनुसार एड्स पिछले वर्ष की तुलना में घट कर आधी से भी कम यानी 24 लाख 70 हजार हो गई है जो बहुत सराहनीय है। सुभाष सेतिया द्वारा लिखित गांवों का विकास और सूचना अधिकार से संबंधित जानकारी बहुत सराहनीय है। जरूरत है, सूचना अधिकार अधिनियम के बारे में जागरूकता लाने की। इस अंक के स्वास्थ्य लेख में प्याज के गुण तथा कृषि लेख में गेहूं की आधुनिक तकनीकों के प्रयोग पर जानकारी बहुत ही ज्ञानवर्द्धक है।

अजय कुमार शर्मा, गिरिडीह, झारखण्ड

ग्रामीण विकास को समर्पित कुरुक्षेत्र का दिसंबर अंक हमने पढ़ा जिसमें बहुउपयोगी बातें जानने को मिली। विभिन्न लेखों में व्यक्त विचार से आम आदमी तो लाभान्वित होता ही है साथ ही साथ किसानों को उनके विकास से जुड़ी कई योजनाओं एवं उपयोगी विधियों की जानकारी भी मिलती है। इसके साथ–साथ एड्स की जानकारी भी विस्तार पूर्वक दी गई है। कुल जनसंख्या का एक खास हिस्सा इन रोगों से प्रभावित है। ऐसी हालत में इस तरह की उपयोगी चर्चाओं का महत्व और भी कई गुणा बढ़ जाता है। इस रोग के प्रति जागरूकता ही सही मायने में इसका इलाज एवं बचाव है। इस दिशा में आपकी पत्रिका, खासकर दिसंबर अंक काफी कारगर भूमिका निभाने में सफल रहा है। मानवाधिकार एवं एड्स से संबंधित बातों को जन–जन तक पहुंचाने का प्रयास आपने किया है, इसके लिए बहुत–बहुत धन्यवाद।

पल्लवी प्रिया, बिहार शरीफ (नालन्दा)

ग्रामीण विकास पर केन्द्रित पत्रिका कुरुक्षेत्र का दिसम्बर अंक जो कि एड्स एवं मानवधिकार पर केन्द्रित था पढ़ कर अच्छा लगा। इसका संपादकीय जो कि पूरे विश्व को एक कुटुम्ब के समान बताता है काफी पंसद आया। भारत वसुधैव कुटुम्बकम पर विश्वास रखने वाला देश प्राचीन काल से ही रहा है। परन्तु अब हम अपने ही देश में क्षेत्र और धर्म के नाम पर बंट गए हैं जो कि बहुत ही घातक स्थिति का द्योतक है। जब हममें एकता नहीं होगी, तब हमारा शोषण भी बहुत होगा उस समय मानवाधिकारों की हमें बहुत जरूरत होगी। इस अंक में दूसरा जो ज्वलंत प्रश्न उठाया गया है कि एड्स जैसी बीमारी पूरे विश्व को आतंकवाद की तरह अपने आगोश में ले रही है। अफ्रीका महाद्वीप के बाद सबसे अधिक एड्स से ग्रसित लोग भारत में निवास करते हैं, जानकार मन द्रवित हुआ। आने वाले समय में हमने इसको रोकने के व्यापक प्रबन्ध नहीं किए तो भारत देश इस बीमारी की राजधानी कहलाएगा।

आशीष कुमार दुबे, फतेहपुर

कुरुक्षेत्र का दिसम्बर माह का अंक पढ़ा, बहुत ही अच्छा लगा, मैं बहुत सी सामान्य ज्ञान की पत्रिकाओं को पढ़ता हूं और कह सकता हूं कि यह पत्रिका उनमें सबसे अच्छी हैं। पत्रिका की साज सज्जा अच्छी है। संपादकीय बहुत ही अच्छा था। इस पत्रिका के लेखों को पढ़ने से निबन्ध लिखने की शैली का विकास हो जाता है। 'गांवों का विकास और सूचना का अधिकार, में लेखक सुभाष सोतिया जी ने बहुत ही प्रभावित करने वाली जानकारी दी है। राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना पर प्रतापमल देवपुरा का लेख बहुत ही अच्छा लगा।

धर्मेन्द्र कुमार दौराल, देहरादून (उत्तराखण्ड)

कुरुक्षेत्र का दिसम्बर अंक अत्यन्त ज्ञानवर्धक लगा। यह अंक एड्स और मानवाधिकार से संबंधित कई उपयोगी जानकारियां प्रदान करता है। एड्स जैसी जानलेवा और घृणित बीमारी मानवाधिकारों की बहुत बड़ी दुश्मन है क्योंकि विभिन्न भ्रांतियों के कारण समाज में एड्स पीड़ित व्यक्ति को उपेक्षित जीवन जीना पड़ता है और उस व्यक्ति के साथ मानवीय व्यवहार नहीं होता। इससे निपटने का सबसे सही उपाय एड्स से संबंधित भ्रांतियों को दूर करना और उसके बारे में सही जानकारी देना है ताकि एड्स पीड़ित व्यक्ति भी गरिमामय जीवन जी सके। पत्रिका का दिसम्बर अंक यह कार्य बखूबी करता है और इसके लिए पत्रिका धन्यवाद की पात्र है।

प्रफुल्ल कुमार, आरा, बिहार

कृषि में रोजगार के बढ़ते अवसर

डॉ. सुधीश कुमार पटेल

भारत कृषि प्रधान देश होने के बाद भी, कृषि लाभ के लिए किया जाने वाला व्यवसाय नहीं है बल्कि कृषि जीवन–यापन का एक साधन है। किसान को न तो समय पर उन्नत बीज मिल रहे हैं, न ही उर्वरक उपलब्ध हो पा रहा है और न ही पर्याप्त बिजली मिल रही है अर्थात् किसानों की सबसे बड़ी समस्या उसकी साधनहीनता है। ऐसी विपरीत परिस्थितियों में किसान कृषि कार्य करता है। गांव के गरीब किसान सम्पत्ति बनाने, रोजगार पाने, अपनी आय बढ़ाने या जीवन की गुणवत्ता सुधारने में विफल रहे हैं। आज गांवों में खुशहाली, हरियाली और समृद्धि लाने के लिए गांवों को आधुनिक विश्व बाजार से जोड़कर ही सफलता पायी जा सकती है। भूमंडलीकरण, उदारीकरण और औद्योगीकरण के इस उन्नत आधुनिक दौर में भी भारत का मुख्य व्यवसाय कृषि है।

इसलिए आज हमें गांवों में आधारभूत संरचना के विकास, स्वास्थ्य सेवाओं की सुलभता व शिक्षा के साथ–साथ रोजगार सृजन की ओर भी विशेष ध्यान देना होगा। देश की आबादी जैसे–जैसे बढ़ती गयी, वैसे–वैसे क्षेत्रफल बढ़ना तो मुमकिन न था, या यू कहें की हुआ इसके विपरीत, आबादी बढ़ने के साथ खेत सिमटते गए और जोतों का आकार छोटा होता गया। इन छोटी जोतों में आधुनिक कृषि उपकरणों का इस्तेमाल बहुत मुश्किल से हो पाता है, जिससे पैदावार भी प्रभावित होती है। जाहिर है, इन परिस्थितियों में ग्रामीण रोजगार की तलाश में शहर की ओर पलायन करने को मजबूर हुआ, लेकिन यहां भी उसकी दशा में सुधार नहीं हुआ। वास्तव में ये करोड़ों ग्रामीण भारतीय तेजी से बदलती दुनिया से सामंजस्य बैठाने के लिए आज भी संघर्ष कर रहे हैं।

कृषि विकास के लिये प्रभावकारी साधनों में वृद्धि, उत्पादन बढ़ाने, किसानों को साहूकारों के जाल से मुक्त करने तथा किसानों को सस्ती ब्याज दर पर ऋण दिलाने के लिए सहकारी संस्थाओं का विकास किया गया। इस तरह देश में ग्रामीण स्तर पर प्राथमिक सहकारी समितियां, जिला–स्तर पर जिला सहकारी बैंक और राज्य स्तर पर राज्य सहकारी बैंक कार्य कर रहे हैं। दीर्घकालीन ऋण प्रदान करने के लिए तहसील व जिला स्तर पर प्राथमिक भूमि विकास बैंक तथा राज्य स्तर पर केन्द्रीय भूमि विकास बैंक की स्थापना की गई है। सहकारी साख प्राथमिक कृषि साख समिति की कार्य पद्धति, समस्त सहकारी साख की उन्नति एवं समृद्धि की सूचक है। सहकारी संस्थाएं आज भी दीर्घ कालीन साख के लिए 'कृषि एवं ग्रामीण विकास का राष्ट्रीय बैंक' पर निर्भर है। इस बैंक द्वारा कृषि एवं ग्रामीण रोजगार के लिए दी गई सहायता तालिका में दी गई है।

तालिका से स्पष्ट है कि कृषि एवं ग्रामीण रोजगार के लिए दी गयी सहायता वर्ष 2000–01 में 52827 करोड़ रुपये की थी जो बढ़कर 2005–06 में 117899 करोड़ रुपये हो गयी है जो पिछले 6 वर्षों में दी गयी सहायता से दोगुना से अधिक है। वर्ष 2005–06 में दी गई सहायता में सबसे अधिक हिस्सा 66 प्रतिशत व्यापारिक बैंकों का, सहकारी बैंकों का 24.6 प्रतिशत और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का 9.4 प्रतिशत है। कुल संस्थागत कृषि साख में कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक का अंशदान बढ़ने की प्रवृत्ति रही है, यद्यपि सहकारी संस्थाओं का अंशदान प्रतिशत घट रहा है, परन्तु व्यापारिक बैंकों एवं क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का अंशदान बढ़ रहा है। आज जरूरत इस ओर ध्यान देने की है जो अपनी गुणवत्ता, उत्पादकता और कार्यकुशलता से विश्व भर में छा जाने का जज्बा रखते हैं,

कृषि एवं ग्रामीण रोजगार के लिए दी गई सहायता (करोड़ रुपये में)

वर्ष	सहकारी बैंक	प्रतिशत	क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक	प्रतिशत	व्यापारिक बैंक	प्रतिशत	योग
2000–01	20800	39.4	4220	8.0	27807	52.6	52827
2001–02	23604	38.0	4854	7.8	33587	54.2	62045
2002–03	23716	34.1	6070	8.7	39774	57.2	69560
2003–04	26959	31.0	7581	8.7	52441	60.3	86981
2004–05	30639	26.6	11718	10.2	72886	63.2	115243
2005–06	28947	24.6	11146	9.4	77806	66.0	117899

तो उन किसानों के लिये भी हमें सोचना पड़ेगा। किन्तु आज वे खेती–किसानी से बमुश्किल अपनी आजीविका कमा रहे हैं, इस प्रकार की चुनौतियों का कोई सीधा सरल जवाब नहीं है। वास्तव में छोटी जोतों की उत्पादकता में सुधार का एक अकेला कदम ही देश से भूख और गरीबी मिटाने में सक्षम होगा।

रोजगार एवं कृषि

भारत की एक अरब से अधिक जनसंख्या में लगभग 70 करोड़ जनसंख्या कृषि पर निर्भर है और इस 70 करोड़ में से 30 करोड़ के लगभग अशिक्षित है एवं इस 30 करोड़ में 85 प्रतिशत व्यक्ति कृषि कार्य करते हैं। आज भी किसान पारम्परिक तरीके से कृषि कार्य करते हैं। इन्हें कृषि आधारित शिक्षा देकर आधुनिक कृषि प्रणाली एवं उन्नत तरीके खोजने होंगे जिससे कृषकों की आय में वृद्धि हो सके। आर्थिक उदारीकरण का चक्र जब से प्रारम्भ हुआ है तब से गरीबी रेखा के नीचे जीवन–यापन करने वालों का प्रतिशत बढ़ा है, आर्थिक उदारीकरण के पूर्व यह प्रतिशत 28–29 था जो वर्तमान में बढ़कर 40 प्रतिशत तक पहुंच गया है । यह भी सत्य है कि उत्पादन के नए–नए कीर्तिमान, स्थापित करने के बावजूद भी देश में बेरोजगारी एवं भुखमरी बढ़ी है। यह देश के लिए सबसे बड़ी चुनौती है कि आज गांव का बेरोजगार काम की तलाश में महानगरों की ओर पलायन कर दर–दर की ठोकरें खा रहा है। ऐसी दशा में यह आवश्यक हो जाता है कि जो भी ग्रामीण बेरोजगार है उनको कृषि आधारित स्वरोजगार की ओर मोड़ा जा सके, जिससे ग्रामीण प्रतिभा का शहरों की ओर पलायन रुक सकेगा। वर्ष 2006 में वैश्विक रोजगार में सेवा क्षेत्र का हिस्सा 39.5 प्रतिशत से बढ़कर 40 प्रतिशत हो गया। इस तरह पहली बार उसने खेतिहर रोजगारों के हिस्से को पीछे छोड़ दिया जो इस दौरान 39.7 प्रतिशत से घटकर केवल 38.7 प्रतिशत रह गया है, बिना सकारात्मक आर्थिक माहौल के, कृषि का पुनर्जीवन असंभव है। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि कृषि आधारित एवं उससे जुड़े रोजगारों को बढ़ावा दिया जाए। कृषि से जुड़े रोजगार निम्नानुसार हैं –

फलों की खेती में रोजगार के बढ़ते अवसर

फलों एवं सब्जियों से जुड़े रोजगार

विविध प्रकार के फलों एवं सब्जियों की खेती करने के मामले में भारत किसी भी देश से प्रतियोगिता करने में सक्षम है। अन्य पोषक पदार्थों की तरह फलों एवं सब्जियों का दैनिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। आजकल प्रचलित सब्जियों के अलावा कई नई तरह की सब्जियां आ गई हैं जिनका मूल्य अन्य सब्जियों की तुलना में ज्यादा है, इनमें ब्रोकली, चाइनीज, पत्ता गोभी, बटन गोभी, लाल पत्ता गोभी, विभिन्न रंगों वाली शिमला मिर्च, हाइब्रीड़ टमाटर प्रमुख हैं, इनकी मांग घरेलू बाजारों में ही नहीं बल्कि विदेशी बाजारों में भी बहुत है। भारतीय उपभोक्ता प्रसंस्कृत फलों की तुलना में ताजे फल अधिक पसंद करते हैं। प्रसंस्कृत उत्पादों के मुकाबले ताजे फलों के इस्तेमाल का कारण क्रय शक्ति और आदत है। फिर भी यह सत्य है कि फलों एवं सब्जियों का बहुत–सा हिस्सा प्रसंस्करण, संरक्षण एवं उचित भण्डारण के अभाव में नष्ट हो जाता है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि फलों एवं सब्जियों का सही संरक्षण एवं वैज्ञानिक प्रसंसीकरण करके उसे देशी एवं विदेशी बाजारों में बेचकर ग्रामीण बेरोजगार घर बैठे रोजगार प्राप्त कर सकते हैं। विश्व बाजार में फलों की मांग अधिक है जिनसे देश के लिये जरूरी विदेशी मुद्रा ही नहीं कमाई जा सकती बल्कि रोजगार के अवसर भी पैदा किए जा सकते हैं। जिन ताजे फलों के निर्यात की अधिक संभावनाएं मानी जाती हैं, उनमें आम, अंगूर, केले, लीची और बिजातीय फलों में अनार, सपोटा आदि शामिल हैं। वैसे इस कार्य हेतु समूह एवं स्वयं सहायता समूह बनाकर किया जाए तो इसमें बैंक भी आर्थिक मदद प्रदान करता है।

बीज उत्पादन से जुड़े रोजगार

भरपूर पैदावार लेने के लिये वर्तमान में मौजूद तकनीक और भविष्य में विकसित होने वाली तकनीकों का इस्तेमाल करते हुए बीजों की आनुवांशिक एवं भौतिक शुद्धता बहुत जरूरी है। आज आधुनिक कृषि के लिए उन्नत किस्म के बीज कृषि के लिए सर्वाधिक उपयोगी हैं और उत्पादन बढ़ाने में इनकी महत्वपूर्ण

भूमिका है। केन्द्र सरकार ने कृषि उत्पादन को बढ़ावा देने में बीजों के महत्व को महसूस करते हुए 1963 में राष्ट्रीय बीज निगम और 1969 में भारतीय राज्य फार्म निगम की स्थापना की। इसका उद्देश्य विभिन्न फसलों के प्रमाणित बीजों के उत्पादन एवं वितरण में सुधार करना था। सच यह भी है कि आज देश में उन्नत किस्म के बीजों की आवश्यकता भी अधिक है। परन्तु देश में जरूरत के दसवें हिस्से का भी बीज नहीं बन रहा है। किसान उन्नत बीज की जगह केवल अपने घर पर उपलब्ध बीज की ही बुआई कर रहा है। इस परिस्थिति में यदि गांव के पढ़े–लिखे बेरोजगार अपना संगठन बनाकर जमीन को लीज या शिकमी पर लेकर सामूहिक बीज बनाने का कार्य करें, तो आधुनिक प्रजातियों के उन्नत बीज किसानों को प्राप्त हो सकते हैं। बीज उत्पादन का क्षेत्र और संभावनाएं काफी व्यापक हैं, साथ ही ग्रामीण बेरोजगारों को घर पर आकर्षक रोजगार एवं आय प्राप्त करने का साधन बन सकता है।

दुग्ध उत्पादन से जुड़े रोजगार

पशुपालन का ग्रामीण आर्थिक परिदृश्य में महत्वपूर्ण स्थान है। देश में दुग्ध विकास की असीम संभावनाएं है, बेरोजगार युवक डेयरी क्षेत्र में आगे आकर खूब तरक्की कर सकते हैं। बशर्ते वे परंपरागत तरीकों के स्थान पर बेहतर व उन्नत ढंग से डेयरी की व्यवस्था करें, तो इसमें लाभ ही लाभ है। आज देश में लगभग 915 लाख टन दूध का वार्षिक उत्पादन हो रहा है, हमारा देश दुनिया के कुल दूध उत्पादन में 14 प्रतिशत की हिस्सेदारी के साथ दूध का बड़ा उत्पादक देश है। यदि ग्रामीण बेरोजगार पशुपालन से दूध उत्पादन का व्यवसाय करें तो इससे घर बैठे रोजगार प्राप्त हो सकेगा। इससे अच्छी आय अर्जन कर सकेंगे, इसके लिए गांव में सहकारी समूह बनाकर उसमें उत्पादन से लेकर वितरण तक का कार्य उसी सहकारी समूह द्वारा किया जाए, जिससे बिचौलियों को कोई लाभ प्राप्त नहीं हो। इस सम्बन्ध में विपणन में होने वाले आवागमन व्यय तथा कार्यकर्त्ताओं के वेतन पर जो भी खर्च होता है उसे सहकारी समूह वहन करता है। अब समिति की पूरी आय से व्यय को घटाकर शेष धनराशि दुग्ध उत्पादकों को सीधे प्राप्त हो जाती है। इसी तरह दूध के विभिन्न उत्पाद बनाकर बेरोजगारों को अच्छा लाभ मिल सकता है।

कुक्कुट व मधुमक्खी पालन से जुड़े रोजगार

कुक्कुट व मधुमक्खी पालन किसानों की अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग है। इससे कम समय व कम व्यय पर अधिक आय प्राप्त की जा सकती है, बेहतर मार्ग निर्देशन मिलने पर हमारा "मांस+चूजा+अंडा" उद्योग देश के फलते–फूलते कृषि उद्योग में शुमार हो सकता है। देश में सोयाबीन और मक्का उत्पादन बहुत है जिनका इस्तेमाल बड़े पैमाने पर मुर्गियों के दाने के रूप में किया जा सकता है। इससे आने वाले वर्षों में कुक्कुट उत्पादन बढ़ाने में मदद मिलेगी। इसी प्रकार मधुमक्खी पालन से किसानों को शहद तो प्राप्त होता ही है साथ ही इससे मोम भी प्राप्त होता है। वैसे तो मधुमक्खी पालन का व्यवसाय भारत में प्राचीन काल से रहा है, फिर भी देश में शहद उत्पादन एवं मोम विदेशों की तुलना में बहुत कम है। भारत में प्रति छत्ता शहद 5 कि.ग्रा. प्राप्त होता है जबकि अमेरिका में शहद प्रति छत्ता 25–30 कि.ग्रा. निकलता है। यह बात तो सत्य है कि कुक्कुट व मधुमक्खी पालन के व्यवसाय का भविष्य उज्जवल है। यदि गांव में बेरोजगार इसे मिशन मानकर तथा रख–रखाव का वैज्ञानिक तरीका अपनाकर इसे रोजगार के रूप में अपनायें, तो इससे आकर्षक आमदनी घर बैठे कमायी जा सकती है, फिर भी इस व्यवसाय हेतु वित्तीय संस्थाएं ऋण देने में सदैव तत्पर रहती हैं।

बागवानी से जुड़े रोजगार

भारत में अनेक प्रकार की मिट्टी और मौसम पाया जाता है। कई प्रकार की जलवायु और पर्यावरण संबंधी विविधता मिलती है, जिसके कारण यहां अनेक प्रकार के फलों एवं सब्जियों के अलावा फूलों की खेती वर्तमान में एक अच्छा रोजगार माना जा रहा है। बागवानी से जुड़े व्यवसाय में गुलाब, सेवन्ती, गेंदा, रजनीगंधा, बेला, मोगरा, ग्लेडियोलाई विभिन्न प्रकार के देशी एवं विदेशी मौसमी पौधों तथा सजावटी कैक्टस, क्रोटन तथा वोनसाई वाले पौधों का व्यावसायिक उत्पादन काफी लाभदायक माना जा रहा है। इस संबंध में अच्छी सरकारी संस्थाएं आई.आई.एच.आर. बंगलौर, आई.ए.आर.आई. नई दिल्ली से अच्छी प्रजातियों की बागवानी हेतु बीज अथवा पौधे प्राप्त कर नर्सरी बनाने का व्यवसाय निःसन्देह ग्रामीण बेरोजगारों के लिए वरदान साबित हो सकता है।

वन–औषधियों से जुड़े रोजगार

भारत में जड़ी–बूटियों से औषधियां प्राप्त कर अनेक रोगों का उपचार करने का उल्लेख प्राचीन काल से ही मिलता है। सदियों से जड़ी–बूटियां विभिन्न रोगों के उपचार में प्रयुक्त की जाती रही हैं। अनेक जड़ी–बूटियों का प्रयोग आयुर्वेदिक दवाइयों में किया जाता है। आज विश्व बाजार में भी आयुर्वेदिक दवाइयों ने अपनी पहचान बना ली है। आज के बदलते परिदृश्य में वन– औषधियों की मांग एवं विश्व बाजार में निर्यात बहुत तेज गति से बढ़ रहा है। आज चीन जैसा राष्ट्र वन–औषधियों को बेचकर विश्व बाजार में अग्रणी निर्यातक देश बन गया है जबकि भारत में औषधीय पौधों की सर्वाधिक विविधता होने के बावजूद हम चीन से काफी पीछे हैं। आज देश में बहुत सी संस्थाएं जैसे डाबर, हिमालया, झंडू, बैद्यनाथ, हिमानी आदि इन वन औषधीय पौधों व उनसे प्राप्त

उत्पादों को खरीदने के लिए तत्पर हैं। इसमें अश्वगंधा, तुलसी, ईशवगोल, बच, सफेदमूसली, मुश्कदाना, सोनामुखी, कालमेख, सिनकोना, कलिहारी कमलगट्टा, लेमनग्रास, सतावर, सदाबहार आदि औषधीय एवं सुगन्धित पौधों को बड़े पैमाने पर लगाकर ग्रामीण बेरोजगार इसे अपनाकर रोजगार का साधन बना सकते हैं।

कृषि उपकरणों से जुड़े रोजगार

मशीनी खेती से श्रम और समय की बचत होती है, इसीलिए दीर्घकालीन कृषि विकास के लिये यदि व्यवसायिक दृष्टिकोण से जुताई के तरीकों, सिंचाई पद्धति व फसल कटाई और गहाई की मशीनों को ऊर्जा कुशल बनाने के लिये अनुसंधान की जरूरत है। इस बदलते दौर में खेतों की जुताई, गुड़ाई एवं कटाई आदि के लिए आज आधुनिक मशीन देश के सभी किसानों के पास उपलब्ध नहीं है। यदि कृषि यंत्रों को बनाने के लिए ग्रामीण बेरोजगारों को प्रशिक्षित कर निर्माण हेतु डिस्क हैरो, कल्टीवेटर, रोटा वेटर, प्लाऊ जुताई के लिए तथा फसल कटाई हेतु छोटे हार्वेस्टर, रीपर एवं बुवाई के लिए सीड कम फर्टी ड्रिल, फरो–रिज–बैड, प्लांटर, तिफन आदि को बनाकर रोजगार से जोड़ा जा सकता है। इससे कृषकों को सभी प्रकार के कृषि यंत्र गांव में उपलब्ध होंगे और बेरोजगारों को रोजगार अर्थात् एक तीर से दो शिकार ।

लघु–मिलों से जुड़े रोजगार

दलहन, तिलहन एवं चावल की खेती व्यवसायिक उद्देश्य के लिए की जाती है। इसलिए लघु–मिलों के लिये जहां अल्प पूंजी की आवश्यकता होगी वहीं देश में रोजगार की तलाश में महानगरों की ओर पलायनवादी संस्कृति में भी कमी आएगी । वर्तमान में ग्रामीण बेरोजगारों का महानगरों की ओर पलायन रोकने एवं रोजगार प्राप्ति के लिए गांव में ही दलहन से दाल निकालने के लिए दाल मिल की स्थापना, तिलहन से तेल निकालने के लिए तेल मिल (कोल्हू) की स्थापना, धान से चावल निकालने के लिए चावल मिल की स्थापना, साथ ही आटा चक्की मिल की भी स्थापना की जा सकती है। यह अपने आप में काफी लाभप्रद व्यवसाय है। इससे ग्रामीण बेरोजगारों को गांव में ही रोजगार एवं आय प्राप्त करने के अच्छे स्रोत स्थापित हो सकते हैं। इस हेतु स्वयं सहायता समूह बनाकर वित्तीय संस्थाओं से ऋण लेकर भी आसानी से चलाया जा सकता है।

जैविक कृषि से जुड़े रोजगार

जैविक कृषि की अवधारणा, प्रादुर्भाव और विकास के संबंध में जानकारी करने पर पता चलता है कि भारत के किसानों के लिए जैविक कृषि की अवधारणा कोई नयी नहीं है। वास्तव में जैविक कृषि वही है जो कि हमारी मिट्टी और जलवायु के अनुसार हो और हमारे पास उपलब्ध संसाधनों द्वारा हो। वनस्पतियों के अवशिष्ट पदार्थों को सड़ाकर तैयार किए गए खाद को कंपोस्ट खाद या हरी खाद कहा जाता है, कृत्रिम पर्यावरण में केंचुओं का पालन–पोषण वर्मीकल्चर कहलाता है। केंचुओं द्वारा निर्मित खाद किसी अन्य खाद से अधिक लाभदायक होता है। जैविक कृषि एक प्रकार से प्राकृतिक खाद्य–चक्र को दोबारा कायम करना है। कुछ जीव जैसे – मधुमक्खी, केंचुआ, मेढ़क, कीट भक्षी चिड़ियां आदि का खेत में आना यह संकेत है कि जैविक कृषि का कार्य ठीक प्रकार से चल रहा है। कृषि केवल मनुष्य और फसल के बीच का रिश्ता नहीं है वरन् प्रकृति में पाए जाने वाले प्रत्येक जीव का इसमें सहयोग और उत्पादन में हिस्सा भी होता है। जैविक खाद्य के इस व्यवसाय को अपना कर ग्रामीण बेरोजगार विपणन की नीतियां बनाकर रोजगार एवं आय प्राप्ति में सहायक हो सकेगा।

भूमंडलीकृत अर्थव्यवस्था के वर्तमान दौर में कृषि आधारित उद्योग धन्धों को अपनाकर कृषि व्यवसाय एवं रोजगार को बढ़ाया जा सकता है। कृषि को प्रतिस्पर्धात्मक और रोजगार मूलक बनाने के लिये अधिक से अधिक सार्वजनिक और निजी निवेश भी जरूरी है। इससे कृषि प्रयोग के नये–नये तरीकों का ज्ञान, सही दिशा एवं स्पष्ट मार्गदर्शन किसानों को मिलने लगेगा, साथ ही किसानों को सही खाद्य, बीज, पौध आदि उपलब्ध होंगे। ग्रामीण अर्थव्यवस्था को दुरूस्त करने के लिये केन्द्र सरकार ने कई योजनाएं बनायी हैं। 11वीं पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत करने और रोजगार पर बल दिया है।

सरकार मानती है कि यदि देश का विकास करना है, तो कृषि एवं रोजगार को वैश्विक परिदृश्य में आर्थिक ताकत के रूप में प्रतिष्ठित करना होगा। पहले हमें अंदर से मजबूत होना पड़ेगा, यानी उस भारत को खुशहाल बनाना होगा जहां 70 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या निवास करती है और जिसे ग्रामीण भारत के नाम से जाना जाता है। ग्रामीण बेरोजगारों की दयनीय दशा में सुधारकर, इन कमियों का निराकरण करके ग्रामीण रोजगार व कृषि विकास की इन महत्वाकांक्षी योजनाओं व कार्यक्रमों से अपेक्षित परिणाम प्राप्त होने की संभावनाएं बढ़ सकती है। कृषि में रोजगार के संवर्द्धन के पश्चात् ही गांवों में रोजगार और विकास की गंगा बह सकती है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए नीति निर्माता, कृषि समुदाय संगठन, स्वयंसेवी संगठन और कृषि वैज्ञानिकों के संयुक्त प्रयासों की आवश्यकता है। कृषि में प्रगति के बिना समग्र विकास की कल्पना एक मृगतृष्णा बन कर रह गई है।

(लेखक चंचलबाई पटेल महाविद्यालय जबलपुर के वाणिज्य विभाग में सहा. प्राध्यापक हैं।)

ई–मेल : sudheesh-1973@rediffmail.com

ग्रामीण गरीबी एवं रोजगार के बदलते स्वरूप

जवाहरलाल गुप्ता

भारत गांवों का देश है इसकी लगभग दो तिहाई आबादी गांवों में निवास करती है अतः ग्रामीण क्षेत्रों का जीवन स्तर ऊंचा उठाए बिना राष्ट्र का विकास होना असंभव है। आज भारत विश्व में मजबूत आर्थिक शक्ति के रूप में उभर रहा है। विश्व बैंक की ताजा रिपोर्ट के अनुसार भारतीय अर्थव्यवस्था विश्व की चौथी बड़ी अर्थव्यवस्था हो गई है। भारत में औद्योगिक उत्पादन दर तथा आर्थिक विकास दर औसतन बढ़ी है। वर्ष 2006–07 में तो आर्थिक विकास दर के नौ फीसदी तक पहुंचने की आधिकारिक घोषणा हो चुकी है। विदेशी मुद्रा भण्डार भी दिसम्बर 2007 में लगभग 200 अरब डालर के रिकॉर्ड स्तर पर पहुंच गया है। फिर भी ग्रामीण क्षेत्रों की बदहाली देश के आर्थिक विकास की राह में कांटा बनी हुई है। देश के नियोजनकाल में ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी निवारण के अनेक प्रयत्न किए गए हैं परंतु ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी और गरीबी की समस्या निरंतर बढ़ती जा रही है।

बेरोजगारी का अभिप्राय उस व्यवस्था से है जिसमें कार्य करने योग्य व्यक्ति को कार्य करने की इच्छा होते हुए भी कोई रोजगार नहीं मिल पाता, जिससे उसे नियमित रूप से आय प्राप्त हो सके। ग्रामीण क्षेत्र के लोगों की आय का मुख्य स्रोत कृषि है। परंतु कृषि तो अपने स्वरूप में ही मौसमी व्यवस्था है इसलिए कृषि तथा इस पर आधारित उद्योगों में मौसमी बेरोजगारी पाया जाना स्वाभाविक है। असल में यह बेरोजगारी प्राकृतिक कारणों से उत्पन्न होती है, जैसा कि प्रायः हम देखते हैं। मौसमी बेरोजगारी की अवधि पृथक–पृथक्र राज्यों में भिन्न–भिन्न हैं। चूंकि खेतों की बुवाई तथा कटाई के समय खेतिहर मजदूरों की मांग बढ़ जाती है जिसके फलस्वरूप इस समय बेरोजगारी में कमी आ जाती है। लेकिन पैदावार हो जाने के बाद बेरोजगारी बढ़ जाती है। एक अनुमान के मुताबिक उत्तरी भारत में औसत किसान वर्ष के 150 दिन बेकार रहता है। मौसमी बेरोजगारी में वृद्धि का सबसे मुख्य कारण ग्रामीण शिल्प उद्योग तथा लद्यु उद्योगों का पतन रहा है।

ग्रामीण बेरोजगारी का दूसरा स्वरूप बारहमासी अल्प रोजगार या चिरकालीन अदृश्य बेरोजगारी है। उसे दो रूपों में विभाजित किया जा सकता है

- श्रमिकों को उनकी योग्यतानुसार कार्य न मिलना।
- श्रमिकों की अधिक उपलब्धता।

ग्रामीण भारत में निर्धनता की अवधारणा

गरीबी अथवा निर्धनता का अर्थ उस स्थिति से है जिसमें समाज का एक भाग अपने जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं को संतुष्ट करने में असमर्थ रहता है। तीसरी दुनिया के देशों में व्यापक निर्धनता पाई जाती है। निर्धनता की परिभाषा विभिन्न समाजों में भिन्न है तथापि इन सबका आधार न्यूनतम या अच्छे जीवनस्तर की कल्पना है। उदाहरण के लिए अमेरिका में निर्धनता की धारणा भारत से बिल्कुल भिन्न होगी क्योंकि अमेरिका में साधारण व्यक्ति कहीं अधिक ऊंचे जीवन स्तर पर रह रहा है। भारत में अनेक संस्थाओं ने निर्धनता के निर्धारण के लिए अपने– अपने प्रमाप बनाए हैं लेकिन योजना आयोग द्वारा गठित विशेषज्ञ दल की रिपोर्ट के अनुसार ग्रामीण क्षेत्र में प्रतिव्यक्ति 2400 कैलोरी तथा शहरी क्षेत्र में 2100 कैलोरी प्रति दिन के हिसाब से भी जिन्हें प्राप्त नहीं हो पाती, उसे गरीबी रेखा के नीचे माना गया है।

खेती में आठ माह रोजगार – चार माह बेकार

ग्रामीण भारत में बेरोजगारी का आकार व स्वरूप

भारत एक विकासशील किन्तु अल्पविकसित देश है। इस कारण यहां बेरोजगारी का स्वरूप औद्योगिक दृष्टि से उन्नत देशों की अपेक्षा भिन्न है। भगवती रिपोर्ट के अनुसार 1971 में देशभर में

बेरोजगारों की संख्या 187 लाख थी जिसमें से 161 लाख बेरोजगार ग्रामीण क्षेत्र के थे। बेरोजगार व्यक्तियों में 76 लाख पुरुष तथा 85 लाख स्त्रियां थीं। सन् 1994 में बेरोजगारों की संख्या 3 करोड़ 77 लाख हो गई थी। इनमें 62 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों तथा 38 प्रतिशत शहरी क्षेत्रों से थे। देश में आर्थिक उदारीकरण शुरू हुए लगभग 16 वर्ष बीत चुके हैं लेकिन करीब 24 करोड़ लोग अभी भी गरीबी रेखा से नीचे जीवन गुजारने के लिए मजबूर हैं। भले ही सरकारी आंकड़ों के मुताबिक गरीबी की दर में 4.3 फीसदी की गिरावट आयी है और यह 1999–2000 के 26.1 प्रतिशत के मुकाबले 2004–05 में 21.8 तथा 2006–07 में और भी कम हो गई है। योजना आयोग की ओर से जारी नेशनल सैंपल सर्वे की रिपोर्ट के मुताबिक गरीबी में गिरावट आने के बावजूद देश में अभी भी 23.85 करोड़ लोग गरीबी रेखा से नीचे जीने के लिए मजबूर हैं। वैसे शहरों की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी की दर में कहीं अधिक गिरावट दर्ज की गई है। यह 27.1 फीसदी से कम होकर 21.8 फीसदी के स्तर पर आ गई है। कुल मिलाकर अब ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबों की संख्या में सरकारी प्रयास के माध्यम से कमी आ रही है।

उपभोग वितरण के आधार पर यदि देखा जाये तो 1993–94 में गरीबी 36 फीसदी थी जो कम होकर 2004–05 में 27.5 फीसदी पर आ गई थी। इस आधार पर ग्रामीण इलाकों में गरीबी 37.3 फीसदी से कम होकर 28.3 प्रतिशत के स्तर पर आ गई है वहीं शहरी क्षेत्रों में यह 32.4 फीसदी से कम होकर 25.7 प्रतिशत के स्तर पर आ गई है। उपभोग आधारित आंकड़ों के मुताबिक उड़ीसा सर्वाधिक गरीब राज्य है जिसमें 46.4 फीसदी लोग गरीब हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में पायी जाने वाली बेरोजगारी

ग्रामीण क्षेत्रों में पायी जाने वाली बेरोजगारी मुख्यतः तीन प्रकार की होती है जो प्रायः कृषि में पायी जाती है।

- **मौसमी बेरोजगारी** – इसके अन्तर्गत किसी विशेष मौसम या अवधि में प्रति वर्ष उत्पन्न होने वाली बेरोजगारी को सम्मिलित किया जाता है। भारत में कृषि में सामान्यतः 7–8 माह ही काम मिलता है तथा शेष महीनों में खेती में लगे व्यक्तियों को बेकार बैठना पड़ता है।
- **अदृश्य बेरोजगारी** – जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि यह बेरोजगारी दिखाई नहीं देती। इसमें श्रमिक बाहर से तो काम पर लगे हुए प्रतीत होते हैं किन्तु वास्तव में उन श्रमिकों की उस कार्य में आवश्यकता नहीं होती अर्थात यदि उन श्रमिकों को उस कार्य से निकाल दिया जाये तो कोई फर्क उत्पादन पर नहीं पड़ता।
- **खुली बेरोजगारी** – इससे तात्पर्य उस बेरोजगारी से है जिसके अन्तर्गत श्रमिकों को बिना किसी कामकाज के रहना पड़ता है। उन्हें थोड़ा बहुत काम भी नहीं मिलता है। भारत में श्रमिक गांवों से शहरों की तरफ काम के लिए आते हैं किन्तु उन्हें काम नहीं मिलता।

संगठित क्षेत्र में रोजगार (लाख में)

वर्ष	सार्वजनिक क्षेत्र	निजी क्षेत्र	कुल समायोजित
1990	187.72	75.82	263.52
1999	194.72	86.98	281.13
2000	193.14	86.46	279.13
2001	191.38	86.52	277.06
2002	187.51	84.32	272.06
2003	185.80	84.21	270.00
2007	170.45	97.21	267.66

ग्रामीण भारत में गरीबी और बेरोजगारी के कारण

भारत में सीमित भूमि की उपलब्धता बेरोजगारी का एक अहम कारण है। आज देश में जनसंख्या बेतहाशा बढ़ रही है तथा उसका दबाव भूमि पर अधिकांशतः बढ़ रहा है। परिणामस्वरूप धीरे–धीरे प्रतिव्यक्ति भूमि की मात्रा का अनुपात कम होता जा रहा है।

हरित क्रांति के बावजूद भी आज देश के अधिकतर गांवों में कृषि पुराने ढ़ंग से की जा रही है। आधुनिक तकनीक, उन्नत बीज, खाद आदि का प्रयोग भारतीय किसान बहुत कम कर रहे हैं। जिससे मानवश्रम शक्ति का दुरुपयोग जारी है। यही कारण है कि जिस कृषि पर भारत की 65 प्रतिशत श्रमशक्ति कार्य कर रही है उसको आधुनिक तकनीकों से सिर्फ 35 प्रतिशत श्रमशक्ति पूरा कर सकती है। कृषि पर आधारित उद्योगों का भी ग्रामीण क्षेत्रों में सर्वथा अभाव है। आज भी भारतीय किसान विपणन व्यवस्था के लिए बिचौलियों पर निर्भर हैं। अतः किसानों को उनके कृषि उत्पादों का उचित मूल्य नहीं मिल पा रहा है। कृषि पर आधारित उद्योगों जैसे दूध, डेयरी, शहद उद्योग आदि का सर्वथा अभाव है।

यह बात आश्चर्यजनक है कि आज भी भारतीय कृषि मानसून पर आधारित है। वर्षा जल संरक्षण नहरों तथा कुओं का निर्माण ग्रामीण क्षेत्रों में काफी कम है। यदि कभी सूखा पड़ गया, तो ग्रामीण बेरोजगारी और भी बढ़ जाती है।

ग्रामीण गरीबी और बेरोजगारी बढ़ने का एक और महत्वपूर्ण कारण है कि आज हमारी शिक्षा व्यवस्था काफी लचर है जो आज भी मैकाले की शिक्षा पद्धति पर आधारित है। जिसका उद्देश्य क्लर्क बनाना है। देखा जाये तो मूलतः भारतीय शिक्षा सिद्धान्त उद्देश्यहीन है। ग्रामीण क्षेत्रों में तो उचित शिक्षा का सर्वथा अभाव पाया जाता है। आधुनिक शिक्षा का तो ग्रामीण विद्यालयों में दूर–दूर तक कोई सरोकार ही नहीं है।

ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों को सरकार द्वारा चलाई जाने वाली योजनाओं तक का ज्ञान नहीं है। ग्रामीण विकास योजनाओं का सही कार्यान्वयन न होने से भी बेरोजगारी बढ़ रही है। आज अव्वल तो गांव में शिक्षा की उचित व्यवस्था नहीं है। उस पर यदि

गांव का कोई नौजवान पढ़ता भी है तो वह कृषि कार्यों को हीन समझता है तथा नौकरी को ही अपनी प्राथमिकता देता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में बीमारियां एवं कुपोषण भी बेरोजगारी का एक बड़ा कारण है। उचित शिक्षा के अभाव में ग्रामीण क्षेत्रों में बच्चों की परवरिश उचित ढंग से नहीं हो पाती। जिससे बड़ा होने पर उनकी कार्य कुशलता भी प्रभावित होती है। ग्रामीण क्षेत्रों में भरपूर प्राकृतिक संसाधन हैं, कई पौष्टिक आहार मौजूद हैं। लेकिन आज भी ग्रामीण क्षेत्र के लोग शहरों से उत्पादित वस्तुओं को ही महंगी कीमतों में खरीदना पसंद करते हैं जबकि ग्रामीण क्षेत्र में ही अनेक ऐसी चीजें मौजूद हैं जिसका उपयोग करके हम अपनी रोजमर्रा की जरूरतें पूरी कर सकते हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश के विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाएं चलाई गई हैं परंतु नियोजनकाल में ग्रामीण क्षेत्रों को केवल एक चौथाई भाग ही प्राप्त हुआ। इससे गांवों में निर्धनता उन्मूलन, रोजगार के अवसरों में स्थिरीकरण तथा घरेलू बाजार की दृष्टि से ग्रामीण अर्थव्यवस्था का समुचित ढंग से विकास नहीं हो पाया। फलतः ग्रामीण क्षेत्र में शहरों की ओर पलायन करने की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। अतः पंचवर्षीय योजनाओं के उचित कार्यान्वयन न होने से भी ग्रामीण क्षेत्रों का विकास रुक गया है।

प्राकृतिक संसाधनों का उचित दोहन न कर पाने के कारण भी ग्रामीण क्षेत्र पिछड़े हुए हैं। भारत में कई जगह तो भरपूर प्राकृतिक संसाधन हैं, लेकिन उनका उपयोग ही नहीं हो पा रहा है। पानी यों ही व्यर्थ बह रहा है, जमीन यों ही बंजर पड़ी है। खेतों में यों ही कम लागत एवं गुणवत्ता की फसलें उगाई जा रही हैं तथा मानवीय संसाधन भी कृषि पर अतिरिक्त बोझ बना हुआ है। प्राकृतिक संसाधनों में छिपी ऊर्जा का भी उचित दोहन नहीं हो पा रहा है इससे भी ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी बढ़ रही है।

ग्रामीण क्षेत्रों की अविकसित सामाजिक दशाएं (जाति प्रथा, बाल विवाह, छूआछूत आदि) किसी न किसी रूप में बेरोजगारी को बढ़ा रही है। आज भी जाति प्रथा तथा छुआछूत के कारण गांवों में अनेक व्यक्ति बहुत से कार्यों को हीन समझते हैं, यह भी बेरोजगारी का मुख्य कारण है।

ग्रामीण क्षेत्रों में परिवहन व्यवस्था के न होने से भी आर्थिक विपन्नता बढ़ी है। ग्रामीण किसान कृषि उत्पादों का उत्पादन तो कर लेता है लेकिन उसको शहर तक पहुंचाने में असमर्थ रहता है। इससे कृषि उत्पादों का ह्रास होता है तथा उचित मूल्य न मिलने से किसान की श्रम शक्ति यों ही बेकार चली जाती है।

ग्रामीण क्षेत्रों में उपभोग व्यय पर एन.एस.एस.ओ. रिपोर्ट

देश में ग्रामीण क्षेत्रों में उपभोग व्यय के सम्बन्ध में राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन के 61वें चक्र की अध्ययन रिपोर्ट जारी की गई। इस रिपोर्ट में यह दर्शाया गया है कि विगत तीन दशकों में आम भारतीयों की व्यय की प्रवृत्ति में एक बड़ा परिवर्तन यह आया है कि भोजन के मद पर आनुपातिक व्यय में भारी गिरावट आई है जबकि ईंधन व रोशनी जैसी मदों पर आनुपातिक व्यय में वृद्धि हुई है। रिपोर्ट के अनुसार उपभोग व्यय ग्रामीण क्षेत्रों में 559 रुपए था। ईंधन एवं प्रकाश पर व्यय ग्रामीण क्षेत्रों में उपभोग व्यय का 10 प्रतिशत पाया गया है। इसी अवधि में ग्रामीण क्षेत्रों में भोजन पर व्यय कुल उपभोग व्यय के 73 प्रतिशत से घटकर 55 प्रतिशत रह गया। इस रिपोर्ट से देश में विद्यमान आर्थिक विषमता का भी आभास होता है। ग्रामीण क्षेत्रों में 5 प्रतिशत निर्धनतम जनसंख्या का प्रति व्यक्ति मासिक उपभोग व्यय 0–235 रुपए के बीच था, तथा 10 प्रतिशत निर्धनतम जनसंख्या का औसत दैनिक उपभोग व्यय 9 रुपए के भी कम रहा है। आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में 5 प्रतिशत जनसंख्या ही ऐसी थी जिसका प्रति व्यक्ति मासिक उपभोग व्यय 1155 रुपए से अधिक पाया गया। यह सर्वेक्षण देश के विभिन्न भागों के 7999 गांवों में तथा 4602 ब्लाकों में किए गए अध्ययन पर आधारित है

गरीबी उन्मूलन के लिए प्रयास

गरीबी और बेरोजगारी किसी भी प्रगतिशील राष्ट्र के लिए अभिशाप है। अतः इनके निवारण के बिना प्रगति की कल्पना करना बेमानी होगी। भारत जो गांवों का देश है उसके लिए गरीबी और बेरोजगारी को समाप्त करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि की कम उपलब्धता के चलते सघन खेती एवं मिश्रित खेती को प्रोत्साहन देना अति आवश्यक है। उत्तम बीज, उचित खाद पानी की व्यवस्था से सघन तथा मिश्रित खेती को बढ़ावा दिया जा सकता है। इससे कम तथा अधिक लागत वाली फसलों का उत्पादन साथ–साथ भी किया जा सकता है। इससे जहां मौसमी खेती से छुटकारा मिलेगा, वहीं रोजगारों के अवसरों में भी वृद्धि होगी तथा इससे ग्रामीणों में समृद्धि आयेगी। आज जिस तरह से जनसंख्या बढ़ रही है उससे हमारे सामने दो ही विकल्प रह जाते हैं या तो हम जनसंख्या वृद्धि पर रोक लगाएं या फिर रोजगार के अवसरों में वृद्धि करें। आज हम न तो एकदम से जनसंख्या वृद्धि पर लगाम लगा सकते हैं, हां इसके लिए हम ठोस धरातल तो बना ही सकते हैं। अतः आज ऐसे ठोस उपायों की जरूरत है जिससे हम आगे जाकर जनसंख्या वृद्धि को रोकने के साथ–साथ रोजगारों के अवसरों में भी वृद्धि कर सकें। इसके लिए जरूरत होगी शिक्षा, तकनीकी ज्ञान तथा वैज्ञानिक सोच की। आज यदि 65 प्रतिशत जनसंख्या के बजाय 40 प्रतिशत को ही कृषि कार्य पर लगाया जाता है अर्थात 70 करोड़ की बजाय मात्र 45 करोड़ लोग ही कृषि कार्य करते हैं तथा शेष 25 करोड़ लोगों को कृषि आधारित उद्योगों में लगाया जाता है तो बेरोजगारी पर काफी हद तक काबू पाया जा सकता है। इसके लिए जरूरत होगी उच्च कृषि तकनीक तथा लघु व कुटीर उद्योगों के विकास की। कृषि में उच्च तकनीकी से इस पर आश्रित अतिरिक्त किसानों की सदस्यता जहां कम की जा सकती है, वहीं इन किसानों को कृषि आधारित उद्योगों में लगाया जाना चाहिए।

अतः इसके लिए जरूरी है कि हम पुराने कृषि ढांचे को बदलें। खेती को सिर्फ मानसून पर निर्भर न रखकर सिंचाई के साधनों का प्रयोग किया जाए, नदियों से नहरों के द्वारा पानी दूरदराज के गांवों में पहुंचाया जा सकता है। कुएं, जोहड़, नलकूपों का निर्माण तथा वर्षा के पानी का संरक्षण करना भी अति आवश्यक है। गांवों में लघु तथा कुटीर उद्योगों के विकास का जापानी मॉडल अपनाना चाहिए। विद्युत के सहारे चलने वाले इन लघु एवं कुटीर उद्योगों से देश में औद्योगिकीकरण बढ़ाया जा सकता है। इससे उद्योगों का विकेंद्रीकरण होने से लोगों को रोजगार मिल सकेगा। दूसरी ओर बाल मजदूरी जैसी समस्याएं भी इससे दूर हो जाएगी। प्रत्येक परिवार किसी न किसी उद्योग को अपनाए इसके लिए सरकारी तौर पर प्रयास किए जा रहे हैं। विडम्बना यह है कि आजादी के इतने समय बाद भी सरकार ने शिक्षा के ढांचे में कोई भी ठोस परिवर्तन नहीं किए हैं। आज जरूरत इस बात की है कि देश के प्रत्येक स्कूलों को एक वर्कशाप में बदला जाए। ग्रामीण क्षेत्रों में भी तकनीकी शिक्षा वाली शिक्षा पद्धति के बजाय व्यवसायिक तथा आधुनिक शिक्षा प्रणाली अपनायी जानी चाहिए, ताकि कोई भी युवा शिक्षा पूरी करने के बाद स्वावलंबी बन सके। इससे जहां ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी दूर होगी वहीं युवावर्ग में नौकरी की मनोवृत्ति भी समाप्त हो जाएगी।

भारत सरकार द्वारा यह प्रयास किया जाना चाहिए कि कृषि के पुराने ढर्रे में परिवर्तन किया जाए। मानसून आधारित कृषि के बजाय वैज्ञानिक तथा सुव्यवस्थित कृषि अपनाई जाए। सिंचाई के नए साधनों (नहरों का निर्माण, कुओं, नलकूपों, वर्षा जल संरक्षण आदि) का प्रयोग किया जाना चाहिए। कृषि कार्यों में आधुनिक यंत्रों का प्रयोग किया जाना चाहिए। इन सबके लिए किसानों के पास पूंजी की आवश्यकता होगी। ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए सरकार अनेक कार्यक्रम चला रही है। जिसमें ऋणों तथा अनुदानों के अलावा विपणन की सुविधाएं भी उपलब्ध हैं। अनेक बैंक भी ग्रामीण क्षेत्रों के किसानों को ऋण उपलब्ध करा रहे हैं। यहां तक कि कुछ बैंकों में तो फसल बीमा योजना तथा किसान क्रेडिट कार्ड जैसी सुविधाएं भी शुरू की गई है। पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा भी ग्रामीण क्षेत्रों के विकास की अनेक योजनाएं चलाई जा रही हैं। स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना, संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना, स्वजलधारा योजना व राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना जैसी अनेक विकास योजनाएं सरकार चला रही है, जिनकी जानकारी ग्रामीण किसानों को अवश्य होनी चाहिए। इसके अलावा सरकार को चाहिए कि वह समय–समय पर सरकारी अथवा गैर सरकारी संस्थाओं के माध्यम से ग्रामीण कृषकों को आधुनिक कृषि पद्धति को अपनाने के लिए प्रशिक्षण या कार्यशालाओं का आयोजन करे।

ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य के प्रति अधिकतर लोग लापरवाह रहते हैं। गंदगी, अज्ञान तथा निरक्षरता के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य दर बहुत कम है, साथ ही समय–समय पर ग्रामीण क्षेत्र में स्वास्थ्य शिविर लगाए जाने चाहिए, ताकि लोगों में विभिन्न रोगों की पहचान के अलावा स्वास्थ्य के उचित देखभाल की भी जानकारी दी जाए। ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों में नशे की प्रवृत्ति भी अधिक देखी जाती है। अतः सरकार को चाहिए की इन शिविरों में नशे से होने वाली हानियों की भी जानकारी दें। आज भी देश के अधिकतर गांवों में परिवहन की सुविधा नहीं है। पहाड़ी क्षेत्रों में तो 90 फीसदी गांव सड़कों से दूर बसे हैं, अतः यातायात को प्रत्येक गांव तक पहुंचाना चाहिए जिससे ग्रामीण किसान अपनी खेती से संबंधित उत्पादों को बाजार में पहुंचा सके। बिचौलियों पर प्रतिबंध लगाया जा सके। इसके लिए ग्रामीण क्षेत्र के लोगों को जागरूक होना पड़ेगा। यह तभी संभव है जब प्रत्येक ग्रामीण शिक्षित होगा। अपने अधिकारों के लिए लड़ना हर एक ग्रामीण का कर्तव्य है।

सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि आज भरपूर प्राकृतिक साधन होने के बावजूद निर्धनता, बेरोजगारी तथा कुपोषण जैसी समस्याएं फैली हुई हैं। ये प्राकृतिक साधन बिना उपयोग के व्यर्थ जाते हैं। बिहार, उत्तर प्रदेश, छत्तीसगढ़ आदि इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। जहां अपार जल संपदा तथा खनिज संपदा मौजूद है, लेकिन उसका उचित दोहन नहीं हो रहा है। अगर कुछ जगह हो भी रहा तो उसका लाभ स्थानीय लोगों के बजाय तमाम देशी तथा विदेशी कंपनियां ही उठा रही हैं। अतः सरकार को चाहिए कि वह पहाड़ी क्षेत्रों में बहने वाले झरनों पर छोटी–छोटी पनबिजली इकाई स्थापित करे, ताकि स्थानीय लोगों को बिजली जैसी समस्याओं का सामना न करना पड़ेगा। ग्रामीण क्षेत्रों में बेकार पड़ी वन संपदा के बारे में लोगों को बताया जाना चाहिए। जंगलों में कई दुर्लभ जड़ी बूटियां तथा पौष्टिक खाद्य पदार्थ बड़ी मात्रा में मौजूद हैं, लेकिन जानकारी के अभाव में ग्रामवासी उसका दोहन करने के बजाय शहर की महंगी दवाइयों तथा उत्पादों को खरीदकर समय तथा धन की बर्बादी करते हैं। अतः सरकार को चाहिए कि वह ग्रामीण क्षेत्र में पाई जाने वाली प्राकृतिक चीजों के महत्व, दोहन तथा उपयोग के बारे में समय–समय पर कार्यशालाओं में जानकारी दें और लोगों को इस क्षेत्र में प्रशिक्षित करें।

सामाजिक कुरीतियां, रूढ़िवादिता तथा अंधविश्वासों को दूर करना जरूरी है। ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं को शिक्षा नहीं दी जाती। उन्हें सिर्फ गृहकार्यों तक सीमित रखा जाता है। इसलिए ग्रामीण क्षेत्र में बेरोजगार महिलाओं का प्रतिशत पुरुषों से अधिक है। अतः नारी शिक्षा के लिए सरकार को उचित कदम उठाने चाहिए। गांवों में व्याप्त अंधविश्वास के चलते धर्म, संप्रदाय तथा जात–पात के आधार पर कुछ कार्यों को हीन, कुछ को श्रेष्ठ माना जाता है यह गलत है। अतः प्रत्येक ग्रामीण को यह सोच बदलनी होगी। कोई भी कार्य छोटा–बड़ा नहीं होता।

(लेखक गरीबी उन्मूलन एन.जी.ओ. से सम्बद्ध हैं।)
ई–मेल : jawahar121rediffmail.com

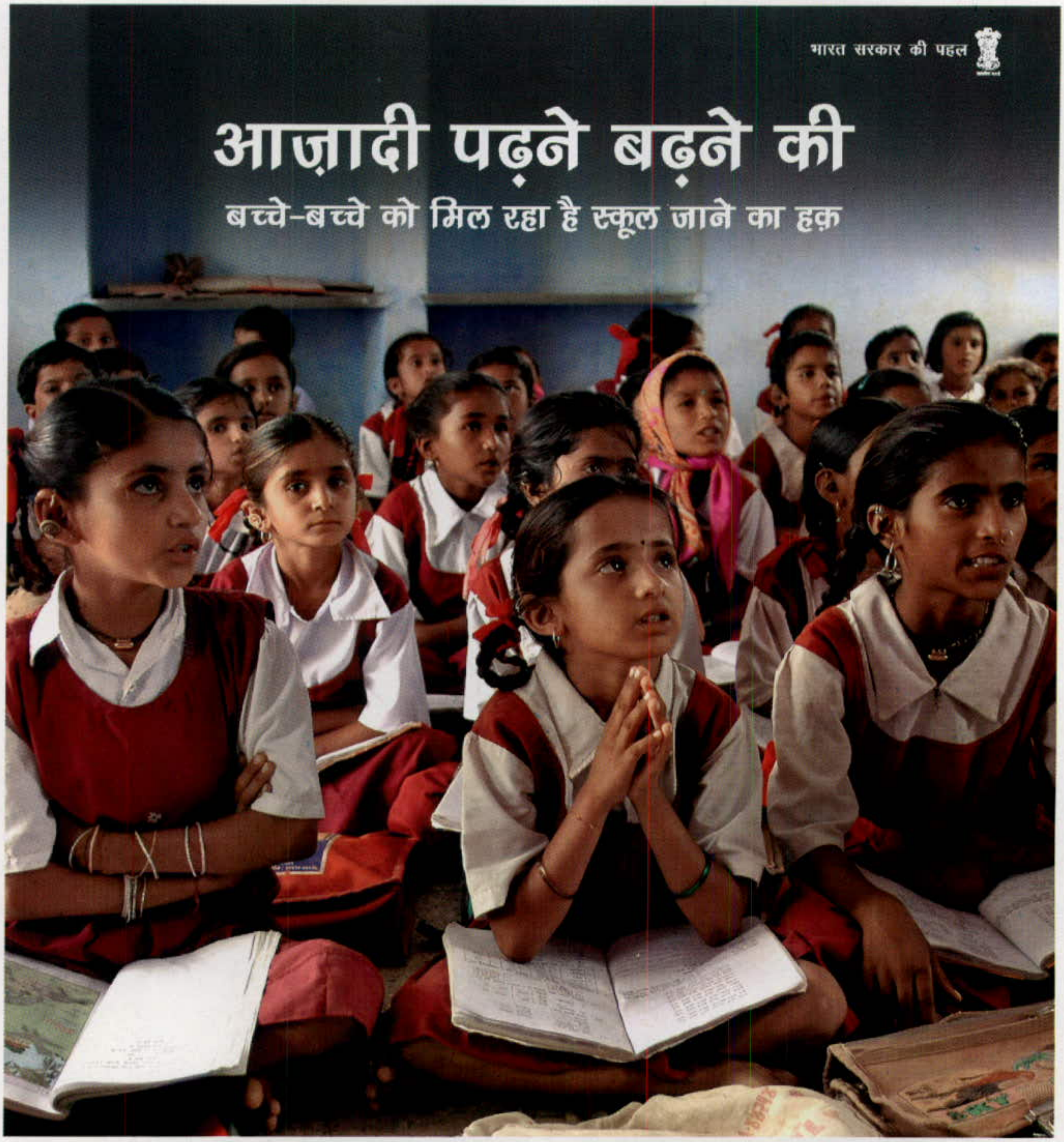

सर्व शिक्षा अभियान से हो रहा है भारत का निर्माण

► 3 सालों में 1,40,000 स्कूल खोले गए ► 1.3 करोड़ नए बच्चों का दाखिला ► 5.76 लाख नए शिक्षकों की नियुक्ति

भारत निर्माण
चलें नयी आज़ादी की ओर

भारत निर्माण | राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम | सर्व शिक्षा अभियान | राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन

davp 22201/13/0138/0708

KH-02/08/02

ग्रामीण रोजगार में हस्तशिल्प उद्योग का योगदान

डॉ. उमेश चन्द्र अग्रवाल

भारत का हस्तशिल्प उद्योग शताब्दियों से गांवों, कस्बों के साथ–साथ शहरों तक की अर्थव्यवस्था का प्रमुख अंग रहा है। यह एक श्रमप्रधान उद्योग है जिसमें नाममात्र के पूंजी निवेश से बड़ी मात्रा में रोजगार सृजित होता है। इस प्रकार हस्तशिल्प क्षेत्र रोजगार प्रदान करने की दृष्टि से भी एक बहुत महत्वपूर्ण क्षेत्र है। इस क्षेत्र द्वारा वर्तमान में 67.70 लाख कारीगरों को प्रत्यक्ष रूप से रोजगार प्रदान किया जा रहा है। हस्तशिल्प उत्पादों के निर्यात के द्वारा देश को बड़ी मात्रा में विदेशी मुद्रा भी प्राप्त होती है जिसमें वर्षानुवर्ष बढ़ोत्तरी भी हो रही है। हस्तशिल्प का निर्यात जो वर्ष 1997–98 में 6,458 करोड़ रुपए था वह वर्ष 2005–06 में बढ़कर 17,277 करोड़ रुपये हो गया। अगले वर्ष में इसमें और भी अधिक वृद्धि की सम्भावनाएं बनी हुई हैं।

इस क्षेत्र की सबसे प्रमुख विशेषता तो यह है कि उच्च निर्यात सम्भाव्यता वाले इस उद्योग के लिए सामान्यतया किसी भी प्रकार के कच्चे माल या मशीनी उपकरणों के आयात की आवश्यकता नहीं पड़ती। वस्तुओं के स्वरूप परिवर्तन से ही उच्च मूल्यवर्द्धन होता है। हस्तशिल्प उद्योग की एक अन्य प्रमुख विशेषता यह भी है कि इसमें काम करने वाले दस्तकारों के लिए उच्चस्तरीय व्यक्तिगत कौशल एवं दक्षता की आवश्यकता होती है। किन्तु इसके बावजूद इसमें कार्यरत शिल्पी औपचारिक रूप से किसी प्रशिक्षण संस्थान में अपने व्यवसाय से सम्बन्धित कार्यों का प्रशिक्षण अथवा शिक्षा प्राप्त किया जाना जरूरी नहीं होता। हस्तकला से जुड़े व्यवसाय तो पारिवारिक आधार पर पीढ़ी–दर–पीढ़ी उत्तरोत्तर हस्तान्तरित होते रहे हैं जिसमें बच्चे अपने वरिष्ठ परिवारजनों के साथ कार्य करते हुए परिपक्व एवं कुशल कारीगर बन जाते हैं।

देश के विभिन्न भागों में बसे दस्तकारों द्वारा स्थानीय स्तर पर उपलब्ध कच्चे माल, लकड़ी, पत्थर, धातु, वनस्पतियों आदि से ही घरों में काम आने वाली अनेक वस्तुओं जैसे बर्तन, पलंग, चौखट–दरवाजे, फर्नीचर, मूर्तियां, खिलौने, सजावट की वस्तुओं का निर्माण किया जाता रहा है। सूत, रेशम, ऊन से बने वस्त्रों को आकर्षक रूप प्रदान करने में दस्तकारों की ही भूमिका अति महत्वपूर्ण रही है। जीविकोपार्जन के एक साधन रूप में प्रारम्भ हुआ हस्तशिल्प उद्योग कब धनाढ्य एवं कुलीन वर्ग की पसन्द बन गया इसका लेखा–जोखा तो उपलब्ध नहीं है लेकिन विदेशी आक्रांताओं की कुटिल नीतियों के झंझावातों को झेलते हुए इसने अपनी पहचान बनाए रखी है तो वह निःसन्देह इससे जुड़े दस्तकारों की वर्षों की मेहनत एवं पीढ़ी–दर–पीढ़ी इस कला को सहेज कर रखने की दृढ़ इच्छाशक्ति का ही परिणाम है। तभी आज भी बनारसी साड़ियां चंदेरी साड़ियां कांजीवरम् सिल्क, कश्मीरी शॉल, सांगानेरी प्रिंट्स, फर्रूखाबादी रजाइयां, जोधपुरी जूतियां, जयपुरी रजाइयां, फिरोजबादी चूड़ियां, जलेसरी घुंघरू, मुरादाबादी बर्तन, जोधपुरी फर्नीचर, अलीगढ़ के ताले, हैदराबादी फर्नीचर आदि ऐसे अनेक ब्रांड नाम हैं जो शताब्दियों से भारतीय जनमानस में अपनी पहचान बनाए हुए हैं। इन ब्रांडों की विशेष बात यह है कि इनका सृजन किसी जानी मानी कम्पनी की पहल पर किसी विज्ञापन एवं विपणन विशेषज्ञ द्वारा नहीं किया गया है बल्कि इनकी पहचान एवं लोकप्रियता इन उत्पादों के सृजन एवं विनिर्माण से जुड़े हस्तशिल्प के दस्तकारों की कठिन मेहनत, सृजनात्मक कौशल एवं पेशे से जुड़ी हुई निष्ठा के ही सम्मिलित परिणाम हैं।

हस्तशिल्प उद्योग में रोजगार और निर्यात के अच्छे अवसर

देश के विभिन्न भागों में स्थानीय स्तर पर उपलब्ध कच्चे माल तथा वहां परम्परागत तरीके से विकसित हुए कौशल के आधार पर विभिन्न हस्तशिल्पियों द्वारा महारथ हासिल की गई है और कुछ खास उत्पादों में विभिन्न नगरों द्वारा विशेष रूप से अपनी

खास पहचान बनाई है। उदाहरण के लिए **हथकरघा शिल्प** के लिए बनारस, कांजीवरम, चन्देरी, सरघना, मऊनाथ भंजन, रानीपुर, जम्मू, इरोड, शोलापुर आदि केन्द्र अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं जहां साड़ियां, तौलिए, चादरें, चुनरी, खद्दर, रेशम, ऊनी शॉल आदि बड़ी मात्रा में निर्मित किए जाते हैं। यहां के अनेक उत्पादों को संयुक्त राज्य अमेरिका, इंग्लैंड, रूस, जर्मनी तथा खाड़ी के कुछ देशों को निर्यात भी किया जाता है।

इसी प्रकार **वस्त्र शिल्प** जिसमें हाथ से छपे वस्त्र, साड़ियां, रजाई के लिहाफ, चादरें, मेजपोश, पर्दे आदि बनाए जाते हैं, के लिए जयपुर, बाड़मेर, मथुरा, फर्रुखाबाद, बांरू, सांगानेर, जोधपुर, भुज, फरीदाबाद, अमरोहा, पिलखुआ, सरघना आदि प्रमुख उत्पादन केन्द्रों ने प्रसिद्धि पाई हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका, जर्मनी, रूस तथा खाड़ी के देशों में इन उत्पादों की बड़ी मांग है जहां इन्हें निर्यात भी किया जाता है। **इम्ब्राइडरी शिल्प** के अन्तर्गत लखनऊ, फर्रुखाबाद, आगरा, बाड़मेर, जोधपुर, जयपुर, जैसलमेर, कच्छ, अहमदाबाद, अमृतसर, कुल्लू, धर्मशाला, चंबा, श्रीनगर, वाराणसी, मुर्शिदाबाद, तंसारे, हैदराबाद आदि स्थानों पर हाथ की कढ़ाई वाले वस्त्र, लहंगे, स्कार्फ, कुर्ते, कमीजें, स्कर्ट, साड़ियां बड़ी मात्रा में निर्मित की जाती है। एम्ब्राइडरी शिल्प के अन्तर्गत उत्पादित उत्पादों को विशेष रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, इंग्लैण्ड, जर्मनी, रूस तथा खाड़ी के विभिन्न देशों को निर्यात किया जाता है जहां इनकी विशाल मांग है। **टैराकोटा व जरी शिल्प** के उत्पादों के लिए फर्रुखाबाद, जयपुर, जोधपुर, बनारस, चेन्नई, बस्तर, सूरत, बरेली, आगरा, अमृतसर, बाड़मेर, मुर्शिदाबाद, तंजौर, हैदराबाद केन्द्र प्रसिद्ध हैं। यहां के उत्पादों को खाड़ी के देशों के अतिरिक्त इटली, इंग्लैण्ड तथा जापान को भी बड़ी मात्रा में निर्यात किया जाता है। **कालीन शिल्प** के अन्तर्गत देश में हस्तनिर्मित कालीनों का बड़ी मात्रा में उत्पादन किया जाता है। कालीन निर्माण के प्रमुख केन्द्रों में भदोही, बनारस, आगरा, हाथरस, कश्मीर, अमृतसर, ग्वालियर आदि मुख्य रूप से विश्व प्रसिद्ध उत्पादक केन्द्र हैं जहां निर्मित कालीनों की अमेरिका सहित अनेक यूरोपीय और खाड़ी के देशों में विशाल मांग है जहां इन कालीनों का बड़ी मात्रा में निर्यात किया जाता है।

कांच शिल्प के अन्तर्गत फिरोजाबाद, जयपुर, बाडमेर, जोधपुर आदि नगरों में उच्च कोटि की चूड़ियां, कंगन, कांच के बर्तन तथा कांच की कलात्मक वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है। इसी प्रकार **धातु शिल्प** में विभिन्न प्रकार के बर्तनों, मूर्तियों, सजावट के सामानों, ट्राफियां तथा स्मृति चिन्हों का मुरादाबाद, सम्भल, अलीगढ़, जोधपुर, जयपुर, जैसलमेर, दिल्ली, रेवाड़ी, तंजापुर, चेन्नई, मंडप, जगाधरी आदि केन्द्रों पर निर्माण किया जाता है जिन्हें मध्य पूर्व के देशों, जर्मनी, फ्रांस तथा अमेरिका को निर्यात भी किया जाता है। **काष्ठ शिल्प** के लिए देश भर में विभिन्न केन्द्र प्रसिद्धि हासिल किए हुए हैं। मुख्य रूप से सहारनपुर, नगीना, जयपुर, जोधपुर, बाड़मेर, होशियारपुर, श्रीनगर, अमृतसर, जगलपुर, बंगलौर, मैसूर, चेन्नपट्टन, चेन्नई, मंडप, बहरामपुर, अहमदाबाद, राजकोट आदि उच्चकोटि के फर्नीचर, खिलौने तथा सजावट के सामान के उत्पादों के लिए अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।

लैदर शिल्प के लिए कोल्हापुर, इंदौर, बाड़मेर, जोधपुर विशेष रूप से जाने जाते हैं जहां निर्मित उत्पादों को आसियान तथा खाड़ी के देशों के अतिरिक्त इंग्लैण्ड और जर्मनी को निर्यात भी किया जाता है। **रत्न–आभूषण शिल्प** के प्रमुख केन्द्रों में दिल्ली, जयपुर, सूरत, जलेसर, अहमदाबाद, राजकोट, मुरादाबाद, सम्भल, कोहिया, कटक, कालाहांडी, करीम नगर, तिरूपति, राजामुंदरी का देश भर में विशिष्ट स्थान है। यहां निर्मित सोने–चांदी, हीरे तथा रत्न जड़ित आभूषणों के अतिरिक्त आर्टिफिशियल ज्वैलरी की भी खाड़ी व यूरोपीय देशों में विशाल मांग है जहां इनका निर्यात भी किया जाता है। विभिन्न प्रकार के हस्तशिल्प उत्पादों के निर्यात से देश को बड़ी मात्रा में विदेशी मुद्रा भी प्राप्त होती है।

भारतीय हस्तशिल्प उद्योग ने बड़ी मात्रा में रोजगार सृजन तथा विदेशी मुद्रा के अर्जन के अतिरिक्त भारतीय संस्कृति और धरोहर को भी संजोकर रखने में एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। हस्तशिल्प के अन्तर्गत विकसित हमारी मूर्तिकला और वास्तुकला में धार्मिक रीति–रिवाजों एवं परम्पराओं का संगम भी दृष्टिगोचर होता है। सभी प्रकार के उद्योगों और सभी क्षेत्रों में नई तकनीकी और नई विधाओं के पदार्पण एवं नए–नए प्रकार के उत्पादों के आ जाने के बाद भी आज हमारे हस्तशिल्प उत्पादों की भारतीय धनाढ्य वर्गों के अतिरिक्त विकसित देशों में भी अच्छी–खासी मांग है। इसके साथ–साथ एम्ब्राइडरी, चिकन साड़ियों, एम्ब्राइडरी की हुई शेरवानी, जोधपुरी सूट एवं अचकन, कांच की चूडियों, सोने–चांदी के आभूषणों के साथ–साथ हस्तशिल्प की अन्य अनेक वस्तुओं ने विभिन्न धर्मों एवं विभिन्न संस्कृतियों को आपस में जोड़कर एक सर्वथा नवीन संस्कृति को भी जन्म दिया है जिसे "गंगा जमुनी" अथवा हिन्दुस्तानी संस्कृति का नाम दिया जा सकता है। ऐसी कुछ वास्तविकताओं को स्वीकारते हुए वर्तमान में सरकार द्वारा भी हस्तशिल्प को बढ़ावा देने हेतु अनेक कारगर कदम उठाए गए हैं। इस दिशा में एक विशेष कदम कालीन बुनाई के क्षेत्र में कालीन बुनाई प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था हेतु, 'विभागीय बुनियादी प्रशिक्षण' केन्द्रों की स्थापना के माध्यम से उठाया गया है।

इसके अतिरिक्त विशेष रूप से कालीन बुनाई के क्षेत्र में उच्च तकनीकी के प्रयोग से उत्तम गुणवत्तायुक्त उत्पादों के विकास हेतु कौशल विकास करने हेतु, उच्चीकृत प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना भी की गई हैं। बंगलुरू, कोलकाता तथा गुवाहाटी में स्थापित हुए इन केन्द्रों के माध्यम से हस्तशिल्प के क्षेत्रों में नई

तकनीकी व डिजायनों को विकसित करने के उद्देश्य से क्षेत्रीय अभिकल्प एवं तकनीकी विकास केन्द्रों की स्थापना की है। अपनी सृजनशीलता का बेहतरीन नमूना पेश करने वाले शिल्पकारों को शहरी बाजार उपलब्ध कराकर उन्हें आर्थिक विकास के अवसर प्रदान करने हेतु दस्तकारी हाट समिति की पहल पर 'दिल्ली हाट' की स्थापना भी की गई है। आगरा, अहमदाबाद, भुवनेश्वर, रांची, करनाल, जम्मू, तिरूपति कोलकाता आदि शहरों में शहरी हाटों की स्थापना कर अवसर उपलब्ध कराने तथा विभिन्न शहरी हाटों की स्थापना किए जाने का निर्णय लिया जा चुका है और यहां इनकी स्थापना हेतु तेजी से प्रयास किए जा रहे हैं।

इनके साथ–साथ हाल ही में उठाए गए विशेष कदमों में हथकरघा उत्पादों की देश–विदेश में लोकप्रियता बढ़ाने के लिए जून, 2006 में उनको खास पहचान देने की कोशिश की गई है। इस योजना के अन्तर्गत 287 इकाइयां पंजीकृत की गई है और उन्हें 4 लाख 23 हजार लेबल वितरित किए गए हैं। पहले से चल रहे 110 आगारों के अलावा सरकार द्वारा वर्ष 2006–07 में 273 और धागा आगार खोले गए हैं। ये आगार मुख्यतः उन समूहों में खोले गए हैं जहां कम से कम एक हजार हथकरघे हों ताकि उचित मूल्य पर पर्याप्त धागा उपलब्ध हो सके। सरकार द्वारा पांच हजार से कम हथकरघे वाले एक सौ और समूहों के विकास का काम हाथ में लिया गया है। इनके एकीकृत और समग्र समस्याओं के निदान के लिए विशेष अध्ययन किया जा रहा है ताकि आवश्यक कदम उठाए जा सके। देश में हस्तशिल्प विद्या, हस्तशिल्प उत्पादों तथा हस्तशिल्पियों के समग्र विकास हेतु सरकार द्वारा कुछ खास योजनाओं का संचालन भी किया जा रहा है। इन योजनाओं में बाबा साहिब अम्बेडकर हस्तशिल्प विकास योजना, डिजायन एवं तकनीकी विकास योजना, बाजार एवं सहयोग सेवा योजना, निर्यात प्रोत्साहन योजना, हस्तशिल्प कारीगरों हेतु विशेष बीमा योजना, विशेष हस्तशिल्प प्रशिक्षण कार्यक्रम योजना मुख्य रूप से उल्लेखनीय है।

इन योजनाओं से अतिरिक्त हथकरघा क्षेत्र के लिए कुछ अन्य विशेष योजनाओं को भी लागू किया जा रहा है। इन योजनाओं में दीनदयाल हथकरघा प्रोत्साहन योजना, बाजार प्रोत्साहन योजना, कार्यस्थल कम गृह निर्माण योजना, बुनकर कल्याण संघ योजना का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। इन योजनाओं के सफल संचालन के फलस्वरूप हस्तशिल्प उत्पादों के उत्पादन में अभिवृद्धि हुई है। इन उत्पादों का कारीगरों को उचित मूल्य दिलाने के उद्देश्य से कुछ विशिष्ट योजनाएं भी हाल ही में संचालित की गई हैं। इनमें वर्ष 2006 में लागू की गई क्रेडिट गारंटी योजना, सेन्टर एण्ड इलैक्ट्रॉनिक किओस्क की स्थापना योजना, गांधी शिल्प हाट योजना आदि अति महत्वपूर्ण योजनाएं हैं जिनके माध्यम से देश के कुछ भागों में कारीगरों को बाजार की समुचित सुविधाओं की उपलब्धता सुनिश्चित की जा रही है। इसके साथ–साथ ही केन्द्र सरकार द्वारा इण्डियन एक्सपोजीशन मार्ट, ग्रेटर नोएडा तथा राजीव गांधी हस्तशिल्प भवन, नई दिल्ली की स्थापना भी की गई है। राज्य स्थित एजेन्सियों द्वारा कारीगरों को उनके उत्पादों की बिक्री की समुचित सुविधा भी उपलब्ध कराई जाती है।

उपरोक्त वर्णित योजनाओं के संचालन के अतिरिक्त देश में हस्तशिल्प उद्योग के विकास हेतु सरकार द्वारा कुछ अन्य प्रयास भी किए जाते रहे हैं। इनके अन्तर्गत अब से लगभग 20 वर्ष पूर्व केन्द्र सरकार द्वारा 1986–87 में घोषित निर्यात–आयात नीति के तहत हस्तशिल्प वस्तुओं के निर्यात को बढ़ावा देने के लिए हस्तशिल्प हेतु "निर्यात प्रोन्नयन परिषद" की स्थापना की गई थी जो आज भी अपने निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति की दिशा में सफलतापूर्वक कार्यरत है। इस परिषद् द्वारा विदेशों में प्रतिवर्ष लगाए जाने वाले भारतीय हस्तशिल्प तथा उपहार मेलों की बदौलत विदेशी बाजारों में भारतीय हस्तशिल्प उत्पादों की मांग बढ़ी है। हमारे यहां निर्मित हस्तशिल्प वस्तुओं के प्रमुख आयातक देशों में अमेरिका, जर्मनी, इंग्लैण्ड, फ्रांस, फिनलैण्ड आदि देश खास तौर पर उल्लेखनीय हैं। इनमें से भी सर्वाधिक अर्थात कुल निर्यात का 32 प्रतिशत भाग अकेले संयुक्त राज्य अमरीका को किया जाता है। इसके बाद जर्मनी तथा इंग्लैण्ड का स्थान है जहां लगभग 11 प्रतिशत भाग निर्यात किया जाता है। फ्रांस को कुल निर्यात का 5 प्रतिशत, कनाडा, इटली, जापान, नीदरलैण्ड को 3–3 प्रतिशत तथा स्विट्जरलैण्ड व ऑस्ट्रेलिया को 2–2 प्रतिशत भाग निर्यात होता है। विगत कुछ वर्षों में भारतीय हस्तशिल्प उत्पादों के निर्यात के साथ–साथ इनके उत्पादन तथा रोजगार में हुई वृद्धि के आंकड़े तालिका–1 में दिए गए है। इसके अवलोकन से स्पष्ट होता है कि हमारी हस्तशिल्प वस्तुओं के निर्यात में प्रतिवर्ष 15 प्रतिशत की दर से वृद्धि हो रही है। हालांकि विश्व के कुल हस्तशिल्प कारोबार में भारत की हिस्सेदारी अभी भी मात्र 2 प्रतिशत है जिसे बढ़ाए जाने के लिए प्रयासों को तीव्रतर किए जाने की आवश्यकता है।

उल्लेखनीय है कि भारतीय हस्तशिल्प उद्योग में हथकरघा क्षेत्र सबसे प्राचीन, विशिष्ट एवं विविधतापूर्ण है। हथकरघा क्षेत्र का देश की संस्कृति और धरोहर को बनाए रखने में भी प्रमुख स्थान रहा है। देश की अर्थव्यवस्था में भी इनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। बड़ी मात्रा में लोगों को रोजगार प्रदान करने वाले हथकरघा उद्योग का रोजगार की दृष्टि से कृषि के बाद देश में दूसरा स्थान है। यह क्षेत्र करीब 6 अरब, 20 करोड़ वर्गमीटर कपड़े का उत्पादन करता है। देश के कुल कपड़ा उत्पादन का 16 प्रतिशत इसी क्षेत्र में होता है और गत वर्ष इस क्षेत्र से करीब 40 अरब रुपए का निर्यात किया गया है। हथकरघे का इतिहास बताता है कि इसका आविष्कार नागालैण्ड की एक पर्वतीय महिला ने नदी में निरन्तर गिर कर बहने वाले एक झरने की लहरों

से प्रेरित होकर किया था। इस प्रकार हथकरघा शब्द उस करघे की ओर इशारा करता है जो ताने–बाने को सजा कर कपड़ों की बुनाई के लिए हाथ से चलाया जाता है। भारत के हथकरघा कपड़ों को उस पारम्परिक वर्ग में रखा जाता है जो बिना बिजली वाले करघों पर बनाए जाते हैं। प्राचीन काल में दैनिक इस्तेमाल से लेकर खास अवसरों और त्यौहारों पर पहने जाने वाले सभी प्रकार के वस्त्रों के लिए हाथ से बुने कपड़े ही इस्तेमाल किए जाते थे।

भारतीय हथकरघा वस्त्रों की उत्कृष्टता और कारीगरी की शानदार परम्परा है जो वैदिक काल से अक्षुण्ण चली आ रही है। विशाल देश के कोने–कोने में फैले उत्कृष्ट शिल्पकारों के सृजनात्मक और नवाचारी मस्तिष्क से यह परम्परा पुष्ट होती रही है। भारतीय हथकरघा क्षेत्र विभिन्न हथकरघों पर विभिन्न तकनीकों से सूत, रेशम, जूट और ऊनी धागों से अनेक प्रकार के कपड़े तैयार करता है। हथकरघा कपड़ों की इस दुनिया में तमिलनाडु के मद्रासी चेक और कांचीपुरम के रेशमी वस्त्र, जम्मू–कश्मीर के जामावार शाल, हिमाचल प्रदेश के ऊनी शाल, आंध्र प्रदेश और उड़ीसा के ईकत, वाराणसी की खूबसूरत ज़री और किमखाब, पश्चिमी बंगाल की ढकाई, हरियाणा की ज़ेकार्ड चादरें, गुजरात की पटोला, राजस्थान की कोटा, बंधेज और लहरिया, मध्य प्रदेश के चन्देरी सिल्क, पूर्वोत्तर की मेखला, चद्दर, रीसा, पचरा, फनेल, लिसेंकी आदि ने रोचक रंग भरे हैं।

इन आंचलिक विशिष्टताओं के साथ ही तकनीक और शैली का व्यापक आदान–प्रदान भी होता रहा है। कपड़ों और पहनावों के निर्यात में हथकरघा उत्पादों का अपना विशिष्ट स्थान है। भारत में हथकरघा वस्त्र उत्पादन में हुई प्रगति को तालिका–2 में दर्शाया गया है। मशीनीकरण के बढ़ते चलन के बावजूद इसका महत्व लगातार बढ़ रहा है। भारत से निर्यात होने वाले कपड़ों, निर्मित वस्तुओं, तौलिए, चादर, रूमाल, आदि जैसे तैयार कपड़े और पहनावों का करीब 15 प्रतिशत हिस्सा हथकरघा उत्पादों का ही होता है। तमिलनाडु में करूर, केरल में कन्नूर और हरियाणा में पानीपत देश के प्रमुख निर्यातोन्मुखी उत्पादन केन्द्र हैं। इनके अलावा केखरा, वारासानी, भागलपुर, शान्तिपुर, जयपुर, वारंगल,

तालिका–1
भारत का हथकरघा वस्त्र उत्पादन की प्रगति

क्रम सं.	वर्ष	हथकरघा वस्त्र उत्पादन (मिलियन वर्गमीटर)
1.	2001–02	7585
2.	2002–03	6980 (– 7.98 प्रतिशत)
3.	2003–04	5493 (– 21.30 प्रतिशत)
4.	2004–05	5722 (+ 4.17 प्रतिशत)
5.	2005–06	6188 (+ 8.14 प्रतिशत)

चिराला, पोचमपल्ली, संबलपुर, और मदुरई अन्य हथकरघा उत्पादन केन्द्र हैं जो इसके निर्यात में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं। चेन्नई, दिल्ली, मुम्बई और कोलकाता में अनेक ऐसे निर्यातक हैं जो अपने उत्पाद इन केन्द्रों से प्राप्त करते हैं। वर्तमान में देश में ऐसे हथकरघा निर्यातकों की संख्या करीब 2,000 है।

भारत में हथकरघा वस्त्र के उत्पादन में निरन्तर हो रही वृद्धि के साथ–साथ इस सम्बन्ध में यह भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि विश्व में हो रहे परिवर्तन हथकरघा क्षेत्र के लिए नई–नई चुनौतियां पेश कर रहे हैं। करों में कमी, मुक्त बाजार, कोटा प्रतिबन्धों की समाप्ति आदि ऐसे अनेक नए घटनाक्रमों से मशीन से बने उत्पादों के लिए घरेलू और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों बाजार खुल गए हैं। इन बाजारों के मशीन से बने उत्पादों से पट जाने की आशंका है। हथकरघा क्षेत्र को अपने पुराने प्रतिद्वन्द्वियों अर्थात् पावरलूम और मिलों के साथ–साथ उत्पादकता, मूल्य, गुणवत्ता आदि के लिए बड़े निर्माताओं से भी मुकाबला करना पड़ रहा है। अतः हथकरघा उद्योग को बचाने का एकमात्र तरीका यही है कि उसे प्रतिस्पर्धा के लिए भली–भांति तैयार किया जाए। इसके लिए इसकी प्रौद्योगिकी में सुधार लाकर उत्पादकता बढ़ाने और बुनकरों के कौशल को उन्नत बनाने के साथ मूल्यों को भी प्रतिस्पर्धी बनाना होगा। इसके अतिरिक्त बुनकरों के समूह के बीच सम्पर्क साधन बढ़ाकर और बुनियादी सुविधाओं के विकास से हथकरघा क्षेत्र कम समय में अधिक मात्रा में उत्पादन कर सकेगा।

हालांकि भारत सरकार हथकरघा क्षेत्र के विकास के लिए विशेष रूप से प्रतिबद्ध है। हथकरघा क्षेत्र के समग्र और एकीकृत विकास के लिए अनेक उपाय भी किए गए हैं। चरणबद्ध तरीके से समूहों के विकास, हथकरघा प्रतीक का वितरण और उसको अपनाना, उत्पादन के विभिन्न चरणों पर मशीनरी और उपकरणों का तकनीकी उन्नयन, धागे का गुणवत्ता नियंत्रण, धागे की सहज आपूर्ति के लिए धागा आगारों की स्थापना आदि ऐसे अनेक प्रयास इस क्षेत्र को सुदृढ़ता प्रदान करने के लिए किए गए हैं। इसके साथ ही प्राथमिक हथकरघा बुनकर सहकारी समितियों को सरकारी मान्यता प्रदान की गई है और हथकरघा संगठनों का पुनर्गठन भी किया गया है। कम दरों पर कर्ज दिलाने की व्यवस्था भी की गई है। तभी आज भारतीय हथकरघा उत्पाद चाहे वह सूती हो या रेशमी, ग्राहक की मांग के अनुसार हर अवसर के लिए पूर्णतया उपयुक्त, सुरूचिपूर्ण और विशिष्ट कृति के रूप में अपना गौरवमय स्थान बनाए हुए है।

निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जाना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि हथकरघा सहित हमारा हस्तशिल्प उद्योग अनेक प्रकार की कठिनाइयों को नजरअंदाज करते हुए भारत के कोने–कोने में किसी न किसी रूप में अपनी उपस्थिति बनाए हुए हैं। यह सत्यता है कि स्थानीय स्तर पर कच्चे माल एवं कारीगरों की उपलब्धता

तालिका–2

भारत का हस्तशिल्प उद्योग–उत्पादन रोजगार व निर्यात

क्रम सं.	वर्ष	कुल उत्पादन (करोड़ रु0)	कुल रोजगार (लाख व्यक्ति)	निर्यात की मात्रा (करोड़ रु0)
1.	1997–98	10,411	52.92	6,458
2.	1998–99	12,175	54.24	7,072
3.	1999–2000	13,916	55.60	8,060
4.	2000–2001	16,340	57.00	9,271
5.	2001–2002	18,677	58.41	10,610
6.	2002–2003	22,765	60.10	12,732
7.	2005–2006	47,204	67.70	17,277

तथा राजे–महाराजे, नवाबों–रईसों के काल में विभिन्न प्रकार की कलाओं को दिए गए संरक्षण से देश के अलग–अलग भागों में अलग–अलग प्रकार के हस्तशिल्प उद्योग स्थापित और विकसित हुए हैं। परिवहन एवं संचार के तीव्रगामी साधन विकसित हो जाने के कारण हस्तशिल्प वस्तुओं का बाजार भले ही स्थानीय से बढ़कर आज अन्तर्राष्ट्रीय हो गया हो लेकिन उनके उत्पादन केन्द्र अभी भी देश के अलग–अलग राज्यों में न केवल केन्द्रित हैं बल्कि अपनी विशेष पहचान भी बनाए हुए हैं।

हालांकि हमारे हस्तशिल्प उद्योग को आज आधुनिक वस्त्र उद्योग, प्लास्टिक उद्योग, स्टील उद्योग, प्लास्टिक फर्नीचर उद्योग आदि से बड़ी प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पड़ रहा है। उत्पादों की जटिलता, मानकीकृत उत्पादों का अभाव, बाजार तन्त्र से विलगता, औसत उत्पादकता में स्थिरता, नई प्रौद्योगिकी, औद्योगिक नीतियों व बाजार प्रणालियों से पूर्णतया उपेक्षित, दस्तकारी व्यवसायों का परम्परागत तौर पर विशिष्ट जातियों व खास समूहों तक सीमित रहना, कम मजदूरी दर के चलते कुशलतम दस्तकारों के बच्चों का पारिवारिक व्यवसाय के प्रति लगाव न होना, हस्तशिल्प उत्पादों के विपणन की समुचित व्यवस्था के अभाव में वास्तविक उत्पादकों का मध्यस्थों द्वारा शोषण किए जाने जैसी अन्य अनेक चुनौतियों के बावजूद निरन्तर विकासमान है, भले ही विकास की वांछित गति प्राप्त नहीं की जा पा रही है। इसे प्राप्त करने के लिए सरकार द्वारा अतिरिक्त आय सृजन की सम्भाव्यता वाले अपने हस्तशिल्प उद्योग को उच्च प्राथमिकता प्रदान किया जाना आज समय का तकाजा है।

यह वास्तविकता है कि आज हस्तशिल्प उद्योग को नई दिशा और नए आयाम देकर ग्रामीण व अर्द्धशहरी क्षेत्रों में इसे बेरोजगारी एवं निर्धनता निवारण का एक अहम् व कारगर औज़ार बनाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त यह एक ऐसा उद्योग भी है जो शताब्दियों से संरक्षित, विकसित एवं पल्लवित भारतीय संस्कृति को देश से बाहर ले जाकर उसका प्रसार कर सकने की क्षमता भी रखता है। अतः देश में हस्तशिल्प उद्योग के समुचित विकास हेतु रणनीति में कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर बल दिया जाना अति आवश्यक है। जैसे सरकार को हस्तशिल्प उत्पादों को सजावट की वस्तुओं के दायरे से बाहर निकालकर उपयोगिता वाले उत्पादों के दायरे में लाया जाना चाहिए क्योंकि फैंसी क्राफ्ट उत्पादों का बाजार लगभग संतृप्त हो चुका है। ऐसे उपयोगी उत्पादों के विनिर्माण पर भी अधिक बल दिया जाना चाहिए जिनकी मांग बार–बार उत्पन्न होती है अर्थात् जो उपभोग योग्य उत्पाद हैं।

इसके साथ ही हस्तशिल्प वस्तुओं हेतु प्रभावी विपणन तन्त्र विकसित करना भी बहुत जरूरी है। आस्ट्रेलिया में कैट्स टैंगों नाम से विख्यात, मेलबोर्न का रविवारी हस्तशिल्प बाजार तथा राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली का दिल्ली हाट की तर्ज पर देश के महानगरों में विशुद्ध रूप से हस्तशिल्प की वस्तुएं बेचे जाने हेतु बाजार–स्थलों के विकास से अच्छे परिणाम प्राप्त हो सकते हैं लेकिन इन बाजारों में किसी मध्यस्थ को भाग लेने की अनुमति नहीं होनी चाहिए। इनमें केवल हस्तशिल्प के दस्तकार स्वयं अपने उत्पादों और कला का प्रदर्शन करने तथा उसे सीधे ग्राहकों को बेचने की व्यवस्था भी सुनिश्चित की जानी चाहिए। रहन–सहन, फैशन, रूचियों आदि में आए परिवर्तन के अनुरूप हस्तशिल्प में समय की मांग के मुताबिक नवीकरण किया जाना भी आज समय का तकाजा है। यदि ऐसा किया जाना सुनिश्चित कर सके तो हमारा हस्तशिल्प उद्योग निश्चित रूप से देश में अग्रणी पंक्ति में पुनः स्थापित हो सकेगा और इसके विकास से न केवल देश के विभिन्न भागों में बढ़ती हुई बेरोजगारी और गरीबी को कम किया जाना सम्भव हो सकेगा बल्कि देश की अर्थव्यवस्था के विकास में भी इसकी महत्वपूर्ण भूमिका प्राप्त हो सकेगी।

(लेखक राज्य नियोजन संस्थान में संयुक्त निदेशक हैं।)

ई–मेल : umeshagarwal215@yahoo.in

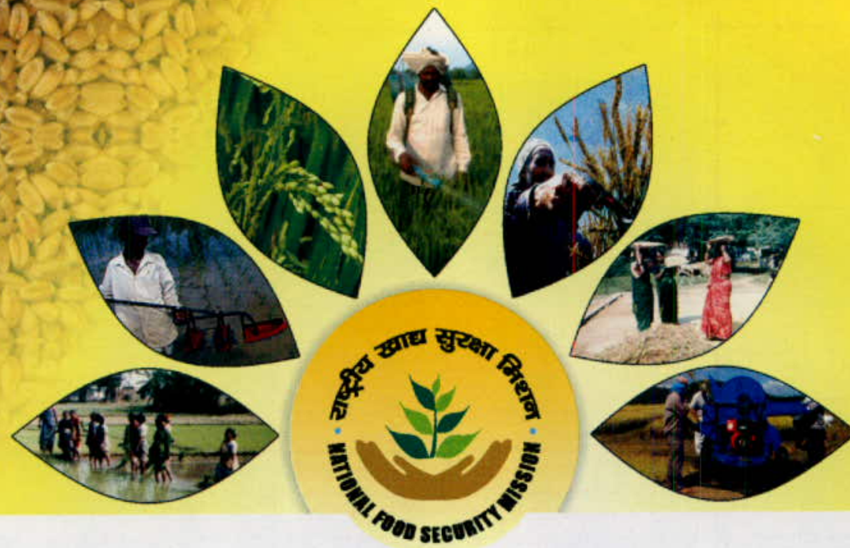

किसान की उन्नति – देश की प्रगति

खाद्यान्नों की पैदावार को प्रोत्साहित करने के लिए बीज, कीटनाशक, पोषक तत्व और यन्त्र उपलब्ध कराना

गेहूं

- जीरो टिल ड्रील मशीन, रोटावेटर्स, डीज़ल पम्प सेट तथा अन्य खेती उपकरणों की खरीद पर 50% की छूट।
- किसानों को बीजों के छोटे पैकैट (मिनिकिट) निःशुल्क प्रदान करना।
- लवण प्रभावित भूमि को ठीक करने के लिए जिप्सम की खरीद पर 50% की छूट।

चावल

- खरपतवार हटाने वाले यन्त्र (कोनोवीडर) तथा अन्य उपकरणों की खरीद पर 50% की छूट। विशेष रूप से उन किसानों के लिए जो एसआरआई तकनीक से चावल की खेती कर रहे हैं।
- किसानों के खेतों पर खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाने के लिए खेती की नई बेहतर तकनीक का निःशुल्क प्रदर्शन।
- चावल के संकर बीज पैदा करने वाले किसानों के लिए विशेष प्रोत्साहन की व्यवस्था।
- किसानों को बीजों के छोटे पैकेट निःशुल्क प्रदान करना।
- अम्लीय भूमि को ठीक करने हेतु चूने की खरीद पर 50% की छूट।

दालें

- छिड़काव करने वाले यन्त्रों की खरीद पर 50% की छूट।
- किसानों के खेतों पर अच्छी फसल के लिए इकरीसेट द्वारा विकसित खेती की नई बेहतर तकनीकों का निःशुल्क प्रदर्शन।
- बीज उत्पादक किसानों के लिए विशेष प्रोत्साहन की व्यवस्था।

एन.एफ.एस.एम. द्वारा किसानों को दिए जाने वाले अन्य लाभ

• उच्च गुणवत्ता वाले संकर बीजों की आपूर्ति • स्वस्थ उपजाऊ भूमि के लिए सूक्ष्म पोषक तत्वों को सस्ती दरों पर देना • कीटनाशक, कृमिनाशकों का सस्ती दरों पर वितरण करके अच्छी पैदावार सुनिश्चित करना • निःशुल्क कृषक फील्ड स्कूलों के जरिए किसानों को उनके खेतों पर प्रशिक्षण देना।

अधिक जानकारी के लिए निकटतम कृषि अधिकारी से मिलें
अथवा
किसाना कॉल सेन्टर नं. 1551 पर निःशुल्क फोन करें

कृषि एवं सहकारिता विभाग
कृषि मंत्रालय
भारत सरकार

davp 01101/13/0055/0708

KH-02/08/04

घटती निर्धनता और रोजगार के बढ़ते अवसर

डॉ. ऋतु

स्वतन्त्रता के साठ वर्ष बीत चुके हैं और भारत विकसित देश बनने की दौड़ में शामिल हो गया है। पिछले कुछ वर्षों में भारत को स्वर्णिम बनाने के लिए भरसक प्रयास किए जा रहे हैं चाहे भारत का कोई भी क्षेत्र हो लोगों का जीवन स्तर पूर्व से बेहतर हुआ है। यह सोच कि भारतीय अर्थव्यवस्था की पलक झपकते ही कायापलट हो जाये ऐसा सम्भव नहीं हैं परन्तु जिस दिशा की ओर भारत प्रवृत्त है वह आर्थिक एवं सामाजिक सुदृढ़ीकरण की सूचक है।

योजना आयोग द्वारा 2 मार्च 2007 को गरीबी संबंधी सरकारी अनुमान जारी किया गया। अनुमान दो माध्यमों से किया गया। पहला माध्यम 'यूनिफार्म रिकॉल पीरियड' पर आधारित है, (इसके अन्तर्गत 30 दिनों में सभी वस्तुओं पर उपभोक्ता व्यय का आंकड़ा संग्रहकर गरीबी रेखा का मापन किया जाता है)। 'यूनिफार्म रिकॉल पीरियड' के आधार को लेकर जो परिणाम आये उसके अनुसार वर्ष 2004–05 में 27.5 प्रतिशत लोग निर्धनता रेखा से नीचे थे जबकि वर्ष 1993–94, 1987–88 एवं 1983–84 में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों का प्रतिशत क्रमशः 36 प्रतिशत, 38 प्रतिशत एवं 44.8 प्रतिशत था। वहीं दूसरा माध्यम निर्धनता मापक का बना 'मिक्सड रिकॉल पीरियड'। मिक्सड रिकॉल पीरियड के अन्तर्गत 365 दिनों में पांच–गैर–खाद्यान्न वस्तुओं (कपड़ा, स्थायी वस्तुएं, फुट वियर, शिक्षा एवं संस्थागत चिकित्सा) पर उपभोक्ता व्यय के आधार पर गरीबी का अनुमान लगाया जाता है। इसके आधार पर वर्ष 2004–05 में 21.8 प्रतिशत लोग ग्रामीण इलाकों में एवं 21.7 प्रतिशत लोग शहरी इलाकों में गरीबी रेखा से नीचे रह रहे थे।

आयोग द्वारा जारी अनुमान में कहा गया है कि आर्थिक सुधार से गरीबी में कमी आयी है। अगर राज्यवार दृष्टि से देखा जाये तो जम्मू कश्मीर में सबसे कम निर्धनता है जहां मात्र 5.4 प्रतिशत जनसंख्या ही गरीबी (शहरी एवं ग्रामीण दोनों के मामले में) रेखा से नीचे है वहीं सर्वाधिक निर्धनता उड़ीसा (46.4 प्रतिशत) में है।

विश्व के विभिन्न देशों में निर्धनता का आंकलन करने के अलग–अलग माध्यम हैं। भारत में निर्धनता का आंकलन पर्याप्त मात्रा में ऊर्जा उपभोग न कर पाने की क्षमता के आधार पर किया जाता है। उस व्यक्ति को निर्धनता की रेखा से नीचे माना जाता है, जो ग्रामीण क्षेत्रों में प्रतिदिन 2400 कैलोरी व शहरी क्षेत्रों में 2100 कैलोरी भोजन प्राप्त करने में असमर्थ है। वर्ष 2004–2005 में ग्रामीण क्षेत्र में निर्धनता का आंकलन कृषि श्रमिकों के लिए उपभोक्ता मूल्य सूचकांक के आधार पर किया गया है। वहीं शहरी क्षेत्र में निर्धनता का निर्धारण औद्योगिक श्रमिकों के लिए उपभोक्ता मूल्य सूचकांक के आधार पर किया गया है।

राज्यवार प्रति व्यक्ति प्रति माह आय रुपये में

राज्य	ग्रामीण	शहरी
आंध्र प्रदेश	292.95	542.89
असम	387.64	378.84
बिहार	354.36	435.00
छत्तीसगढ़	322.41	560.00
दिल्ली	410.38	612.91
गोवा	362.25	665.90
गुजरात	353.93	541.16
हरियाणा	414.76	504.49
हिमाचल प्रदेश	394.28	504.49
जम्मू–कश्मीर	391.26	553.77
झारखंड	366.56	454.24
कर्नाटक	324.17	599.66
केरल	430.12	559.39
मध्य प्रदेश	327.78	570.15
महाराष्ट्र	362.25	665.90
उड़ीसा	325.79	528.49
पंजाब	410.38	466.16
राजस्थान	374.54	559.63
तमिलनाडु	351.86	547.42
उत्तर प्रदेश	365.84	483.26
उत्तराखंड	478.02	637.67
पश्चिम बंगाल	382.82	449.32
दादरा नागर हवेली	362.25	665.90
अखिल भारत	**356.30**	**538.60**

गरीबी रेखा के निर्धारण का यह तरीका योजना आयोग के पूर्व उपाध्यक्ष प्रो. डी.टी. लकड़वाला समिति की सिफारिशों के अनुरूप है। लकड़ावाला समिति के अनुसार हर राज्य में अलग–अलग मूल्य स्तर के आधार पर अलग–अलग गरीबी रेखा होती है। लकड़वाला समिति की सिफारिशों को नौवीं पंचवर्षीय योजना में गरीबी रेखा के माप के लिए योजना आयोग ने स्वीकार कर लिया था। इससे पूर्व कृषि श्रमिकों के लिए उपभोक्ता मूल्य सूचकांक

एवं औद्योगिक श्रमिकों के लिए उपभोक्ता मूल्य सूचकांक के स्थान पर एक राष्ट्रीय मूल्य निर्देशांक प्रयोग में लाया जाता था। 1993–94 में देश में लकड़वाला समिति के द्वारा निर्धनता के मापक के अनुसार गरीबी की रेखा से नीचे लोगों की संख्या 35.97 प्रतिशत आंकलित की गई थी।

अब यह विचार करने योग्य विषय है कि भारत में निर्धनता के क्या कारण हैं। मूलतः संसाधन की कमी, वैयक्तिक आय वितरण की असमानता, जनसंख्या वृद्धि, सामाजिक संरचनागत कमजोरी, असंतुलित आर्थिक योजना इत्यादि।

सरकार द्वारा पिछले कुछ समय से सामाजिक क्षेत्रों पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है। जहां सामाजिक क्षेत्र पर 2001 में व्यय 21.4 प्रतिशत था वहीं वर्ष 2006–07 में यह बढ़कर 22.2 प्रतिशत हो गया। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के दिशा–निर्देश पत्र में वर्ष 2007 तक गरीबी के अनुपात में 5 प्रतिशत बिंदु तक और 2012 तक 15 प्रतिशत बिन्दु तक कमी लाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

निर्धनता को दूर करने हेतु विभिन्न प्रयास

20 सूत्रीय कार्यक्रम–देश में निर्धनता निवारण हेतु 20 सूत्रीय कार्यक्रम को नवीन रूप प्रदान किया गया। इस रूप में इस कार्यक्रम को अप्रैल 2007 से लागू किया गया। इस कार्यक्रम के बीस सूत्र निम्नांकित है –

(1) ग्रामीण निर्धनता पर हमला (2) अच्छी फसलें (3) सिंचाई के पानी का सदुपयोग (4) गांवों के लिए ऊर्जा (5) पर्यावरण का संरक्षण (6) वर्षा पर निर्भर कृषि की व्यूह रचना (7) भूमि सुधारों की प्रभावशीलता (8) दो–बच्चों का मानक (9) ग्रामीण श्रम के लिए विशेष कार्यक्रम (10) वानिकी की नई समूह रचना (11) पीने के लिए स्वच्छ जल (12) शहरी मलिन बस्तियों का सुधार (13) उपभोक्ता का समुत्थान (14) शिक्षा का विस्तार (15) युवाओं के लिए नए अवसर (16) महिलाओं के लिए समानता (17) अनु. जाति एवं अनु. जनजाति के लिए न्याय (18) सबके लिए स्वास्थ्य (19) एक उत्तरदायी प्रशासन (20) व्यक्तियों के लिए आवास।

आवास मानव जीवन की मूलभूत आवश्यकता है। जनगणना के निष्कर्षों के अनुसार निर्धनता एवं आवास में सह सम्बन्ध दृष्टिगोचर होता है। 1998 में केन्द्र सरकार ने राष्ट्रीय आवास एवं पुनर्वास नीति घोषित की थी, जिसका उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति को आवास उपलब्ध करना था। ग्रामीण आवास नीति के तहत् वर्ष 2007–08 के बजट में 4040 करोड़ रुपए का प्रावधान किया गया है। इस कार्य योजना के प्रमुख कार्यक्रम निम्नांकित हैं।

ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में निर्धनता (एमआरपी उपभोग पर आधारित)

(प्रतिशत में)

क्र. सं.	क्षेत्र	1999–2000	2004–05
1.	ग्रामीण क्षेत्र	27.1	21.8
2.	शहरी क्षेत्र	23.6	21.7
	कुल	26.1	21.8

- **प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना** – वर्ष 2000–2001 तथा 2001–02 के दौरान प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना के 'ग्रामीण आवास' घटक के लिए क्रमशः 375 करोड़ रुपए तथा 407 करोड़ रुपए आवंटित किए गए।
- **इन्दिरा आवास योजना** – यह योजना वर्ष 1985–86 में आरएलएफजीपी की एक उपयोजना के रूप में प्रारम्भ हुई थी जिसका मूलभूत उद्देश्य अनुसूचित जाति/जनजाति तथा मुक्त बंधुआ मजदूरों को निःशुल्क आवास उपलब्ध कराना है। इस योजना के अन्तर्गत कुल निर्मित मकानों का 3 प्रतिशत हिस्सा ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले, निर्धनता की रेखा से नीचे रहने वाले विकलांग एवं मानसिक रूप से पीड़ित व्यक्तियों के लिए आरक्षित किया गया है। वर्ष 2005–06 में इस योजना के लिए 2750 करोड़ रुपए का आवंटन किया गया जिससे 14.41 लाख मकानों का निर्माण किया जाने का लक्ष्य था।
- **ग्रामीण आवास की ऋण सह–सब्सिडी योजना** – इस योजना का आरम्भ 1 अप्रैल 1999 से हुआ और इसमें 32000 रुपये तक की वार्षिक आय वाले ग्रामीण परिवारों को लक्षित लाभार्थियों में सम्मिलित करने का प्रावधान है। इस योजना में सब्सिडी राशि में केन्द्र एवं राज्यों की हिस्सेदारी 75:25 है और ऋण भाग व्यापारिक बैंकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों एवं आवास वित्त संस्थाओं द्वारा बांटा जाता है।

स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना

स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना ग्रामीण निर्धनों को स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध कराने की दृष्टि से एक समन्वित कार्यक्रम के रूप में 1 अप्रैल 1999 को आरम्भ की गई। इस योजना में पूर्व में चल रही छः योजनाओं का विलय किया गया। इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण लोगों को रोजगार उपलब्ध कराना है और यही कारण है कि इस योजना में सहायता प्राप्त व्यक्ति 'स्वरोजगारी' कहलाएंगे न कि लाभार्थी।

इस योजना की निम्न विशेषताएं हैं–

- प्रत्येक विकास खण्ड पर कुछ ऐसी गतिविधियों का चयन पंचायत समितियों द्वारा करवाये जाने का प्रावधान है जो शिल्प, स्थानीय संसाधनों एवं विपणन उपलब्धता के अनुरूप हो।
- यह योजना पंचायती राज संस्थाओं, बैंकों और स्वयंसेवी संगठनों की सक्रिय भागीदारी के साथ जिला ग्रामीण विकास एजेंसियों के द्वारा क्रियान्वित की जा रही है।
- इस योजना में प्रक्रियागत दृष्टिकोण और गरीब ग्रामीणों की क्षमता निर्माण पर बल दिया जाता है और यही कारण है कि इसमें स्वयंसेवी सहायता समूहों के विकास और पोषण में गैर–सरकारी संगठनों/व्यक्तियों/बैंकों को स्वयं सहायता

संवर्द्धन संस्थान/सुविधा प्रदाता के रूप में सम्मिलित किया जाता है।

- वर्ष 2005–06 के दौरान इस योजना के अन्तर्गत 1207078 स्वरोजगारियों को बैंक ऋण के रूप में 1125.42 करोड़ रुपए तथा सरकार से सब्सिडी के रूप में 37509 करोड़ रुपए प्रदान किए गए। इस योजना के फलस्वरूप 35.29 प्रतिशत अनुसूचित जाति तथा जनजाति के स्वरोजगारियों ने लाभ प्राप्त किया। वर्ष 2007–08 के बजट में इस योजना के अन्तर्गत 1800 करोड़ रुपए का प्रावधान किया गया है।

योजना के अन्तर्गत चयनित जिलों में ग्रामीण क्षेत्रों में प्रत्येक परिवार के एक सदस्य को वर्ष में कम से कम 100 दिन अकुशल श्रम वाले रोजगार की गारंटी दी गई है। राज्यों में कृषि श्रमिकों के लिए लागू वैधानिक न्यूनतम मजदूरी का भुगतान इसके लिए किया जाता है जो 60 रुपए से कम नहीं होगी। इस योजना की एक प्रमुख विशेषता यह है कि योजना के अन्तर्गत 33 प्रतिशत लाभार्थी महिलाएं होंगी। यह योजना अन्य रोजगार योजना से इस दृष्टि से भिन्न है कि यह मात्र एक योजना नहीं, बल्कि एक कानून है जो रोजगार की वैधानिक गारंटी प्रदान करता है। वर्ष 2006–07 में ग्रामीण रोजगार हेतु कुल 14300 करोड़ रुपए तथा शेष 3000 करोड़ रुपए सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना के लिए आवंटित किया गया था।

ग्रामीण भारतीयों की स्थिति को उच्चतम स्तर पर पहुंचाने के स्वप्न को साकार करने हेतु सरकार की विभिन्न योजनाओं के साथ–साथ ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में अनेक प्रस्ताव रखे गए हैं चूंकि देश की 72 प्रतिशत जनसंख्या आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है और कृषि क्षेत्र पर निर्भरता लगभग 60 प्रतिशत है। अतः 11वीं पंचवर्षीय योजना के दृष्टिकोण पत्र में कृषि की स्थिति को बेहतर करने के लिए निम्नांकित सुझाव रखे गए हैं –

- श्रम एवं बीमा सुधार।
- प्रौद्योगिकी वितरण तथा प्रौद्योगिकी एवं आगत आपूर्ति सेवाओं का समग्र पैकेज।
- मृदा संरक्षण एवं विकास।
- सुनिश्चित एवं परिणामोन्मुख विपणन।
- जल संरक्षण, जल स्त्रोतों को पुनः क्रियाशील बनाना।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना

ग्रामीण बेरोजगारी, निर्धनता एवं भूख से मुक्ति दिलाने के लिए केन्द्र सरकार द्वारा यह स्वर्णिम योजना 2 फरवरी 2006 को प्रारम्भ की गई। इस योजना के पहले चरण में वर्ष 2006–07 के दौरान देश के 27 राज्यों के 200 चुनींदा जिलों में इस योजना का कार्यान्वयन किया गया है। पहले चरण के कार्यान्वयन के लिए चयनित 200 जिलों में वह 150 सम्मिलित है जहां काम के बदले अनाज कार्यक्रम पहले से चल रहा था। 'काम के बदले अनाज' योजना व 'सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना' का विलय अब इस नई योजना में कर दिया गया है। वर्ष 2007–08 के दौरान इस योजना के दूसरे चरण का विस्तार 130 अन्य जिलों में किया जाएगा। इसमें से 113 जिलों की सूची मार्च 2007 को जारी कर दी गई थी। इसके लिए 2007–08 के बजट में 12,000 करोड़ रुपए का प्रावधान किया गया है। देश से गरीबी को समूल नष्ट करने के लिए राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम को अप्रैल 2008 से पूरे देश में लागू किया जाएगा। वर्तमान समय में यह कार्यक्रम 330 जिलों में लागू है। 2008–09 में देश के सभी जिलों को इस कार्यक्रम के अन्तर्गत लाने की घोषणा प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने सितम्बर 2007 के अंतिम सप्ताह में की।

आर्थिक उदारीकरण एवं ढांचागत समायोजन की आवश्यकताओं के अनुरूप विशेषकर ग्रामीण निर्धनों के जीवन को उच्चतम स्तर तक पहुंचाने हेतु ग्रामीण निर्धनता कार्यक्रमों का अनुपालन किया जा रहा हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए संसाधनों के आवंटन में निरंतर वृद्धि करते हुए ग्रामीण विकास को उच्च प्राथमिकता दी गई है जिसकी परिणति गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले लोगों की संख्या में कमी है।

(लेखिका स्नातकोत्तर महाविद्यालय में व्याख्याता हैं।)
ई–मेल: riturs 15@gmail.com

लेखकों से

कुरुक्षेत्र के लिए मौलिक, अप्रकाशित लेखों का स्वागत है। रचना दो प्रतियों में टाइप की हुई हो और उसके साथ ई–मेल तथा मौलिकता का प्रमाण–पत्र संलग्न हो। कुरुक्षेत्र में साहित्यिक रचनाएं प्रकाशित नहीं की जाती हैं। अस्वीकृत रचना लौटाने के लिए कृपया डाक टिकट लगा और अपना पता लिखा लिफाफा लगाएं। लेख संपादक, कुरुक्षेत्र कमरा नं. 655/661, 'ए' विंग, गेट नं. 5, निर्माण भवन, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली–110011 के पते पर भेजें।

ग्रामीण क्षेत्रों में ईंधन की समस्या और समाधान

डॉ. दिनेश मणि

ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंख्या वृद्धि और गांवों का आकार बढ़ने से ऊर्जा संकट निरंतर बढ़ता जा रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों में ऊर्जा संकट को दूर करने के लिए मुख्यतया वन ऊर्जा को आधार बनाया जा रहा है जिसका मुख्य कारण ऊर्जा के अन्य स्रोतों की अपेक्षा जलाऊ लकड़ी का सस्ती दरों पर सरल रूप से अथवा निःशुल्क प्राप्त होना है।

ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए ग्रामवासियों की आवश्यकताओं और उनकी आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए जो टेक्नोलॉजी विकसित की जाएगी, उसको ग्रामवासी अपने प्रयोग में लाने के लिए इच्छुक तो होंगे ही साथ ही वह उस टेक्नोलॉजी का प्रयोग बड़ी सूझ–बझ से करेंगे। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में टेक्नोलाजी पहुंचाने से पहले विभिन्न सरकारी संस्थाओं को, जो ग्रामीण विकास से संबंधित है, यह सुनिश्चित करना चाहिए कि उसी टेक्नोलाजी को ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुंचाने की योजना बनाएं जो कि ग्रामवासी स्वयं अपना लें और सरकार को कम से कम सब्सिड़ी देनी पड़े।

हमारे देश में घरेलू कामों में आने वाली ऊर्जा का 68.5 प्रतिशत जलाऊ लकड़ी के ईंधन के रूप में इस्तेमाल होता है और इसका 64.2 प्रतिशत जंगलों और झाड़ियों वगैरह से इकट्ठा किया जाता है। इतनी प्रगति के बावजूद आज भी दुनिया के देहाती इलाकों में ईंधन का मुख्य स्रोत लकड़ी ही है और जितनी लकड़ी दुनिया में हर साल पैदा होती है, उसकी आधी चूल्हों में झोंक दी जाती है। जिस तेजी से दुनिया की आबादी बढ़ रही है उसे देखते हुए यह कतई संभव नहीं कि जितने पेड़ काटे जाएं, उतने ही लगाकर बड़े भी कर दिये जाएं। हालत यहां तक पहुंच गई है कि कुछ इलाकों में खाने के लिए अन्न उपलब्ध है, लेकिन उसको पकाने के लिए लकड़ी नहीं मिलती। इस समय जलाऊ लकड़ी की मांग और पूर्ति के बीच इतनी बड़ी खाई है कि बड़े विशाल क्षेत्र में जंगल साफ हो चुके हैं। इसका पारिस्थितिक परिणाम बाढ़, मिट्टी कटाव और अंततः पानी की कमी के रूप में प्रकट हो रहे हैं।

सन् 1973 में पहले ऊर्जा–संकट के बाद ही अचानक सभी राष्ट्रों को इस बात का अहसास हुआ कि वे ऊर्जा के एक ही रूप पर निर्भर हैं और पूरा मानव समाज वस्तुतः एक प्रकार से पेट्रोलियम सोसायटी में रह रहा है। तभी यह स्पष्ट हुआ कि इस तरह के आकस्मिक संकट का किसी भी देश पर कोई खास अंतर नहीं पड़ता, बशर्ते कि अनेक स्रोतों के इस्तेमाल वाली अधिक व्यापक ऊर्जा–नीति अपनाई गई होती। इसके बाद दूसरा ऊर्जा संकट पहले से ज्यादा गंभीर था, क्योंकि इसने पूरी तीसरी दुनिया को अपनी चपेट में ले लिया। हम आज भी जलाऊ लकड़ी के संकट से गुजर रहे हैं।

इस समय आवश्यकता महसूस की जा रही है कि जलाऊ लकड़ी मांग की पूर्ति के लिए प्राकृतिक रूप से उगे हुए जंगल और पेड़ों का इस्तेमाल एकदम बंद होना चाहिए। क्योंकि इससे हमारी धरती का हरा भरा आवरण कम होता जा रहा है। राष्ट्रीय वन नीति के अनुसार 33 प्रतिशत क्षेत्र में जंगल होने चाहिए। जबकि वास्तविक वन 12 प्रतिशत के लगभग ही है।

जब तक हम देहात में गरीब लोगों को सस्ती जलाऊ लकड़ी उपलब्ध कराने की व्यवस्था नहीं करेंगे, जंगलों का विनाश रोकना मुश्किल होगा। जलाऊ लकड़ी को आवश्यक मात्रा में शीघ्र से शीघ्र उपलब्ध कराने के लिए जरूरी है कि पर्णपाती वृक्ष और झाड़ियों की तेजी से बढ़ने वाली जाजियां वन बची खुची बंजर जमीनों में लगाई जाएं जहां उनको उगाने से खाद्यान्न फसलों के साथ उनकी प्रतिद्वंद्विता न हो।

जलाऊ लकड़ी के लिए विशेष रूप से पेड़ उगाने के कार्यक्रम जहां एक बड़ी समस्या की पूर्ति करते हैं, वहीं पर्यावरण की रक्षा और सामाजिक दृष्टि से भी सार्थक हैं। इस कार्यक्रम के लिए जिन बंजर और ऊसर जमीनों का इस्तेमाल होगा। वह इस समय आमतौर पर गांव वालों द्वारा मुफ्त में चराई के लिये इस्तेमाल की जाती है। जैसे ही इनका जलाऊ लकड़ी योग्य पेड़ लगाने के लिए इस्तेमाल शुरू किया जायेगा, चराई के लिए इसका इस्तेमाल बंद करना होगा। इस कदम को उठाने से जो समस्या पैदा होगी, उनका सामना करने के लिए यह जरूरी है कि जलाऊ लकड़ी के साथ–साथ तेजी से उगने वाले पेड़ भी लगाएं जो चारे की जरूरत भी पूरी कर सकें। इसके लिए वृक्षों और झाड़ियों की ऐसी जातियां विकसित करनी होंगी, जो कम पोषक पदार्थ वाली मिट्टियों में भी उगाई जा सकें और विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों में उनको लगाया जा सके। इसके लिये जो भी पौधा चुना जाए वह काफी सहनशील होना चाहिए और पानी, खाद तथा रोगों और कीटों से बचाव की उसकी जरूरतें कम से कम होनी चाहिए। अच्छा हो कि इसके लिए हम ऐसी जातियां चुनें जो ईंधन, चारा, खाद, रेशा और और ऊपर से टहनियां काट लेने के बाद फिर से हरी हो जाने की क्षमता रखती हों। अगर ये पौधे ऐसे हों, जिनकी पेडों में रहने वाले जीवाणु हवा से नाइट्रोज खींचकर बंजर जमीनों को उपजाऊ भी बना सकें तो इनका महत्व और भी बढ़ जाएगा।

जलाऊ लकड़ी के बागान लगाने का काम इस शर्त पर आधारित है कि प्राकृतिक वनों से ईंधन की आपूर्ति नहीं की जाएगी क्योंकि ऐसा करने से वह क्षेत्र कम हो जाएगा। इस समय

भारत में यह क्षेत्र 23 प्रतिशत है, जबकि भारत सरकार की राष्ट्रीय वानिकी योजना प्रस्ताव (1952) के अनुसार इसे 33 प्रतिशत निर्धारित किया गया है। प्रभावी पादप आवरण तो केवल 12 प्रतिशत ही है जब तक गरीब ग्रामीणों को ईंधन लकड़ी मुफ्त या बहुत सस्ती उपलब्ध नहीं कराई जाती तब तक हमारे वनों का विनाश नहीं रुकेगा। वास्तव में अब वह समय आ गया है जब औद्योगिक कार्यों के लिए इमारती और जलाऊ लकड़ी की आवश्यकता की पूर्ति उद्योगों द्वारा निजी उपयोग के लिए लगाए गए वनों से पूरी करनी चाहिए न कि प्राकृतिक वनों से कम से कम समय में जलाऊ लकड़ी का अधिकतम उत्पादन करने के लिए सघन और छोटे फसल चक्र वाले पर्णपाती वृक्षों और झाड़ियों की सहिष्णु जातियों की खेती कृषि अयोग्य या सीमान्त भूमियों में करनी चाहिए जिससे खाद्य फसलों का क्षेत्रफल कम न हो। अभी तक जलाऊ लकड़ी की उत्पादकता इतनी बताई गई है जितनी होने की आशा प्रतीत नहीं होती। इसलिए वैज्ञानिक प्रयोगों को बड़ी सावधानी से करने की आवश्यकता है। घरेलू उपयोग और बिजली बनाने के लिए जलाऊ लकड़ी के बागानों की योजना में इन अनुमानित उत्पादनों की निर्णायक भूमिका है। बड़े पैमाने पर जलाऊ लकड़ी के बागान के लिए अनेक लाभ स्थानीय रूप से, पर्यावरणीय दृष्टि से और सामाजिक अनिवार्यता की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं।

इस समस्या का एक दूसरा पहलू यह है कि जैव-भार (बायोमास) उत्पादन के लिए प्रस्तावित अनुपजाऊ भूमि को आजकल पशु चराने के लिए मुफ्त इस्तेमाल किया जाता है। यदि इसका उपयोग जलाऊ लकड़ी प्राप्त करने के लिए किया जाएगा तो इस पर चराई तत्काल बंद कर देनी पड़ेगी। इस प्रकार उत्पन्न परिस्थिति का मुकाबला करने के लिए या तो पशु चारा देने वाले वृक्षों की प्रजातियों का पारे की फलीदार फसलों और या घासों को जलाऊ लकड़ी के वृक्षों के साथ साथ लगाना पड़ेगा।

(लेखक 'विज्ञान' मासिक पत्रिका के पूर्व सम्पादक हैं)

बेरोजगारी उन्मूलन हेतु नई योजनाएं

राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठनों द्वारा सामान्य स्थिति के आधार पर किए गए पिछले दो पंचवर्षीय सर्वेक्षणों के अनुसार रोजगार अवसरों में वर्ष 1999–2000 से 2004–2005 की अवधि के दौरान 62.1 मिलियन की वृद्धि हुई है।

शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी के प्रभाव को देखते हुए सरकार विभिन्न सृजन तथा गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों/योजनाओं को क्रियान्वित कर रही है। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं – संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना (एसजीआरवाई), स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना (एसजीएसवाई,) ग्रामीण रोजगार सृजन कार्यक्रम (आरईजीपी), प्रधानमंत्री रोजगार योजना (पीएमआरवाई) तथा स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार–योजना। (पसूका)

गरीबी में चार फीसदी से अधिक कमी

विभिन्न राज्यों में गरीबी में कमी लाने के अनेक कार्यक्रमों के कार्यान्वयन से गरीबी उपशमन पर अच्छा प्रभाव पड़ा है। गरीब लोगों की प्रतिशतता 1999–2000 में 26.1 प्रतिशत थी जो 2004–05 में घटकर 21.8 प्रतिशत रह गई। वर्ष 1999–2000 और 2004–05 के गरीबी के अनुमान से यह तथ्य सामने आए हैं। यह अनुमान परिवार उपभोक्ता खर्च सर्वेक्षण (राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण 61वां राउंड) पर आधारित हैं। मिश्रित रिकॉल अवधि पर आधारित गरीबी अनुमान के तुलनात्मक आंकड़े इस प्रकार हैं –

	1999–2000	2004–05
1. ग्रामीण	27.1 प्रतिशत	21.8 प्रतिशत
2. शहरी	23.6 प्रतिशत	21.7 प्रतिशत
3. कुल	26.1 प्रतिशत	21.8 प्रतिशत

इस अवधि के दौरान जनसंख्या की तुलना में रोजगार तेजी से बढ़ा। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन के पंचवर्षीय राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के अनुसार, 1999–2000 और 2004–05 के बीच रोजगार की वृद्धि दर सालाना 2.95 प्रतिशत थी जबकि इसी अवधि के दौरान जनसंख्या वृद्धि दर सालाना 1.71 प्रतिशत थी। (पसूका)

कुरुक्षेत्र मंगवाने का पता

विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक
प्रकाशन विभाग
पूर्वी खंड-4, तल-7
रामकृष्णापुरम, नई दिल्ली-110066

मूल्य एक प्रति	:	10 रुपये
वार्षिक शुल्क	:	100 रुपये
द्विवार्षिक	:	180 रुपये
त्रिवार्षिक	:	250 रुपये

विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)

पड़ोसी देशों में	:	530 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में	:	730 रुपये (वार्षिक)

कमजोर वर्गों के लिए कल्याणकारी योजनाएं

अखिल कुमार मिश्र

भारत एक लोकतांत्रिक देश है और सरकार का यह दायित्व है कि इसे एक कल्याणकारी राज्य के रूप में प्रतिस्थापित करे। इसलिए सरकार समाज के निम्न वर्गों और गरीबों के लिए अनेक कल्याणकारी योजनाएं चला रही है। इस प्रकार सरकार स्वतंत्रता के बाद से ही देश के सभी नागरिकों को विशेष रूप से आर्थिक व सामाजिक दृष्टि से पिछड़े हुए लोगों और वंचित वर्गों को प्राथमिक शिक्षा, प्राथमिक स्वास्थ्य, आवास, सुरक्षित पेयजल, बिजली और खाद्य सुरक्षा जैसी मूलभूत सुविधाएं मुहैया कराने हेतु विभिन्न योजनाओं और कार्यक्रमों का संचालन कर रही है। इन योजनाओं और कार्यक्रमों को संचालित करने का उद्देश्य देश में व्याप्त क्षेत्रीय विषमताओं को कम करना और अमीरी एवं गरीबी के बीच की खाई को पाटना भी रहा है। अब तक संचालित की गई इन विभिन्न योजनाओं में जिस मात्रा में वर्षानुवर्ष विशाल आर्थिक संसाधन लगाए गए उस अनुपात में इनसे लाभ अर्जित नहीं किए जा सके। इसके लिए यों तो अनेक कारण उत्तरदायी हैं लेकिन विशेष रूप से इन योजनाओं का आवश्यकतानुसार निर्धारण न किया जाना, योजना निर्माण और क्रियान्वयन के बीच विसंगतियों का होना, योजनाओं के क्रियान्वयन में कमी जैसी अनेक समस्याओं ने अहम भूमिका निभाई है। इसी के कारण आज सैकड़ों योजनाएं और कार्यक्रम लोगों को गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी, कुपोषण, भुखमरी जैसी समस्याओं से निजात नहीं दिला पा रहे हैं। नई–नई योजनाओं की घोषणा और उनके संचालन से तात्कालिक रूप से कुछ सम्भावना की किरण नजर आने लगती है लेकिन उनके संचालन से वास्तव में कितना सुधार आ पाता है इसकी समुचित जानकारी प्राप्त करने को कोई खास महत्व नहीं दिया जाता।

स्वतंत्रता के बाद देश भर में ग्रामीण और शहरी गरीबों, वंचित वर्गों तथा अधिक पिछड़े क्षेत्रों के विकास को समुचित दिशा प्रदान किए जाने हेतु वर्तमान में सरकार द्वारा संचालित योजनाओं की संख्या ठीक–ठीक कितनी है, इनका कितना और किस मात्रा में असर हुआ है? शायद ही किसी को मालूम हो लेकिन इतना जरूर पता है कि अकेले केन्द्र सरकार द्वारा संचालित इन विभिन्न योजनाओं की संख्या कम से कम 150 के आस पास है।

जवाहर ग्राम समृद्धि योजना के अंतर्गत काम में लगे ग्रामीण

सरकार के कुछ गरीबी और बेरोजगारी निवारक कार्यक्रम

सरकार द्वारा संचालित की जा रही इससे पूर्व की विभिन्न विकास और कल्याण की योजनाओं पर दृष्टिपात करें, तो विदित होता है कि वर्तमान में अनेक योजनाएं चल रही हैं जैसे जवाहर ग्राम समृद्धि योजना (1999), सुनिश्चित रोजगार योजना (1993), प्रधानमंत्री का समन्वित शहरी निर्धनता निवारण कार्यक्रम (1995), प्रधानमंत्री की रोजगार योजना (1993), स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार योजना (1997), ग्रामीण विद्युतीकरण योजना (1970), इन्दिरा आवास योजना (1985), कुटीर ज्योति कार्यक्रम (1988), ग्रामीण स्वच्छता कार्यक्रम (1990), ग्रामीण सम्पर्क मार्ग योजना (1996), आदि हैं।

इसी प्रकार कमजोर और पिछड़े वर्गों, बालकों, महिलाओं, वृद्धों और विकलांगों आदि को विशेष सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने एवं उनके अहम् उद्देश्यों को लेकर कुछ और कार्यक्रमों को सुचालित किया गया, जिनमें समन्वित बाल विकास योजना (1975), कुटीर बीमा योजना (1989), बाल श्रम उन्मूलन योजना (1994), राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना (1995), बालिका समृद्धि योजना (1997), पल्स पोलियो कार्यक्रम (1997), महिला स्वशक्ति योजना (1998), महिलाओं के लिए 2001 में दो योजनाएं–महिला स्वाधार योजना एवं महिला

स्वयंसिद्ध योजना के नाम से संचालित किया गया है। 15 अगस्त, 2001 को प्रधानमंत्री द्वारा सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना, अम्बेडकर वाल्मीकि मलिन बस्ती आवास योजना, राष्ट्रीय राजमार्ग योजना तथा कृषकों को बीमा सुरक्षा प्रदान करने के लिए संकट हरण बीमा योजना के नाम से शुरू की गयी।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना

इस योजना का प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने 2 फरवरी 2005 को आंध्र प्रदेश के अनंतपुर जिले में शुभारंभ किया। शुरुआत में यह योजना 27 प्रदेशों के 200 जिलों में लागू की गई थी। जिसे धीरे धीरे बाद में बढ़ाया गया। इस योजना में केन्द्र और राज्य सरकार की हिस्सेदारी 90:10 की है। इस योजना की मुख्य बातें निम्न हैं–

- राज्य सरकारें प्रत्येक वित्तीय वर्ष में प्रत्येक परिवार को जिसके वयस्क सदस्य अकुशल शारीरिक श्रम करना चाहें, कम–से–कम 100 दिन का गारंटीशुदा वेतन रोजगार मुहैया कराएंगी।
- इस योजना में सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना और काम के बदले अनाज योजना को मिला दिया गया है।
- यदि आवेदक को पंद्रह दिनों के भीतर रोजगार मुहैया नहीं कराया जाता, तो वह राज्य सरकार की आर्थिक क्षमता के अधीन रहते हुए उसके द्वारा निर्दिष्ट बेरोजगारी भत्ते का हकदार होगा, बशर्ते कि यह दर वित्तीय वर्ष के दौरान पहले तीस दिन के लिए वेतन दर के एक–चौथाई से कम न हो और वित्तीय वर्ष की शेष अवधि में वेतन दर के आधे से कम न हो।
- इस योजना में महिलाओं को एक–तिहाई आरक्षण प्राप्त है।
- इस योजना में एक जाब कार्ड निर्गत किया जाता है जिसे दिखाकर रोजगार प्राप्त किया जा सकता है।

काम के दौरान घायल होने पर निःशुल्क डाक्टरी इलाज किया जायेगा। अस्पताल में भर्ती होने पर कम से कम आधी मजदूरी के बराबर दैनिक भत्ता दिया जायेगा तथा मौत होने पर 25000 रुपये का भुगतान किया जायेगा।

जवाहर ग्राम समृद्धि योजना

जवाहर ग्राम समृद्धि योजना, पहले से चल रही जवाहर रोजगार योजना का व्यापक रूप है। सितम्बर 2001 में इसे सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना में मिला दिया गया है तथा इस योजना को अब राष्ट्रीय रोजगार गारंटी योजना में मिला दिया गया है। इस योजना का मौलिक उद्देश्य गांवों में मांग आधारित सामुदायिक अवसंरचना का सजृन करना था तथा गौण उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगार गरीबों के लिए मजदूरी आधारित रोजगार अवसरों का सृजन करना भी था।

अंत्योदय अन्न योजना

तत्कालीन प्रधानमंत्री अटलबिहारी बाजपेयी ने 25 दिसम्बर, 2000 को इस योजना की शुरुआत की। यह योजना अत्यधिक निर्धन लोगों को खाद्य सुरक्षा उपलब्ध कराने के उद्‌देश्य से आरम्भ की गई। इसके तहत एक करोड़ निर्धनतम परिवारों को प्रति माह 35 किग्रा अनाज दिया जाता था।

रोजगार आश्वासन योजना

रोजगार आश्वासन योजना 2 अक्टूबर, 1993 से ग्रामीण क्षेत्रों में लागू की गई थी। इस योजना का 1 अप्रैल, 1999 से पुनर्गठन किया गया है। अब यह देश भर में जिला मजदूरी रोजगार कार्यक्रम है जिसमें मजदूरों के पलायन से ग्रस्त इलाकों पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। योजना के मुख्य बिन्दु निम्न हैं –

- इस योजना का मुख्य उद्‌देश्य गरीबी रेखा से नीचे रह रहे प्रत्येक परिवार से अधिकतम दो युवाओं को 100 दिन तक का लाभप्रद रोजगार उपलब्ध कराना है।
- योजना का गौण उद्‌देश्य पर्याप्त रोजगार तथा विकास के लिए आर्थिक अधोरचना तथा सामुदायिक परिसम्पत्तियों का सृजन करना है।
- इस योजना का व्यय 75:25 के अनुपात में केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा वहन किया जाता है।
- योजना में मजदूरी सामग्री के 60:40 अनुपात को बनाए रखना है।

कुटीर ज्योति योजना

हरिजन और आदिवासी परिवारों सहित गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले ग्रामीण परिवारों के जीवन स्तर में सुधार के लिए भारत सरकार ने कुटीर ज्योति योजना की शुरुआत 1988–89 में की। इसके अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनता रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले परिवारों को एक बत्ती विद्युत कनेक्शन उपलब्ध कराने के लिए 400 रुपए की सरकारी सहायता उपलब्ध कराई जाती है, इस योजना के अन्तर्गत गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों को बिजली मुहैया कराई जाती है।

बालिका समृद्धि योजना

इस योजना को 2 अक्टूबर 1997 को आरम्भ किया गया, इसके तहत 15 अगस्त 1997 के बाद जन्मी बालिका के परिवार को जो कि ग्रामीण अथवा शहरी क्षेत्र में गरीबी की रेखा के नीचे निवास करता है जन्म के समय 500 रुपए की राशि (दो लड़कियों तक सीमित) देने का प्रावधान है। इसके बाद बालिका के स्कूल जाने पर उसे एक स्कॉलरशिप भी देने का प्रावधान है। यह छात्रवृत्ति पहली कक्षा के लिए 300 रुपए और दसवीं कक्षा के लिए 1000 रुपए है।

कुछ अन्य महत्वपूर्ण योजनाएं

क्रम सं.	योजना का नाम	योजना के प्रमुख लक्ष्य	वर्ष
1	खेतिहर मजदूर बीमा योजना	ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले खेतिहर मजदूरों को बीमा सुरक्षा प्रदान करने के साथ 100 रुपये प्रतिमाह पेंशन प्रदान करना।	2001
2.	किशोरी शक्ति योजना	चिन्हित किशोरियों को पोषाहार देने के साथ-साथ स्वास्थ्य, शिक्षा तथा व्यावसायिक कुशलता हेतु प्रशिक्षण प्रदान करना।	
3.	सर्वशिक्षा अभियान	6–14 वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों को वर्ष 2010 तक कक्षा 8 तक की शिक्षा सुनिश्चित करना।	2001–10
4.	ग्रामीण विद्युतीकरण निगम	कृषि एवं उद्योगों हेतु ग्रामीण क्षेत्र में विद्युत व्यवस्था।	1969
5.	त्वरित ग्रामीण जल आपूर्ति कार्यक्रम	ग्रामीण क्षेत्रों में पर्यावरण सन्तुलन और प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण।	1972–73
6.	ग्रामीण रोजगार के लिए नगद योजना	ग्रामीण विकास हेतु।	1972–74
7.	बीस सूत्रीय कार्यक्रम	गरीबी उन्मूलन एवं रहन सहन उच्चीकरण।	1975
8.	राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान	ग्रामीण विकास हेतु प्रशिक्षण, शोध तथा सलाहकारी संस्था।	1977
9.	काम के बदले अनाज योजना	विकास प्रक्रियाओं के काम हेतु खाद्यान्न देना।	1977–78
10.	अंत्योदय कार्यक्रम	गांव के सबसे गरीब परिवारों को स्वावलम्बी बनाना।	1977–78
11.	ग्रामीण युवाओं को स्वरोजगार हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम	ग्रामीण युवा वर्ग की बेरोजगारी को दूर करने हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम।	1979
12.	समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम	ग्रामीण निर्धन परिवारों को स्वरोजगार हेतु ऋण उपलब्ध कराना।	1980
13.	ग्रामीण क्षेत्रों में महिला एवं बाल विकास कार्यक्रम (डवाकरा)	महिलाओं को स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध कराना।	1982
14.	ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम	भूमिहीन कृषकों व श्रमिकों को रोजगार उपलब्ध कराने हेतु।	1983
15.	राष्ट्रीय ग्रामीण विकास कोष	दानकर्त्ता के कर में 100 प्रतिशत की छूट तथा ग्रामीण विकास की परियोजना हेतु दान प्राप्त करना।	1984
16.	इन्दिरा आवास योजना	ग्रामीण क्षेत्रों में गृह ऋण और आवास मुहैया कराना।	1985–86
17.	लोक कार्यक्रम एवं ग्रामीण प्रौद्योगिकी विकास परिषद (कपार्ट)	ग्रामीण समृद्धि हेतु सहायता।	
18.	नेहरू विकास योजना	ग्रामीण बेरोजगारों को रोजगार देने हेतु।	1985
19.	कुटीर ज्योति योजना	ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धन परिवारों को विद्युत कनेक्शन।	1988–89
20.	कृषि एवं ग्रामीण ऋण राहत योजना	ग्रामीण कुशल श्रमिकों, कारीगरों, बुनकरों को 1000 रुपये तक ब्याज मुक्त ऋण देना।	1990
21.	स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना	सहायता प्राप्त गरीब व्यक्ति को 3 वर्ष में गरीबी रेखा के ऊपर लाना। इसमें 6 कार्यक्रमों का विलय कर दिया गया।	1999
22.	प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना	गांवों का समग्र विकास योजना।	2000
23.	अंत्योदय योजना	वरिष्ठ नागरिक जो वृद्धावस्था पेंशन के योग्य है को अनाज 2 रु/किलो गेहूं, 3 रु/किलो चावल उपलब्ध कराना।	2000

24.	सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना	ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन।	2001
25.	वाल्मीकि अम्बेडकर आवास योजना	शहरी स्लम आबादी को स्वच्छ आवास उपलब्ध कराने हेतु।	2001
26.	महिला स्वयं सिद्धि योजना	महिलाओं का सामाजिक आर्थिक सशक्तिकरण करना।	2001
27.	संकट हरण बीमा योजना	कृषकों के लिए सामाजिक सुरक्षा योजना।	2001
28.	स्वजल धारा योजना	ग्राम पंचायतों के माध्यम से कुएं, बावड़ी व हैण्डपम्प लगाना।	2002
29.	निर्मल भारत योजना	मलिन बस्तियों में सामुदायिक शौचालयों की सुविधा का विस्तार।	2002
30.	ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी सुविधाओं की उपलब्धता कार्यक्रम	ग्रामीण क्षेत्रों में उन्नत सुविधा उपलब्ध कराना।	2003
31.	असंगठित श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा पायलट योजना	असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों को पारिवारिक पेंशन बीमा व चिकित्सा आदि सुविधा देना।	2004
32.	राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी योजना	ग्रामीणों को रोजगार मुहैया कराना।	2005
33.	राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन	ग्रामीणों को प्राथमिक स्वास्थ्य सुरक्षा प्रदान करना।	2005–06
34.	भारत निर्माण योजना	ग्रामीण अवस्थापना के सर्वांगीण तथा व्यापक विकास।	2005–06

भारत सरकार ने अनेक योजनाओं का क्रियान्वयन किया और आज भी करती चली आ रही है। इन योजनाओं को मुख्य रूप से गरीबों, ग्रामीणों, बेरोजगारों, महिलाओं, बच्चों, वृद्धों और पिछड़े वर्गों के लोगों को आर्थिक और सामाजिक रूप से समर्थ बनाने के अहम् उद्देश्य को पूरा करने के लिए संचालित किया गया है। इसके अतिरिक्त आवश्यक एवं मूलभूत सुविधाओं से वंचित गांवों और शहरी मलिन बस्तियों को इन सुविधाओं से परिपूर्ण करने का लक्ष्य भी बनाया गया है। इस हेतु राज्य सरकारों द्वारा संचालित योजनाओं के अतिरिक्त अकेले केंद्र सरकार द्वारा पूर्व से ही लगभग डेढ़ सैकड़ा योजनाएं संचालित की गई है। सरकार को नई योजनाओं को चलाने से बेहतर होगा कि वह वर्तमान में संचालित योजनाओं का क्रियान्वयन सुचारु ढ़ंग से करे और इन सभी योजनाओं में आने वाली कठिनाईयों का समाधान निकाले।

लघु उद्योग – आय का अतिरिक्त साधन

वर्तमान में संचालित योजनाओं का अगर हम अवलोकन करें तो यह ज्ञात होता है कि देश में ग्रामीण क्षेत्रों और शहरी मलिन बस्तियों और लोगों के विकास और विभिन्न निर्बल एवं वंचित वर्गों के कल्याण के लिए पूर्व में चलाई गई विभिन्न प्रकार की योजनाओं और कार्यक्रम अपेक्षित उद्देश्य के अनुरूप इनमें किए जाते रहे बदलाव और इन कार्यक्रमों पर निवेशित की गई विशाल धनराशि के माध्यम से यह संभावनाएं थीं कि वहां विकास की गति तीव्र होगी और वहां के लोगों के जीवन स्तर में बदलाव आएगा। लेकिन जिस गति से संसाधन लगाए जाते रहे और कार्यक्रमों में बदलाव आया, उस गति से गरीब और निर्बल वर्गों के लोगों के जीवन स्तर में बदलाव नहीं आ सका, यह बात भी दुर्भाग्यपूर्ण रही है। भारत में गरीबी निवारण और रोजगार सृजन के विभिन्न कार्यक्रमों पर लगभग 42 करोड़ रु. प्रतिवर्ष खर्च किया जाता है। खाद्यान्न, उर्वरकों, कैरोसिन, रसोई गैस जैसी विभिन्न मदों में सब्सिडी के रूप में अकेले केंद्र सरकार द्वारा विशाल धनराशि खर्च की जा रही है। इसके अतिरिक्त राज्य सरकारें भी विभिन्न मदों में सब्सिडी प्रदान कर रही हैं। पिछले वर्षों में सरकार ने कुछ योजनाओं के संचालन में कमी का रुख अपनाया था, लेकिन राजनीतिक कारणों से यह सम्भव नहीं हो सका। इतनी योजनाओं के बावजूद भी आज गरीबी और बेरोजगारी के लिए अनेक कारण उत्तरदायी हैं, जहां एक ओर प्रशासनिक ढांचे में अनेक कमियों के कारण हमारी यह

मुहीम प्रभावित हो रही है, वहीं तेजी से बढ़ती जनसंख्या के अनुरूप संसाधनों में वृद्धि नहीं हो पाने से निर्धनता और बेरोजगारी में सुधार नहीं आ रहा है।

गरीबों की गरीबी का एक प्रमुख कारण स्वयं उनकी ऊपर उठने के लिए इच्छाशक्ति का अभाव भी रहा है। विभिन्न सरकारी योजनाओं के माध्यम से गरीबों द्वारा उन्हें निरंतर दिए गए कर्ज और अनुदान कर्ज माफी की घोषणा आदि से उन्हें स्वावलंबी होने के स्थान पर बैसाखियों के सहारे चलते रहने की आदत डाल दी है।

शहरी और ग्रामीण दोनों प्रकार के क्षेत्रों में त्रिस्तरीय पंचायती राज संस्थाओं को अधिक मजबूत बनाते हुए गरीबों और निर्बल लोगों के विकास और कल्याण से संबन्धित समस्त कार्यक्रमों के लिए पूर्ण उत्तरदायित्व उन्हें सौंपना चाहिए। योजनाओं को ऊपर से थोपने के स्थान पर आवश्यकतानुसार विभिन्न योजनाओं का चयन उनमें लाभार्थियों के चयन से लेकर वहां सुविधाओं के विस्तार और अनुरक्षण आदि से संबंधित सभी कुछ जिम्मेदारी कागजी खाना पूर्ति के अतिरिक्त वास्तविक अर्थों में पंचायतों ही निर्धारित की जानी चाहिए। रोजगार सृजन, गरीबी निवारण तथा गांवों और मलिन बस्तियों में जन सुविधाओं के विकास हेतु चलाई जा रही अनेक योजनाओं एवं कार्यक्रमों के स्थान पर इनकी संख्या घटाकर, उनके आधार को व्यापक करना चाहिए। वर्तमान में चल रही अनेक योजनाओं में सामाजिक, आर्थिक, और राजनैतिक परिस्थितियों को देखते हुए आमूल–चूल परिवर्तन की आवश्यकता है। चूंकि ये कार्यक्रम त्रिस्तरीय पंचायतों के माध्यम से चलाए जाने की व्यवस्थाएं की जा रही हैं, अतः इनसे जुड़े हुए सरकारी खर्चों में कटौती करनी होगी और इस प्रकार बचे हुए संसाधनों को अविकसित क्षेत्रों के लिए सभी आवश्यक जन सुविधाओं में प्रयोग किया जाना चाहिए।

इसके अतिरिक्त विभिन्न राज्यों और सभी क्षेत्रों में गरीबी, गरीबों तथा गरीबी निवारण कार्यक्रमों और रोजगार सृजन योजनाओं का तथा विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं का पुनर्मूल्यांकन करना होगा। अब समय का तकाजा है कि इन कार्यक्रमों और योजनाओं की प्राथमिकता पुनः नए सिरे से निर्धारित की जाए और संसाधनों का आवंटन इस प्रकार से किया जाए कि सही समय पर सही तरीके से सही लोगों और सही क्षेत्रों तक पहुंच सके। साथ ही विकास, अनौपचारिक एवं प्रौढ़ शिक्षा, परिवार कल्याण से संबंधित कार्यक्रमों का प्रचार–प्रसार एवं इनके समुचित रूप से क्रियान्वयन में त्रिस्तरीय पंचायतों के अतिरिक्त स्वयंसेवी संस्थाओं, समाज सेवी संगठनों को भी बढ़ चढ़ कर भाग लेना चाहिए और जन साधारण से भी अपील करनी चाहिए कि वे गरीबी और बेरोजगारी के निवारण में सहयोग करें।

(लेखक सहायक विकास अधिकारी पद पर कार्यरत हैं।)
ई–मेलः mishra_878@rediffmail.com

अनुसूचित जाति/जनजाति की साक्षरता दर

वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार अनुसूचित जाति की साक्षरता दर 54.69 प्रतिशत और अनुसूचित जनजाति की साक्षरता दर 47.10 प्रतिशत थी जबकि राष्ट्रीय साक्षरता दर इसके मुकाबले 64.84 प्रतिशत थी।

अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति तथा अन्य वर्गों में निरक्षरता के विभिन्न सामाजिक, आर्थिक कारक हैं जैसे गरीबी, शिक्षा के प्रति जागरुकता की कमी व लिंगभेद आदि। (पसूका)

वरिष्ठ नागरिकों के लिए सुविधाएं

सरकारी अस्पतालों में वरिष्ठ नागरिकों के लिए पंजीकरण और क्लिनिकल जांच के लिए अलग से पंक्तियों की व्यवस्था है। नई दिल्ली के अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स) और सफदरजंग अस्पताल में वरिष्ठ नागरिकों के लिए अलग से जरावस्था क्लिनिक तथा बहिरंग रोग (ओपीडी) संचालित किया जा रहा है। 60 वर्ष और उससे ऊपर के वरिष्ठ नागरिकों के लिए भारतीय रेलवे में 30 प्रतिशत किराया रियायत, टिकट/आरक्षण खिडकी पर अलग पंक्ति की व्यवस्था है। एयर इंडिया और घरेलू विमानों पर वरिष्ठ नागरिकों (63 वर्ष से अधिक उम्र की महिलाओं और 65 वर्ष से अधिक आयु के पुरुषों) के लिए किराये में छूट प्रदान की जा रही है। बैंक, वरिष्ठ नागरिकों की बचत योजनाओं पर उच्चतर ब्याजदर प्रदान कर रहे हैं। इन सुविधाओं को प्रदान करने में होने वाले व्यय का वहन एजेंसियों द्वारा उनके स्वयं के संसाधनों से किया जाता है। (पसूका)

भारतीय गांव प्रगति के पथ पर

डॉ. बद्री बिशाल त्रिपाठी

दीर्घकाल तक भारतीय गांव आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से आत्मनिर्भर और पूर्ण इकाई के रूप में थे। शासक बदलते थे, परन्तु आधार पर गांवों की क्रियाविधि पूर्ववत् चलती रहती थी। गांव के प्रत्येक घटक परस्पर निर्भर और परस्पर पूरक थे। परस्पर सौहार्द था। गांव में भू–स्वामी, पट्टेदार और बटाईदार के रूप में कास्तकर थे। साथ–साथ शिल्पकार, व्यवसायी एवं सहायक सुविधायें प्रदान करने वाले लोग थे। गांव में उत्पादन, विनिमय, वितरण, न्याय, औषधि, आवागमन, सुरक्षा, मनोरंजन और सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन की अपनी व्यवस्था थी। चार्ल्स मेटकाफ ने गांवों की व्यवस्था के संदर्भ में उल्लेख किया है कि भारत के गांव छोटे–छोटे गणतंत्र के समान हैं जो आत्मनिर्भर हैं। उनके पास अपनी जरूरत की सभी चीजें हैं और वे बाह्य सम्बन्ध से स्वतंत्र हैं। परिवर्तन और निरंतरता की शाश्वत गतिमान धारा के अनुसार हाल की शताब्दियों में गांवों के भी स्वरूप एवं संरचना में क्रमिक परिवर्तन होते रहे हैं। परन्तु पिछले 100 वर्षों में विशेषकर नियोजन काल में देश के गांवों के स्वरूप, चिन्तन और व्यवहार में क्रान्तिक परिवर्तन आया है। यहां उन्नीसवीं शताब्दी और बीसवीं शताब्दी के प्रथम अर्धांश तक के औसत गांवों के संदर्भ के साथ गांवों की वर्तमान सामान्य सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का विश्लेषण किया गया है।

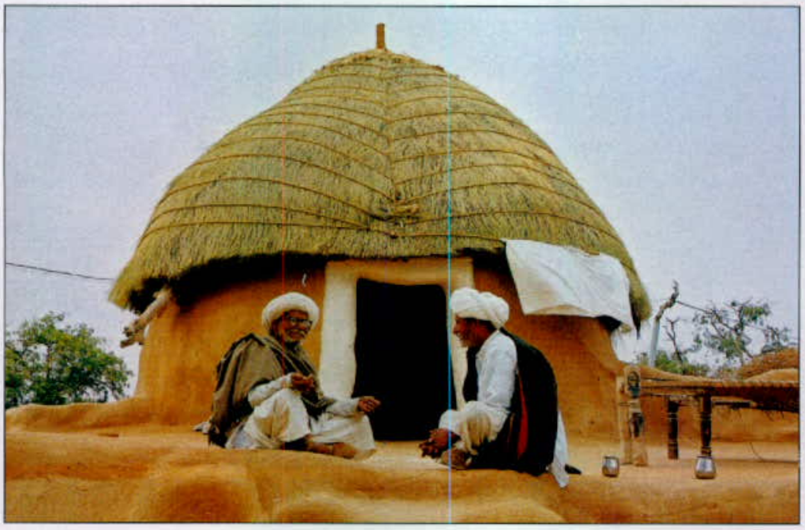

परंपरागत गांवों का स्वरूप

गांवों का पारंपरिक स्वरूप

अंग्रेजों के शासन काल में कृषि संरचना में नयी फसलों का समावेश हुआ तथापि कृषि प्रणाली खाद्यान्न और अनाज प्रधान बनी रही। कृषक जरूरत के अनुरूप अपनी फसल प्रारूप में परिवर्तन कर लेते थे। कृषि कार्य परंपरागत था। खेती मुख्यतः वर्षा पर आधारित थी। सिंचित भूमि अत्यन्त कम थी। तालाब और कुएं सिचांई के साधन थे। तालाब और कुएं बनवाना सबके लिये अभीष्ट था। तालाब से पानी निकालने के लिये बांस की टोकरी प्रयोग की जाती थी। बैल, सुतली की मोटी रस्सी और चमड़े के थैले, जिसे उत्तर प्रदेश के कई भागों में 'चरसा' कहा जाता था, द्वारा कुएं से पानी निकाला जाता था। तालाब और कुओं से सिंचाई के लिये पानी निकालना अत्यन्त श्रम साध्य था। रबी और खरीफ की फसल मुख्यतः इसी सिंचाई पर आधारित थी।

बैल ग्रामीण अर्थव्यवस्था के आधार थे। खेत की जुताई, सिंचाई, फसल को खलिहान तक लाने और खलिहान में फसल की मड़ाई के लिये बैल एकमात्र आधार थे। इसी प्रकार बैलगाड़ी के लिये बैल, तेलघानी के लिये बैल, खाद के लिये बैल, मनोरंजन के लिये बैल, सब जगह बैलों की प्रधानता थी। बैल गांव के प्रत्येक खेतिहर परिवार, भू–स्वामी व बटाईदार के दरवाजे की शान थे। बड़े कास्तकारों के यहां तो 5 से 10 जोड़ी तक बैल रहते थे। बैल ग्रामीण जीवन के प्रत्येक अवसर के साथी थे। रबी फसल के व्यस्त समय में प्रातः 5 बजे कभी–कभी इसके पूर्व भी सुन्दर–सजे और गले में घुंघरू बंधे बैल खेत के लिये चल पड़ते थे। सामान्य जनसंख्या वाले गांवों में भी 50–60 जोड़ी बैल पाले जाते थे। गांवों में प्रातः पक्षियों के कलरव और खेतों की ओर जाते हुए बैलों के घुंघरू की सुहावनी ध्वनि सुनाई पड़ती थी। इसी महती उपादेयता के कारण गांवों में बैल अत्यन्त सम्मानित और पूज्य थे। लार्ड लिन्लिथगो की अध्यक्षता में 1926 में गठित 'रायल कमीशन आन एग्रीकल्चर' ने अपनी रिपोर्ट (1927) में उल्लेख किया है कि बैल का भारतीय समाज पर बहुविध उपकार है। प्रत्येक भारतीय कृषक के पास एक जोड़ी बैल अवश्य होता है। गांवों में सामान्यतः धूप तेज होने, लगभग पूर्वान्ह 10 बजे तक ही कृषि कार्य होता था। पुनः अपरान्ह धूप कम होने पर लोग अपने कार्य में लग जाते थे। सामान्यतः पूर्वान्ह 10 बजे

से अपरान्ह 3 बजे तक का समय गांव में आराम का समय होता था।

स्थान–स्थान पर गांवों में विशेषकर मुस्लिम परिवारों में हथकरघे घर–घर में थे। साड़ियां और कपड़े बुने जाते थे। सूत कातने और करघे लायक सूत लपेटने का कार्य घर में ही महिलाओं द्वारा किया जाता था। बुनकर साड़ियों के गट्ठर लेकर गांवों में फेरी लगाते और बेचते थे। वे कुछ साड़ियां और कपड़े निकटवर्ती कस्बों में बेचते थे या बड़े बुनकरों के यहां विक्रय करने देते थे। करघा अत्यधिक विकेन्द्रित व्यवसाय था। भारत का करघा उद्योग विश्व विख्यात था। ढाका का मलमल तो टेक्सटाइल इंजीनियरिंग के लिये आज भी चुनौती है। तेल–घानी लगभग प्रत्येक गांव में थी। सरसों, अलसी, तिल, महुआ के बीज, नीम की निमकौर, अरंडी के बीज से तेल गांव में ही निकाला जाता था। आंख पर पट्टी लगा हुआ बैल, तेलघानी (कोल्हू) का एक मात्र चालक शक्ति था। पारिवारिक संस्कार और धार्मिक क्रियायें कुल पुरोहित एवं मौलवी द्वारा सम्पन्न कराये जाते थे। वे प्रयोजनार्थ शुभ लग्न और मुहूर्त भी बताते थे और अपने उपदेश तथा व्यवहार से मर्यादित जीवन पर जोर देते थे। कुल पुरोहित को प्रयोजन के अवसर पर नकद दक्षिणा के अतिरिक्त फसल तैयार होने पर स्वेच्छा से अनाज भी उपलब्ध कराया जाता था। कुछ बड़े गांवों में चांदी और स्वर्ण के आभूषण बनाने के लिये स्वर्णकार रहा करते थे। गांव में किसी विवाह व सामाजिक उत्सव के अवसर पर कार्य विभाजन का उक्त जातीय व्यवहार स्पष्ट दिखाई पड़ता था। व्यवहार में स्वाभाविक सहकारिता थी। गांव का कोई व्यक्ति जब तीर्थाटन एवं विद्याध्ययन के लिये दूर जाता था तो गांव के सभी लोग उसको आर्थिक एवं उपयोगी सामग्री से सहायता करते थे। सोपानिक जातीय व्यवस्था होते हुये भी सामाजिक समरसता थी।

गांवों में मकान की संरचना देश के विभिन्न भागों में अलग–अलग प्रकार की रही है तथापि गांवों के अधिकांश मकान कच्चे थे। दीवारें मिट्टी से और छत लकड़ी, बांस, फूस और खपरैल से बनती थी। कई स्थानों पर लकड़ी के ऊपर मिट्टी डालकर घर की छत बनाई जाती थीं। कतिपय गांवों में जमींदार, साहूकार अथवा धनी परिवार का पूरा मकान अथवा मकान का कुछ भाग पक्का बना होता था। इसकी दीवारें पहले छोटी ईंटों (लखावटी) और बाद में बड़ी ईंटों से बनायी जाती थीं। सामान्यतः घर के सामने फूस से बना बैठका बनाया जाता था। फूस से बना होने के कारण यह वर्ष भर में खराब हो जाता था और इसे प्रतिवर्ष बनाना पड़ता था। ईंटें गांव में ही 'पजावा' में लकड़ी, कंडे, फूस आदि डालकर पका ली जाती थीं। गांव तक पक्की सड़क और बिजली न थी। आवागमन पैदल, इक्का और बैलगाड़ी द्वारा होता था। बाइसिकिल भी अत्यन्त कम थी। बाजार और मंडियों तक सामान ले जाने के लिये बैलगाड़ी, ऊंट एवं अन्य भारवाहक जानवरों का प्रयोग किया जाता था। विशेषकर राजस्थान का ऊंट का कारवां तो पूरे देश में प्रतिष्ठा प्राप्त था। कई स्थानों पर जो कार्य बैल के माध्यम से होता था, वह सभी राजस्थान में ऊंट द्वारा सम्पन्न होता था। तब गांवों की जीवन पद्धति आज से पृथक थी।

हरे पेड़ काटना या सामाजिक उपयोग वाली परिसम्पतियों पर अतिक्रमण या उनको क्षति पहुंचाना सामाजिक अपराध था। राजस्थान में विश्नोई समुदाय के लोग तो पेड़ की टहनी भी नहीं तोड़ते थे। आक्सीजन की बहुतायत वाले वृक्ष यथा पीपल और बरगद तो गांवों में आज भी काटे नहीं जाते।

परन्तु वह निरपेक्ष गरीबी का समय था। अकाल वर्ष प्रतिवर्ष की कहानी थी। ब्रिटिश शासनकाल में अकालों की पुनरावृत्ति सामान्य बात थी। देश में 1768 से 1943 की अवधि में कुल 61 बार बड़े अकाल पड़े। इनमें लगभग 39 मिलियन लोगों की मौत भूख से हो गयी। वस्तुतः अंग्रेजी शासन का आरम्भ और अंत अकालों से हुआ। अंग्रेजी शासन के आरम्भिक वर्षों में 1770 में बड़ा अकाल पड़ा और ऐसा ही बड़ा अकाल अंग्रेजी शासन के अंत के कुछ वर्ष पहले 1943 में पड़ा। अकालों के साथ कोई महामारी जुड़ जाती थी। उससे स्थिति अधिक भयावह हो जाती थी। आधुनिक चिकित्सा सुविधायें नगण्य थीं। संक्रामक बीमारियों का भयानक कहर था। हैजा, चेचक का प्रकोप वर्ष प्रतिवर्ष की कहानी थीं। बीमारियों से बचाव हेतु ग्राम्य देवी/देवता को खुश करने के लिये पूजा–पाठ होता था और पशु बलि भी दी जाती थी। यह सामूहिक रूप से किया जाता था। शिक्षा का स्तर अत्यन्त कम था। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गांवों का स्वरूप पिछड़ा था।

गांवों का वर्तमान स्वरूप

ग्रामीण अर्थव्यवस्था की समस्याओं पर ध्यान दिये बिना भारत के विकास की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। अतएव नियोजन के आरम्भ से अब तक की सभी योजनाओं में ग्रामीण विकास के लिये अपनायी गयी विभिन्न युक्तियों के परिणामस्वरूप ग्रामीण अर्थव्यवस्था के परंपरागत स्वरूप में परिवर्तन आया हैं। ग्रामीण अर्थव्यवस्था आधुनिकीकरण की ओर अग्रसर हुई है। आधुनिक विकासजन्य विविध उपयोग की वस्तुएं अब गांवों में सुगमतापूर्वक देखी जा सकती हैं। फसल उत्पादन, ग्रामीण विद्युतीकरण, ग्रामोद्योग, शिक्षा, विकास कार्यों के प्रति अनुकूल अनुक्रिया, परिवहन , वृक्षारोपण आदि की दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। नियोजन काल में आरम्भ किया गया ग्रामीण विकास कार्यक्रम एक व्यापक कार्यक्रम है जिसके अंतर्गत कृषि विकास, भूमिहीनों के लिए उचित मजदूरी, ग्रामीण औद्योगीकरण, जनस्वास्थ्य, शिक्षा, परिवहन तथा आर्थिक व सामाजिक उन्नति का आधार तैयार करना आदि सम्मिलित हैं। नियोजन काल में इन तत्वों की

प्रगति के अवलोकन से ग्रामीण विकास की स्थिति देखी जा सकती है।

संस्थागत एवं तकनीकी परिवर्तनों से कृषि क्षेत्र में सुधार हुआ है। योजनाकाल की 1951–52 से 2004–05 की अवधि में कृषि उपज में औसतन 2.6 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से वृद्धि हुई। अतीत की तुलना में यह वृद्धि दर अत्यन्त ऊंची है। योजनाकाल में फसल संरचना में भी गुणात्मक सुधार हुआ। गेहूं और चावल की फसलों के अंतर्गत क्षेत्र बढ़े हैं। खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता प्राप्त करके न केवल हम उपयोगी विदेशी मुद्रा की बचत कर रहे हैं, बल्कि इस आरोप से भी मुक्त हो गए हैं कि कृषि प्रधान देश होते हुए भी भारत को खाद्यान्नों के लिए विदेशों का सहारा लेना पड़ रहा है। अत्यन्त महत्वपूर्ण बात यह है कि अब कृषि उत्पादन की वृद्धि फसलों के अंतर्गत क्षेत्र बढ़ाए बिना ही संभव हुई है। खाद्यान्न उत्पादन की समस्त वृद्धि 1981 के बाद उत्पादिता बढ़ने से हुई है। वर्ष 1980–81 में शुद्ध बोया गया क्षेत्र 143 मिलियन हेक्टेयर था, और 2004–05 में भी शुद्ध बोये गये क्षेत्र 142 मिलियन हेक्टेयर था तथापि इस अवधि में खाद्यान्न उत्पादन 135 मिलियन टन से बढ़कर 212 मिलियन टन हो गया। वस्तुतः खाद्यान्न फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र में तीव्र कमी आयी है क्योंकि कृषि भूमि गैर–कृषि प्रयोगों और गैर–खाद्यान्न फसलों की ओर हस्तांतरित हुई है। आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया आरंभ होने के बाद कृषि क्षेत्र में विविधीकरण की प्रक्रिया तीव्र हुई है। कृषि में गैर–अनाज फसल उत्पादों की भूमिका बढ़ रही है। गैर–परम्परागत कृषि उत्पाद तथा मशरूम, पुष्प कृषि, औषधीय फसलें, डेयरी, मत्स्य पालन, मुर्गीपालन आदि का महत्व बढ़ता जा रहा है। कृषि अब मात्र जीवन निर्वाह का साधन नहीं अपितु एक लाभकारी व्यवसाय का रूप धारण कर रही है। कृषि में बहुफसली क्षेत्र में लगातार वृद्धि हुई है। कृषि में सक्षमता आयी है और कृषि विविधीकरण तेजी से बढ़ा है। व्यावसायिक और मांग आधारित फसलों की ओर कृषक उन्मुख हुये हैं। भारत अब विश्व का सबसे बड़ा दुग्ध उत्पादक देश है। अंतर्देशीय मत्स्य उत्पादन में भारी प्रगति हुई है।

योजनाबद्ध विकास प्रक्रिया के परिणामस्वरूप ग्राम और लघु स्तरीय उद्योगों के उत्पादन और उत्पादित वस्तुओं की संख्या में वृद्धि हुई है। लघु स्तरीय उद्योग परंपरागत वस्तुएं बनाने के साथ–साथ आधुनिक विविध वस्तुएं बनाने लगा है। इस क्षेत्र द्वारा 5000 से भी अधिक वस्तुओं का उत्पादन होता है। ग्रामीण क्षेत्र में अवस्थापनागत सुविधाओं का प्रसार होने के कारण ग्रामीण क्षेत्र में गैर–कृषि रोजगार लगातार बढ़ रहा है। इससे कुटीर और लघु औद्योगिक इकाइयों की संख्या बढ़ रही है। योजनाकाल में सड़कों का तीव्र प्रसार हुआ है। ग्रामीण सड़कों का निर्माण राजकीय क्षेत्र के न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम का अंग है। न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अंतर्गत यह लक्ष्य रखा गया है कि 1500 या इससे अधिक जनसंख्या वाले सभी गांवों को पक्की सड़क से जोड़ दिया जाए। पर्वतीय, जनजातीय, रेगिस्तानी तथा तटवर्ती एवं दुर्गम स्थानों में कम जनसंख्या वाले गांवों को भी सड़कों से जोड़ने का प्रयास किया जा रहा है। प्रधानमंत्री ग्राम–सड़क योजना, पक्की सड़कों से न जुड़े हुए 500 या उससे अधिक आबादी वाले (जनजातीय एवं रेगिस्तानी क्षेत्र में 250 आबादी वाले) गांवों को दसवीं योजना के अंत तक पक्की सड़क से जोड़ने के लिये दिसंबर 2000 में आरंभ की गयी। ग्रामीण विकास में विद्युतीकरण की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इससे न केवल कृषि विकास को गति मिलती है, वरन् यह तीव्र ग्रामीण औद्योगीकरण के लिए भी अपरिहार्य है। हरियाणा, पंजाब, तमिलनाडु, दादर और नागर हवेली, लक्षद्वीप, केरल और चंडीगढ़ के समस्त गांवों का विद्युतीकरण किया जा चुका है। मार्च 2002 तक देश के 5 लाख गांवों का विद्युतीकरण किया जा चुका था। नवीं योजना के बाद केवल 87 हजार गांवों का विद्युतीकरण किया जाना था। विद्युतीकरण और सड़कों का जाल फैलने से गांवों में गत्यात्मकता और उद्यमिता बढ़ी है। सड़कों के किनारे, चौराहों पर, कस्बों में रोजगार के नये अवसर पैदा हुए हैं।

नियोजन आरंभ के समय ग्रामीण क्षेत्र में शैक्षिक और स्वास्थ्य सेवाओं की आपूर्ति अत्यन्त कम थी। साक्षरता दर अत्यन्त कम थी। योजनाकाल में ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षण संस्थानों की संख्या बढ़ी है। उच्च प्राविधिक और चिकित्सकीय शिक्षा उपलब्ध कराने वाले संस्थान भी ग्रामीण क्षेत्र में स्थापित किये गये हैं। नवीन प्रकृति वाले गैर परंपरागत पाठ्यक्रमों में ग्रामीण युवकों का समावेश बढ़ा है। शैक्षिक प्रसार से ग्रामीण जन समुदाय में रूढ़िवादी बंधन शिथिल हुए हैं। ग्रामीण क्षेत्र में स्वास्थ्य और चिकित्सीय सुविधाओं का तीव्र प्रसार हुआ। स्वास्थ्य सेवाओं के प्रसार से हैजा, चेचक, प्लेग, टीबी जैसी भयानक संक्रामक बीमारियों पर नियंत्रण पा लिया गया है। मलेरिया की रोकथाम और निदान के प्रभावी उपाय किये गये हैं। संवादवाहन के विभिन्न माध्यमों का योजनाकाल में तीव्र प्रसार हुआ है। दूर संचार के प्रसार से ग्रामीण क्षेत्र की सम्बंधित सार्वत्रिक हो गयी है। अब दुरुह और दुर्गम क्षेत्र भी राष्ट्रीय धारा से अपने को जुड़ा हुआ अनुभव करते हैं।

73वें संविधान संशोधन के पश्चात गांवों में पंचायती–राज व्यवस्था मजबूत हुई है। गांवों में क्रान्तिक सामाजिक बदलाव आ गया है। पंचायतों को अब सांविधानिक दर्जा प्राप्त हो गया है। वे अब प्रशासनिक तंत्र की मुखापेक्षी नहीं रह गयी हैं। इस समय देश में लगभग 2.3 लाख ग्राम पंचायतें, क्षेत्र समितियां और जिला पंचायतें है। इनमें जनता के चुने हुये लगभग 30 लाख प्रतिनिधि हैं। पंचायतों में अनुसूचित जातियों और अनूसूचित जनजातियों

तथा महिलाओं का प्रतिनिधित्व मानक तक है। इससे उनमें नेतृत्व क्षमता बढ़ी है और विकास की ओर अग्रसर होने की प्रवृत्ति बढ़ी है। पंचायतीराज संस्थानों को अब यह अधिकार प्राप्त है कि आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिये विकास योजनायें बनायें और कार्यान्वित करें। संविधान की 11वीं अनुसूची को पंचायतों से जोड़ा गया है। इसमें 29 मद सम्मिलित हैं। तदनुसार पंचायती राज संस्थायें अब अपने क्षेत्र में कृषि, भूमि संरक्षण, लघु सिंचाई, जल प्रबन्ध, पशुपालन, मत्स्यपालन, सामाजिक वानिकी, खादी एवं ग्रामोद्योग, ग्रामीण अवास, पेयजल, ग्रामीण सड़कें, शिक्षा, गरीबी निवारण कार्यक्रम, प्रौढ़ शिक्षा, सांस्कृतिक कार्यक्रम, स्वास्थ्य एवं स्वच्छता, सामाजिक कल्याण, सार्वजनिक वितरण प्रणाली, परिवार कल्याण आदि के संदर्भ में कार्यक्रम बना सकती हैं और लागू कर सकती हैं। पंचायतें ग्रामीण निर्माण कार्यों की ओर अग्रसर हैं। परन्तु पंचायतों को अभी गांव के विकास की योजना बनाने, उसे क्रियान्वित करने और ग्रामीण जनसंख्या में विकास चेतना सृजित करने के लिये लम्बा मार्ग तय करना है।

स्वतंत्रता के बाद विशेषकर नियोजनकाल में ग्रामीण अर्थव्यवस्था प्रगति की ओर अग्रसर हुई है। उसके परम्परागत स्वरूप में परिवर्तन स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगा है। यह ग्रामीण विकास समग्र रूप से सरकार द्वारा प्रवर्तित कल्याण एवं उत्पादक कार्य, नगरीकरण और नगरीय सम्पर्क, प्रशासनिक सुधार, राजनैतिक जागरुकता, शिक्षा प्रसार और विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी विकास का फल रहा है। प्रौद्योगिकी विकास ने ग्राम्य जीवन के उन्नयन में प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से सहायता पहुंचायी है। खेतिहर समाज ने नयी आदतें और जीवन–यापन के नये ढंग अपनाये हैं। वे अब नये उपकरण और प्राविधिक प्रक्रियाओं को अपनाने लगे हैं। उनके पहनावे और आभूषणों में उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ है। बहुतायत कृषक विशेषकर युवा पीढ़ी में परम्परागत पहनावा कम होता जा रहा है। यह केवल पुरानी पीढ़ी के लोगों तक सीमित है। सक्षम ग्रामीण परिवारों में नगरों के अनुरूप आभूषणों एवं वस्त्रों का प्रचलन हो गया है। गांवों में अब कच्चे मकानों का चलन कम हो गया है। नये मकान ईंट और सीमेंट से बन रहे हैं। विद्युत चलित उपकरण प्रयोग में लाये जा रहे हैं। खेती में ट्रेक्टर, पंपसेट, ट्यूबवेल, थ्रेसर आदि का प्रयोग तेजी से बढ़ा है। जातीय बंधन और जातीय पंचायतों के कठोर बंधन शिथिल हुये हैं। पुराने रीति–रिवाज उसी सीमा तक व्यवहार में लाये जा रहे हैं जहां तक वे वर्तमान दशाओं से संगत हो पाते हैं।

कृषक गांव की रीढ़ होते हैं। कृषि और सम्बद्ध क्रियाओं की धुरी पर ही ग्रामीण अर्थव्यवस्था चलती है। कृषक देश के लिये अन्नदाता है। परन्तु इस समय देश का सामान्य कृषक अपनी आधारिक जरूरतें भी नहीं पूरी कर पा रहा है। इन्हीं अन्नदाता परिवारों में आज विवशतावश आत्महत्यायें हो रही हैं। आज भी आत्महत्यायें अविरल गति से जारी हैं। कृषकों में आत्म–हत्यायें बढ़ रही हैं। आन्ध्र प्रदेश के कई क्षेत्रों, महाराष्ट्र के विदर्भ और उत्तर प्रदेश के बुन्देलखण्ड क्षेत्र में पिछले कई वर्षों से किसानों द्वारा दुखद और दुर्भाग्यपूर्ण आत्महत्या के समाचार लगातार आ रहे हैं। कृषि घाटे का व्यवसाय बनती जा रही है। राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण के 59वें दौर के निष्कर्ष के अनुसार देश के 40 प्रतिशत कृषक अलाभदायकता सहित विभिन्न कारणों से खेती छोड़ देना चाहते हैं। राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण के 59वें दौर के अनुमान के अनुसार देश के 48.6 प्रतिशत कृषक परिवार ऋणग्रस्त थे जबकि यह कृषक ऋणग्रस्तता 1991 में 25.9 प्रतिशत थी। बहुविध प्रयासों के बाद भी अभी गरीबी की समस्या बनी है। यह अनुमान किया गया है कि 2004–05 में ग्रामीण क्षेत्र की 28.3 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे थी। उड़ीसा, बिहार, मध्य प्रदेश, झारखण्ड, छत्तीसगढ़, उत्तराखण्ड और उत्तर प्रदेश में तो एक तिहाई से अधिक ग्रामीण जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे है। इससे गांव की खराब होती दशा का स्पष्ट आभास होता है।

गांव में ग्रामीण प्रकृति वाले रोजगार के अवसर अत्यन्त कम हो गये हैं। कृषि क्षेत्र में उत्पादन जड़ता की दशायें उत्पन्न होने से कृषिगत रोजगार वृद्धि लगभग समाप्त हो गयी है। ग्रामीण श्रमिकों को गांव में रोजगार नहीं उपलब्ध हो रहा है। इसलिये ग्रामीण श्रमिक परिवारों के लोग ईंट भट्टों पर काम करने के लिये अथवा नगरों और कस्बों में अकुशल रोजगार हेतु पलायन कर रहे हैं। खेती की उपज न बढ़ने से खेतिहर परिवारों की हालत खराब हो रही है। वह खेती छोड़कर पलायन भी नहीं कर सकता है। ग्रामीण क्षेत्र में कई व्यवसाय पुश्तैनी हुआ करते थे। व्यवसाय का यह स्वरूप अब बदल गया है। लोग अपनी पसंद से अब व्यवसाय का चयन कर रहे हैं। सरकार द्वारा चलाये जा रहे निर्माण कार्यों से स्थान–स्थान पर दैनिक, संविदात्मक एवं अकुशल रोजगार बढ़ रहा है तथापि गांवों से दबावकारी पलायन हो रहा है। 2001 की जनगणना के अनुसार देश की कुल आबादी में लगभग 27 प्रतिशत जनसंख्या नगरीय क्षेत्र में रहती है। गांव में आजीविका के अवसर घटने के कारण नगरों की ओर पलायन अत्यन्त तेज हो गया है। यह अनुमान है कि सन् 2020 तक देश की लगभग 50 प्रतिशत जनसंख्या नगरीय क्षेत्र में रहने लगेगी। इससे नगरों का प्रसार तीव्र गति से हो रहा है और खेती वाली जमीन कम होती जा रही है। गांवों का स्वरूप अब लगभग बदल गया है। उनका चरित्र कस्बाई होता रहा है। व्यावसायिक कृषि की प्रधानता होती जा रही है। नगरीय क्षेत्र की भांति अब ग्रामीण अर्थव्यवस्था भी तेज गति और पश्चिमी सभ्यता की अभ्यस्त होती जा रही है।

(लेखक इलाहाबाद डिग्री कॉलेज के अर्थशास्त्र विभाग में रीडर हैं।)

चीनी उद्योग की समस्याएं और समाधान

डॉ. नरेन्द्र पाल सिंह

हमारे देश में आज भी दो तिहाई जनसंख्या गांव में निवास करती है जो पूर्णतः या आंशिक रूप से खेती के ऊपर निर्भर है। अतः हमारा विकास भी कृषि एवं गांव के विकास में ही निहित है। गांव में रहने वाले एवं कृषि में लगे अधिकांश लोग बेरोजगार हैं या फिर कृषि में व्याप्त अदृश्य बेरोजगारी का शिकार हैं, किन्तु कृषि क्षेत्र में चीनी उद्योग द्वारा काफी मात्रा में गांव के लोगों को रोजगार उपलब्ध कराये गये हैं। गन्ने की नकदी फसल होने के कारण किसान भी इसकी ओर काफी आकर्षित हुए हैं क्योंकि मिल अथवा क्रेशरों से किसानों को फसल के बदले एकमुश्त धनराशि मिल जाती है जिससे उनके जीवन स्तर में काफी सुधार आया है। इसके साथ ही पिछले सालों में गन्ने के लगातार बढ़ते हुए मूल्य को देखकर किसानों द्वारा गन्ने की फसल की बुवाई में बेतहाशा वृद्धि की गई है।

चीनी उद्योग देश के कृषि पर आधारित प्रमुख उद्योगों में से एक है। बड़े उद्योग के रूप में चीनी उद्योग का विकास 20वीं सदी से प्रारम्भ हुआ तथा सूती वस्त्र उद्योग के बाद, कृषि उत्पादों पर आधारित उद्योगों में चीनी उद्योग का दूसरा स्थान है। चीनी उद्योग के अन्तर्गत लाखों लोगों को रोजगार मिला है जबकि इसके उपोत्पाद एवं सह उत्पादों से सम्बन्धित उद्योग भी विकसित हुए हैं। 30 सितंबर तक देश में कुल चीनी मिलों की संख्या 582 थी जबकि 1950–51 में मात्र 138 चीनी मिलें कार्यरत थीं। वर्तमान में कुल चीनी मिलों में 317 मिलें सहकारी क्षेत्र में, 52 मिलें सरकारी क्षेत्र में और 203 मिलें निजी क्षेत्र में कार्यरत हैं। पहले चीनी मिलों की स्थापना के लिए लाइसेंस लेना अनिवार्य था किन्तु 20 अगस्त 1998 को सरकार ने इस उद्योग को लाइसेंस मुक्त घोषित किया, किन्तु दो चीनी मिलों के बीच 15 कि.मी. के फासले की शर्त को जारी रखा गया है। नई चीनी मिलों पर क्षमता से सम्बन्धित कोई शर्त लागू नहीं की गई है। संसार में चीनी उत्पादन के क्षेत्र में भारत का ब्राजील के बाद दूसरा स्थान है जबकि चीनी की खपत भारत में सबसे अधिक है, किन्तु इसके बावजूद भी देश में किसानों के सम्मुख गन्ना उत्पादन एवं मूल्य का संकट उत्पन्न हो गया है। इसके पीछे प्रमुख कारण गन्ने का अधिक उत्पादन एवं सरकारी नीति रहा है। सरकार ने जब उद्योग में उदारीकरण की अवधारणा को लागू किया तो चीनी उद्योग भी इससे अछूता नहीं रह पाया परिणामस्वरूप चीनी उद्योग एवं गन्ना उत्पादकों को काफी राहत प्रदान की जा रही है। सरकार द्वारा लेवी की चीनी का कोटा भी कम कर दिया गया है तथा राशन की दुकानों पर चीनी केवल गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों के लिए ही सीमित कर दी गयी है और चीनी मिलों को चीनी खुले बाजार में बेचने की अनुमति प्रदान की गई है। चीनी मिलों को गन्ने से चीनी के अतिरिक्त शीरा, खोई एवं मैली भी प्राप्त होती है जिसको शराब, गत्ते एवं जैविक खाद के रूप में प्रयोग किया जा रहा है। वर्ष 2005–06 में चीनी उत्पादन में उत्तर प्रदेश का प्रथम स्थान रहा है। राज्य की 106 चीनी मिलों द्वारा 55.64 लाख टन चीनी का उत्पादन किया गया जो कि कुल उत्पादन का लगभग 30 प्रतिशत है। महाराष्ट्र में भी 134 चीनी मिलों द्वारा 52.64 लाख टन चीनी उत्पादित की गई है। तमिलनाडु में 21.09 लाख टन, आंध्र प्रदेश में 12.75 लाख टन, गुजरात में 12.44

गन्ने की बढ़ती पैदावार एक समस्या

लाख टन चीनी का उत्पादन 2005–06 में रहा है। उत्पादन में जबरदस्त बढ़ोत्तरी और निर्यात न हो पाने के कारण घरेलू बाजार में चीनी के थोक व खुदरा दामों में जबरदस्त गिरावट आयी है। गत वर्ष 45 लाख टन का बकाया चीनी स्टाक व इस सीजन का 280 लाख टन का उत्पादन मिलाकर बाजार में चीनी की उपलब्धता 325 लाख टन तक पहुंच गयी जबकि वार्षिक खपत मात्र 190 से 200 लाख टन है। चीनी की उपलब्धता व खपत में भारी अन्तर के कारण घरेलू बाजार में चीनी का मिल डिलीवरी थोक मूल्य 1100 से 1200 रुपये प्रति क्विंटल चल रहा है जबकि गन्ने का दाम 120 से 130 रुपये प्रति क्विंटल होने के कारण चीनी मिलों की लागत लगभग 1500 रुपया प्रति क्विंटल बैठती है। अतः चालू सीजन के दौरान चीनी मिलों को चीनी की प्रत्येक बोरी पर औसतन 350 रुपये का नुकसान उठाना पड़ रहा है। भारत में गन्ने की प्रति एकड़ उपज भी अन्य चीनी उत्पादक देशों से बहुत कम है तथा गन्ने में चीनी का प्रतिशत 9 से 10 के मध्य होता है जबकि अन्य चीनी उत्पादक देशों में यह 13 से 14 प्रतिशत तक है। देश में विभिन्न वर्षों की गन्ने की पैदावार एवं प्रति क्विंटल तालिका द्वारा दर्शाया गया है।

सरकार एवं चीनी मिलों का किसानों के प्रति सहानुभूति रवैया दिखायी नहीं देता जबकि किसान निरन्तर परेशानियों को उठाते हुए अपनी पैदावार चीनी मिलों को समय से उपलब्ध करा रहे हैं। किसानों के लिए सरकार की तरफ से कोई रियायत, बीज, खाद, कीटनाशक दवाइयों और कृषि उपकरणों पर उपलब्ध नहीं करायी जा रही है और सरकार यदि कोई छूट या रियायत देती भी है तो वह चन्द अथवा प्रभावशाली किसानों तक ही पहुंचती है, आम किसानों को प्राप्त नहीं होती है। जिस अनुपात से गन्ने की लागतों में भारी वृद्धि हो रही है उस अनुपात में मूल्य वृद्धि नहीं हो पा रही है। डीजल की कीमतों में वृद्धि तथा बिजली की अनुपलब्धता गन्ने की लागतों को लगातार बढ़ा रही है जिससे किसानों को और अधिक परेशानी झेलनी पड़ रही है। किसानों की गन्ने की कुल उपज का तीस से चालीस प्रतिशत भाग ही चीनी मिलों द्वारा खरीदा जाता है बाकी उपज, गुड़ एवं खाण्डसारी उद्योग में पहुंचती है जहां उपज का समुचित उपयोग नहीं हो पाता। एक तरफ तो किसान लागत की मार झेलते हैं तथा दूसरी तरफ उत्पादन का सही एवं पूरा मूल्य नहीं वसूल पाते हैं। अतः गन्ने की जो आपूर्ति वे चीनी मिलों को करते हैं उसका भुगतान भी समय पर उनको नहीं मिल पाता है। विगत वर्षों में चीनी मिलों पर गन्ना मूल्य की बकाया राशि तालिका में दर्शाई गई है।

गन्ना भुगतान की समस्या विगत वर्षों से चली आ रही है। वर्ष 2005–06 के सीजन के दौरान सूखे के चलते देश में चीनी का उत्पादन मात्र 145 लाख टन हुआ जिसकी वजह से घरेलू खुदरा बाजार में चीनी का दाम बढ़ कर 25 रुपये प्रति किलो तक पहुंच गया था जिस पर काबू पाने के लिए सरकार ने जून 2006 में चीनी के निर्यात को पूर्णतः प्रतिबन्धित कर दिया था। अक्टूबर 2006 में नया सीजन शुरू होने के समय उत्पादन का सही अन्दाजा न होने के कारण चीनी का निर्यात प्रतिबन्धित रहा। अतः दिसम्बर में चीनी के उत्पादन का अनुमान 280 लाख टन लगाया गया लेकिन तब तक चीनी के बाजार मूल्य घट कर थोक बाजार में 1400–1600 रुपये प्रति क्विंटल रह गये। सरकार द्वारा मिलों को राहत देने के उद्देश्य से चीनी निर्यात पर प्रतिबन्ध आंशिक रूप से हटा लिया गया। इसके तहत विदेश से पहले ही रॉ शुगर का आयात कर चुकी मिलों को निर्यात करने की छूट दी गई तदोपरान्त निर्यात पर प्रतिबन्ध पूर्णतः हटा लिया गया। लेकिन तब तक स्थिति काबू से बाहर हो गई और अधिक उत्पादन के कारण चीनी के दाम लगातार बाजार में गिर गये। साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में भी चीनी के दामों के कमी आयी और निर्यात भी फायदे का सौदा नहीं रहा। सरकार ने चीनी को बंदरगाहों तक पहुंचाने

गन्ने की पैदावार एवं न्यूनतम वसूली मूल्य

वर्ष	गन्ने की उपज (करोड़ टन में)	न्यूनतम वसूली मूल्य (रुपये प्रति क्विंटल)
2002–03	28.73	69.50
2003–04	23.38	73.00
2004–05	23.70	74.50
2005–06	28.11	79.50
2006–07	34.53	....
2007–08	....	81.18

गन्ने मूल्य की चीनी मिलों पर बकाया राशि

वर्ष	धनराशि करोड़ मे
2002–01	584
2001–02	1115
2002–03	1622
2003–04	646
2004–05	208
2006–07	3000

के लिए जरूरी नकद सब्सिडी देनी शरू की लेकिन फिर भी चीनी का निर्यात नहीं बढ़ा। दूसरी ओर पेट्रोल में एथनॉल के पांच प्रतिशत मिश्रण को शुरू तो कर दिया गया लेकिन इसे बाध्यकारी नहीं बनाया गया। अतः पैट्रोल कम्पनियां एथनॉल की खरीद को लेकर गंभीर नहीं हुई। इससे चीनी मिलों को अतिरिक्त कमाई का लाभ भी नहीं मिल सका। मुनाफे में किसानों को भागीदार नहीं बनाने वाली चीनी मिलें अब अपने घाटे में किसानों को भागीदार बनाने की कोशिश कर रही हैं। साथ ही चीनी मिलें पैट्रोल में एथनॉल के मिश्रण को भी बाध्यकारी बनाने की बात कर रही हैं किन्तु पैट्रोल कम्पनियां इसके दाम को लेकर काफी चिन्तित है क्योंकि दीर्घावधि में चीनी मिलें एकाधिकारवादी नीति अपना सकती हैं। गन्ने की आपूर्ति में कमी आने पर एथनॉल की निर्बाध आपूर्ति करने का कोई तरीका नहीं बचता है।

चीनी उद्योग इतना बड़ा एवं पुराना होने के बावजूद भी समस्या ग्रस्त है। देश में गन्ने की काफी मात्रा में पैदावार है और निरन्तर श्रम की भी आवश्यकता नहीं होती क्योंकि इस फसल का चक्र एक वर्ष है। किसानों के पास नवीनतम मशीनों का अभाव है और वे श्रम की पूर्ति समय से सुनिश्चित नहीं कर पाते। साथ ही चीनी का प्रति व्यक्ति उपयोग भी निरन्तर बढ़ रहा है। सरकार द्वारा भी समय–समय पर पर्याप्त सहायता दी जा रही है। नयी–नयी खोज की जा रही है और गन्ने की नयी–नयी, अधिक उपज देने वाली प्रजातियां विकसित की जा रही हैं फिर भी उद्योग अनेक समस्याएं झेल रहा है। हमारे देश में गन्ने का उत्पादन प्रति हैक्टेयर कम है जबकि अन्य देशों की तुलना में रिकवरी अनुपात भी कम है और यह उद्योग अपने निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाता परिणामस्वरूप लागतें बढ़ जाती हैं। चीनी मिलों की प्रमुख समस्याओं में वैधानिक नियंत्रण एवं सरकारी नीति में बार–बार परिवर्तन होना शामिल है। गन्ने से उत्पन्न चीनी के अतिरिक्त खोई, शीरा, मैली काफी मात्रा में निकलते हैं। अतः पर्याप्त मात्रा में सहायक उद्योग न लगने के कारण उपोत्पाद के रूप में इनका समुचित उपयोग नहीं हो पाता है। गन्ने की प्रजातियां सुधारने हेतु देश में अनुसंधान केन्द्रों की आज भी कमी है। अधिकांश पुरानी चीनी मिलें आज भी उत्पादन की परंपरागत तकनीकें अपना रही हैं जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन लागत में वृद्धि एवं गुणात्मक रूप में कमी हो रही है। अतः इन मिलों के आधुनिकीकरण की समस्या बनी हुई है।

चीनी उद्योग में मूल्य अस्थिरता का भय तथा स्थायी मूल्य नीति का अभाव है। मौसमी प्रवृत्ति होने के कारण किसानों एवं कर्मचारियों के सम्मुख छः माह बेरोजगारी बनी रहती है। चीनी उद्योग में स्थानीकरण की समस्या बनी हुई है और अधिकांश इकाई छोटी होने के कारण लागतें अधिक आती हैं तथा बड़े पैमाने की बचत प्राप्त नहीं हो पाती। यदि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हम अपने चीनी उद्योग की तुलना करें तो वह मानकों को पूरा नहीं करता। लागतों में वृद्धि का एक कारण यह भी है कि चीनी मिलों द्वारा गन्ना क्रय केन्द्रों से खरीदे गये गन्ने को मिल तक लाने में भार की गिरावट हो जाती है जबकि समुचित परिवहन व्यवस्था तथा अन्तर्ग्रामीण सड़कों का आज भी अभाव है। गन्ने की फसल मानसून एवं अनिश्चिताओं पर आधारित है तथा मूल्य के रूप में गन्ने को अन्य फसलों से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है। गन्ने की फसल में काफी रोग आने की संभावना भी बनी रहती है, अतः बाजार में पर्याप्त मात्रा में उर्वरक, कीटनाशक दवाइयां उपलब्ध नहीं हो पाती जिससे गन्ने की फसल निरन्तर प्रभावित होती रहती है। चीनी उद्योग के सम्मुख कर भार, विद्युत, वित्तीय, किसान एवं कर्मचारियों का आपसी टकराव आदि समस्याएं भी बनी रहती हैं।

चीनी उद्योग में तमाम समस्याएं होने के बावजूद भी लोगों में जागृति आई तथा सरकार द्वारा भी तत्कालीन समस्याओं के प्रति काफी कदम उठाये हैं। किन्तु जरूरत इस बात की है कि इस उद्योग हेतु दीर्घकालीन नीति बनायी जाए ताकि समस्याओं का स्थायी निराकरण किया जा सके। सरकार को चाहिए कि वे गन्ने के अनुसंधान पर पूर्ण ध्यान दे और मिल मालिक भी गन्ने की नयी–नयी प्रजातियां विकसित कर, किसानों को उपलब्ध करायें। साथ ही आधुनिक कृषि यन्त्रों, उर्वरकों और कीटनाशक दवाइयों के प्रयोग हेतु किसानों को प्रोत्साहित किया जाए। किसानों को गन्ने की अगेती अथवा जल्दी पकने वाली फसलों को उगाने पर अनुदान दिया जाए। चीनी मिल क्षेत्र में आने वाली गुड़ खाण्डसारी की इकाइयों पर प्रतिबंध लगाया जाए ताकि अनावश्यक प्रतिस्पर्धा न पनपे। गन्ने की अच्छी पैदावार के लिए किसान भाई उन्नत प्रजाति के गन्ने की उचित समय पर सही बीज द्वारा आधुनिक पद्धति से बुआई सुनिश्चित करें। गन्ने के बीज पर विशेष ध्यान रखा जाए और यह तय किया जाए कि

चार आंख वाले गन्ने के टुकड़े ही बोये जाए। बीज नर्सरी से प्राप्त किया जाए जिसको बुवाई से पूर्व पारायुक्त रसायन जैसे एमिसान, एगलोल आदि से अवश्य उपचारित कर लें। यदि दीमक का प्रभाव दिखाई दे तो दवाई का प्रयोग अवश्य किया जाए।

जो पुरानी मिलें घट रही हैं उनका आधुनिकीकरण किया जाए एवं भविष्य में मिल कर्मचारियों की जवाबदेहिता सुनिश्चित की जाए। यदि इन मिलों को कार्यशील वित्त की आवश्यकता है तो समय से उपलब्ध कराया जाए तथा इन्हें राष्ट्रीयकरण के भय से मुक्त रखा जाए। चीनी मिलों में जो प्रक्रियागत हानि हो रही है उसे रोका जाये और गन्ने एवं चीनी का पर्याप्त स्टॉक रखा जाए। मिल कर्मचारी एवं किसान बेरोजगार न हो इसके लिए गन्ने की ऐसी प्रजातियां विकसित की जाएं जो पूरे साल गन्ने की आपूर्ति बनाए रखें। किसानों को गन्ने की सम्पूर्ण एवं आधुनिक जानकारी प्रदान करने हेतु गांव–गांव जाकर, चीनी मिलों द्वारा किसानों की गोष्ठी आयोजित की जाये। किसान हड़ताल एवं आंदोलन के लिए मजबूर न हों, उन्हें सीजन के प्रारम्भ में ही किसान कलेंडर तैयार कर, प्रदान किया जाए ताकि गन्ने की आपूर्ति उसी हिसाब से सुनिश्चित की जा सके। मिलों द्वारा अपने उत्पाद की लागत कम करने के लिए उन्हें उपोत्पाद का समुचित उपयोग करने की अनुमति प्रदान की जाए तथा सस्ती एवं सुलभ परिवहन व्यवस्था मुहैया कराई जाएं। सभी गांव आपसी सम्पर्क मार्ग से जोड़े जाएं। सरकार एवं मिलों को चाहिए कि गन्ने की एक स्थायी मूल्य नीति घोषित कर, चीनी की वितरण व्यवस्था को भी लाईसेंस प्रणाली से मुक्त किया जाए।

अतः किसानों की समस्याओं को देखते हुए देश के नीति निर्माताओं, सरकार एवं मिल मालिकों को समस्याओं का कोई न कोई हल तलाशना होगा। चीनी मिलों की मजबूरी को भी समझना होगा, साथ ही किसानों की समस्याओं को भी सुना जाए। उनका भुगतान समय पर सुनिश्चित किया जाए, इसके लिए संयुक्त प्रयास की आवश्यकता है। किसानों के लिए पारदर्शी एवं दीर्घकालीन नीति बनायी जाए। गन्ने का मूल्य निर्धारित एवं घोषित करने से पहले चीनी की मूल्य एवं उत्पादन लागत को भी ध्यान में रखा जाए। तभी चीनी मिलें अपनी क्षमताओं का पूर्ण उपयोग कर किसानों का भला कर सकेंगी। किसानों एवं गांव की खुशहाली के लिए मूल्य निर्धारण एवं समस्याओं के समाधान हेतु किसानो की सहभागिता भी सुनिश्चित की जाए और उन्हें अपनी बात/प्रस्ताव कहने का भी अवसर दिया जाए, तभी हम किसानों एवं चीनी मिलों के हितों की रक्षा करने में हिस्सेदारी कर सकेंगे और हमारा देश, गांव एवं किसान भी खुशहाल हो सकेगा।

(लेखक साहू जैन कालेज नजीबाबाद, उ.प्र. में वाणिज्य संकाय के रीडर हैं।)

सदस्यता कूपन

मैं/हम **कुरुक्षेत्र** का नियमित ग्राहक बनना चाहता हूं/चाहती हूं/चाहते हैं।

शुल्क : एक वर्ष के लिए 100 रुपये, दो वर्ष के लिए 180 रुपये, तीन वर्ष के लिए 250 रुपये का (जो लागू नहीं होता, उसे कृपया काट दें)

डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर क्रमांक .... दिनांक .... संलग्न है।

कृपया ध्यान रखें, आपका डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर *निदेशक, प्रकाशन विभाग* को नई दिल्ली में देय हो।

नाम (स्पष्ट अक्षरों में) ....

पता ....

.... पिन ....

इस कूपन को काटिए और शुल्क सहित इस पते पर भेजिए :

विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक

प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, तल–7, रामकृष्णपुरम,

नई दिल्ली–110 066

कृषि विकास में लघु सिंचाई संसाधनों का महत्व

डॉ. रहीस सिंह

21वीं सदी के इस दौर में, जब से बाजार ने अपना आकार फैलाना शुरू किया है तब से यह पूर्वाग्रह विकसित हो गया है कि बाजार और उसके तंत्र में आर्थिक विकास के समस्त आयाम निहित हैं। जबकि वास्तविकता यह है कि कृषि अब तक सतत् रूप से भारत में मैक्रोइकोनॉमिक संव्यवहार के लिए एक महत्वपूर्ण चालक बना हुआ है और अर्थव्यवस्था के प्रक्षेपण कृषि की स्थायी और धारणीय उन्नति पर आधारित हैं। इसे देखने के लिए 11वीं पंचवर्षीय योजना (2007–12) पर नजर डाली जा सकती है जिसके दृष्टिकोण पत्र में आयोग ने यह अनुमान लगाया है कि अर्थव्यवस्था की विकास दर 8.5 रहेगी। लेकिन इसके लिए सबसे बड़ी चुनौती कृषि विकास की धीमी दर है और जब तक इसे 1.5 प्रतिशत की दर से बढ़ाकर 4 प्रतिशत के आसपास नहीं पहुंचाया जाता तब तक आर्थिक विकास की वांछित दर को पाना शायद मुश्किल होगा। हाल–फिलहाल तो ऐसा नहीं लगता कि कृषि अवसंरचना इतनी सक्षम है कि 4 प्रतिशत की विकास दर की सीमा तक पहुंच सके। योजना आयोग स्वयं इस बात को स्वीकार कर रहा है कि कृषि जीडीपी को 4 प्रतिशत के आसपास पहुंचाने के लिए द्वितीय हरित क्रांति की तत्काल आवश्यकता होगी।

योजना आयोग ने 11वीं पंचवर्षीय योजना में जिस प्रकार का ढांचा निर्मित किया है उस पर एक नजर डालने से कृषि की अहमियत स्वयं पता चल जाएगी। सकल घरेलू उत्पाद का क्षेत्रीय/घटकीय विभाजन तालिका–1 में दर्शाया गया है।

तालिका–1 का परिदृश्य बताता है कि 8 से 9 प्रतिशत की विकास दर प्राप्त करने के लिए 3 से 4 प्रतिशत की कृषि विकास की मांग अनिवार्य है। इसके साथ ही सेवा क्षेत्र विकास दर 8 से 10 प्रतिशत, उद्योग की 10 प्रतिशत से अधिक, विनिर्माण क्षेत्र, जो कि उद्योग का सहसमुच्चय है, की लगभग 13 प्रतिशत विकास दर होनी चाहिए। अर्थव्यवस्था की वर्तमान प्रगति को देखते हुए उद्योग और सेवा क्षेत्र की लक्षित विकास दर तो स्वीकार्य है लेकिन कृषि क्षेत्र के वर्तमान रुझानों को देखते हुए कृषि जीडीपी की विकास दर बहुत अधिक है। यदि इस दर को प्राप्त करने का संभव प्रयास कर लिया जाए तो भी लक्षित कृषि विकास दर प्राप्त नहीं कर सकती। जाहिर है कि यदि कृषि की लक्षित दर प्राप्त नहीं हो पाती है तो सकल घरेलू उत्पाद की समग्र वृद्धि को बनाए रखने के लिए गैर कृषि क्षेत्रों में उच्च लक्ष्य निर्धारित कर उन्हें प्राप्त करना होगा? यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि कृषि विकास की महत्ता केवल इसलिए नहीं है कि वह पर्याप्त मात्रा में खाद्यान्न आपूर्ति करती है बल्कि इसलिए भी आवश्यक है कि यह गैर कृषि उत्पादों की मांग में भी वृद्धि को प्रेरित करती है जिससे रोजगारों को बढ़ने का अवसर मिलता है। योजना आयोग ने कृषि की लक्षित विकास दर प्राप्त न होने पर एक अन्य प्रक्षेपण तालिका– 2 में प्रदर्शित किया है।

तालिका–2 इस बात का संकेत करती है यदि कृषि क्षेत्र पुराने रुझानों पर टिका रहता है तो उद्योग और निर्यात क्षेत्र में खासी वृद्धि करनी होगी। लेकिन वर्तमान समय में इतना तीव्र विकास संभव दिखायी नहीं देता। इसलिए भारत सरकार और योजना आयोग के लिए यह अनिवार्य है कि वह कृषि क्षेत्र का विकास करे। कृषि विकास में इस समय सबसे बड़ी रुकावट सिंचाई से वंचना है। भारत ही नहीं दुनिया भर में कृषि विकास के समक्ष यही सबसे बड़ी बाधा है। पूरी दुनिया में पानी का सर्वाधिक उपयोग सिंचाई के रूप में ही होता है। अर्थात कुल उपयोग का लगभग 80 प्रतिशत पानी

तालिका–1 आर्थिक विकास संरचना का परिदृश्य

क्षेत्र/घटक	विकास दर (प्रतिशत में)		
सकल घरेलू उत्पाद	7.0	8.0	9.0
कृषि	3.2	3.7	4.1
उद्योग	8.2	9.4	10.5
सेवा	7.6	8.8	9.9
आयात	10.9	11.7	12.5
निर्यात	14.2	15.5	16.4

तालिका–2

क्षेत्र/घटक	विकास दर (प्रतिशत में)		
सकल घरेलू उत्पाद	7.0	8.0	9.0
कृषि	2.0	2.0	2.0
उद्योग	8.6	9.9	11.2
सेवा	8.1	9.3	10.5
आयात	11.8	13.9	15.3
निर्यात	19.6	23.0	25.9

का इस्तेमाल सिंचाई में ही होता हैं जबकि भारत में उपलब्ध जल संसाधनों का 85 प्रतिशत सिंचाई के काम आता है।

भारत में औसत वर्षा 1170 मिलीमीटर होती है और भौगोलिक दृष्टि से देखें तो इस तरह 33 लाख के इलाके में 4000 क्यूबिक किलोमीटर क्षेत्र को वर्षा जल मिल जाता है। इस पानी का 50 प्रतिशत वाष्प बनकर उड़ जाता है या अंतः स्रावित हो जाता है या फिर समुद्रों में चला जाता है और केवल 1953 बीसीएम पानी ही बच पाता है। इस बचे हुए पानी में से 1086 बीसीएम पानी का इस्तेमाल हो पाता है। दूसरी तरफ सामान्य तौर पर प्रति व्यक्ति पानी की वार्षिक उपलब्धता 1700 केबीएम होनी चाहिए लेकिन अनुमान किया जाता है जो इस समय तो पर्याप्त मानी जा सकती है लेकिन 2015 तक यह घटकर 1456 सीयूएम रह जाएगी। एक और बात यह है कि भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया हाल के वर्षों में काफी तेज हुई है और यह शहरीकरण जैसे–जैसे विस्तार लेता जाएगा, संगत अनुपात में पानी की मांग भी बढ़ेगी। पहले ही जल विवाद बढ़ रहे हैं और पानी की कमी के समय सिंचाई का पानी शहरी क्षेत्रों की पेयजल की जरूरतें पूरी करने के लिए दिया जा रहा है। दिन–ब–दिन जनसंख्या की वृद्धि और उसकी पानी की जरूरतें बढ़ने के मद्देनजर मांग और पूर्ति का अन्तराल भी लगातार बढ़ रहा है। इसलिए सिंचाई क्षेत्र हमेशा ही दबाव की स्थिति में रहेगा। इसलिए सिंचाई क्षेत्र के जल प्रबंधन के तरीकों में सुधार लाना होगा और साथ ही पानी की फिजूलखर्ची भी रोकनी होगी ताकि वह कमी वाले क्षेत्रों की मांग पूरी करता रहे। ध्यान रहे कि भारत में सिंचित क्षेत्र, कुल बुवाई क्षेत्र का 34 प्रतिशत मात्र है। भारत का सकल सिंचित क्षेत्र 8 करोड़ हेक्टेयर है और इस दृष्टि से दुनिया का सर्वाधिक सिंचित कृषि क्षेत्र वाला देश माना जाता है। इससे सम्बंधित विवरण को तालिका–3 में देखा जा सकता है –

यह तालिका दर्शाती है कि सृजित क्षमता कुल सिंचाई संभाव्यता का केवल 64 प्रतिशत है। यही नहीं इसमें कुछ अन्य भी जटिलताएं हैं। सामान्य तौर पर देखा गया है कि सरकार सिंचाई क्षेत्र में अपने निवेश का एक बड़ा हिस्सा (कुल का 57 प्रतिशत) वृहत और मध्यम सिंचाई योजनाओं में लगाती है। लेकिन इन सुविधाओं का उपभोग केवल 35 प्रतिशत के द्वारा ही कर लिया जाता है जबकि शेष भाग प्यासा ही रह जाता है। हालांकि केवल निवेश ही एकमात्र कारण नहीं है बल्कि अन्य कारण और समस्याएं भी हैं जिनके चलते सिंचाई प्रभावित होती है। पहली बात संरचना और दक्षतागत है अर्थात देश के कुल बांधों में से 60 प्रतिशत से अधिक बांधों की उम्र दो दशक से अधिक की हो चुकी है अतः इनके पुनरुद्धार और पुनः पूर्ति की जरूरत है। जबकि इस ओर अपेक्षित प्रयास नहीं हो पा रहे हैं। यह लम्बे समय में पूर्ण होने वाली योजनाएं हैं जो अक्सर एक योजना से दूसरी योजना तक खिसक जाती हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है यदि इस क्षेत्र में प्रगति कर भी ली जाए तो भी अंतिम छोर (नहर के अंतिम छोर पर) पर बसा हुआ किसान इनका उपभोग करने से वंचित रह जाता है। इसलिए जरूरी है लघु सिंचाई परियोजनाओं पर खास जोर दिया जाए। ऐसे में ग्रामीण किसानों की पानी की कमी को पूरा करने में भूमिगत जल की भूमिका बेहद अहम हो जाती है। जिसमें पिछले दो दशकों से लगातार वृद्धि जारी है अर्थात यह हिस्सा निवल सिंचित क्षेत्र में लगभग 84 प्रतिशत हो गया है। भारत की 5.26 करोड़ हेक्टेयर भूमि पर लघु सिंचाई का प्रयोग होता है। उल्लेखनीय है कि 2000–01 में की गयी लघु सिंचाई गणना में 586 गांवों के 63 लाख किसानों को शामिल किया गया था जहां कुल 1.97 करोड़ हेक्टेयर भूमि पर सिंचाई हुई थी। इसमें से 18.5 करोड़ भूमिगत जल की योजनाएं थीं जबकि 12 लाख हेक्टेयर भूतल जल परियोजनाएं थीं। 18.5 करोड़ भूमिगत जल योजनाओं से 3.37 हेक्टेयर प्रति योजना के 6.24 करोड़ हेक्टेयर सिंचाई क्षमता का निर्माण हुआ, जबकि 12 लाख भूतल जल योजनाओं में से 9.9 हेक्टेयर प्रति योजना 1.19 करोड़ हेक्टेयर सिंचाई क्षमता का निर्माण हुआ।

सिंचाई की दृष्टि से अधिक से अधिक जल दोहन की जरूरत है, जिसे पूरा किया जाना आवश्यक है अन्यथा यह भी संभव है कि फिर से खाद्यान्न संकट का सामना करना पड़ जाए। लेकिन यह बेहतर विकल्प का पर्याय नहीं है क्योंकि इसमें बहुत सी विसंगतियां हैं जिनके दीर्घकालिक (नकारात्मक) प्रभाव हो सकते हैं। प्रथम–भारत में बहुत से क्षेत्र ऐसे हैं जहां पथरीली, चट्टानी ज़मीन है और जहां जलोढ़ मैदानी इलाकों के मुकाबले भूमिगत जल दोहन की संभाव्यता कम है। चूंकि भूमिगत जल मुख्यतः आबादी की मांग और घनत्व के हिसाब से निकाला जाता है, न कि संसाधनों की गुणवत्ता और क्षमता के हिसाब से। इसलिए जल संसाधनों के लगातार ह्रास का खतरा बना हुआ है। चूंकि जल का प्रयोग केवल सिंचाई तक ही नहीं होता है बल्कि यह पीने तथा अन्य क्षेत्रों में भी (देखिए तालिका–4 में) काम आता है। इसलिए यदि नीतिगत उपाय नहीं अपनाए जाते हैं तो पूरी मानवता के समक्ष एक दिन संकट खड़ा हो जाएगा। लेकिन देखने को यह मिल रहा है कि भूमिगत जल नियंत्रण हेतु कोई नीति–नियामक नहीं है।

तालिका – 3 भारत में सिंचित क्षेत्र का विवरण

प्रकार	उपयोग (करोड़ हेक्टेयर)	क्षमता (करोड़ हेक्टेयर)	अधिकतम (करोड हेक्टेयर)
वृहत व मध्यम	2.80	3.27	5.85
लघु : भूमिगत जल	4.25	4.57	6.41
लघु : भूतल जल	1.01	1.09	1.74
कुल		8.06	8.93 14.00

1974 में केन्द्र सरकार ने भूमिगत जल अधिनियम लागू किया था परन्तु इसे किसी भी राज्य ने नहीं अपनाया।

कृषि पर निर्भर 70 प्रतिशत से अधिक ग्रामीण जनता की खरीद क्षमता को हर साल मानसून नियंत्रित किया करता था। अभी भी जब राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में कृषि का योगदान 20 प्रतिशत रह गया है, 60 करोड़ से अधिक लोग अपनी जीविका के लिए कृषि पर निर्भर हैं। तब क्या इस 60 करोड़ से भी अधिक आबादी को पूरे विकासशील देश और उसकी सरकार द्वारा पूरी तरह से नियति के रहमोकरम पर छोड़ देना चाहिए? नहीं, बल्कि सिंचाई का आधारभूत ढांचा, जिसमें मानसून की अस्थिरता से किसानों की सुरक्षा करने और उन्हें अपनी छोटी–छोटी भू–जोतों से अधिक आय कमाने के लिए सक्षम बनाने के उपायों की नितांत आवश्यकता है। इसके लिए जरूरी है कि किसानों को स्वावलंबी बनाने हेतु ग्रामीण बुनियादी ढांचा विकसित हो, जिनमें ऊर्जा और सिंचाई को वरीयता दी जाए। अब तक के बहुत से अध्ययन सिंचाई लाभों को सिद्ध कर चुके हैं। खाद्यान्न सुरक्षा की पहले से बेहतर स्थिति सिंचित क्षेत्रों में कृषि आय में वृद्धि तथा हरित क्रांति की सफलता आदि का सीधा संबंध उन फसलों के लिए समय पर जल मिल जाने से है जो केवल वर्षा पर निर्भर नहीं हैं। इन प्रत्यक्ष लाभों के अलावा,

खेती में पानी की ज्यादा जरूरत

तालिका – 4 जल की मांग (करोड़ घन मीटर)

क्षेत्र	वर्ष 2010	वर्ष 2025	वर्ष 2050
सिंचाई	68,800	91,000	1,07,200
पेय(पशुओं सहित)	5,600	7,300	10,200
उद्योग	1,200	2,300	6,300
ऊर्जा	500	1,500	13,000
अन्य (मत्स्यपालन, वानिकी,पर्यटन, नौवहन आदि)	5,200	7,200	8,000
कुल	81,300	1,09,300	1,44,700

स्रोत : केन्द्रीय जल आयोग

उत्पादन से पूर्व और पश्चात के बहुत से अप्रत्यक्ष लाभ भी हैं। ग्रामीण और क्षेत्रीय दोनों ही स्तरों पर हुए अध्ययन इन अप्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष लाभों को दर्शाते हैं।

एक बात और यह है कि 35 प्रतिशत सिंचित क्षेत्र 60 प्रतिशत से अधिक खाद्यान्न सुरक्षा मुहैया कराता है। अध्ययन दर्शाते हैं कि गांवों के स्तर पर सिंचाई सुविधा मिल जाने से अधिक तथा स्थायी किस्म का रोजगार मिलता है और मुख्यतः गरीब इसका लाभ उठाते हैं।

सामान्य तौर पर यह मान लिया जाता है कि अधिकाधिक निवेश से ही सारी समस्याओं का समाधान हो जाएगा। लेकिन यही पूरा सच नहीं है। मूल समस्या गुणवत्ता और उपलब्धता की है। दरअसल भारत में भूतल जल सिंचाई की कहानी कुछ बिल्ड–नेगलेक्ट–रिबिल्ड की रही है। इसलिए अधिक निवेश करने से स्थितियों में आंशिक सुधार तो हो सकता है पर सर्वतोमुखी सुधार नहीं। मूल समस्या है गुणवत्ता की कमी जिसके कारण राज्यों में एक दुष्चक्र निर्मित हो गया है जो अभी तक जारी है। अर्थात–बुनियादी ढांचे की न्यून गुणवत्ता, जिसके कारण निवेशों में कमी। निवेशों में कमी होने से उपलब्ध सुविधाएं आधी अधूरी रहती हैं जिससे सरकार सेवा प्राप्तकर्ताओं (किसानों) से निर्धारित राजस्व या सिंचाई कर वसूल नहीं कर पाती हैं जिसका परिणाम पुनः निवेशों में कमी के रूप में सामने आता है। इस तरह से यह दुष्चक्र चलता रहता है जिसे तोड़ना अब जरूरी हो गया है।

बहरहाल एक आंकलन (योजना आयोग) के अनुसार इस समय 80 मिलियन हेक्टेयर को उपचार की तत्काल आवश्यकता है और प्रति हेक्टेयर औसतन 10,000 रुपये की जरूरत है। इसका मतलब यह हुआ कि 80,000 करोड़ रुपये के कुल फंड की जरूरत है। हालांकि 11वीं पंचवर्षीय योजना में 11 मिलियन हेक्टेयर नया क्षेत्र विकसित करने का लक्ष्य है जिसमें 5.5 मिलियन वृहत और मध्य सिंचाई, 3.5 मिलियन हेक्टेयर लघु सिंचाई और लगभग 2.0 मिलियन हेक्टेयर ग्राउंड वॉटर डेवलपमेंट के रूप में विकसित किया जाएगा। इसके अतिरिक्त 3 से 4 मिलियन हेक्टेयर भूमि को वृहत, मध्यम और लघु योजना और तालाब के पुनर्स्थापना द्वारा पुनर्स्थापित किया जाएगा।

(लेखक वैदेशिक एवं आर्थिक मामलों के विशेषज्ञ हैं।)

भारत सरकार की पहल

आज़ादी नई राहों से जुड़ने की

गाँव-गाँव को जोड़ रही हैं पक्की सड़कें

प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना से हो रहा है भारत का निर्माण

► दो सालों में 16,039 गाँव सड़कों से जुड़े ► 39,475 कि.मी. नई सड़कों का निर्माण ► 68,109 कि.मी. ग्रामीण सड़कों की बेहतरी

भारत निर्माण
चलें नयी आज़ादी की ओर

भारत निर्माण | राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम | सर्व शिक्षा अभियान | राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन

davp 22201/13/0108/0708

KH-02/08/03

जनजातीय विकास में तेजी

पिछले साल के दौरान (2007) जनजातीय कल्याण और विकास पर पूरा ध्यान दिया गया। जनजातियों को विकास की मुख्यधारा में लाने के लिए असंख्य पहलें की गईं। इसमें उच्च अध्ययन और कोचिंग के लिए जनजातीय युवकों के वास्ते नई छात्रवृत्ति योजना, जनजातीय गांवों और आश्रम स्कूलों के विकास के लिए और धन तथा जमीनों पर जनजातियों और वनवासियों के अधिकारों के लिए कानून बनाना शामिल है।

जनजातीय कल्याण के लिए धन का शत प्रतिशत इस्तेमाल– जनजातीय विकास परियोजनाओं की लगातार निगरानी और उच्च प्राथमिकता के परिणामस्वरूप जनजातीय मंत्रालय को विभिन्न कार्यक्रमों के लिए आबंटित धनराशि का लगभग शत प्रतिशत इस्तेमाल संभव हो सका। मार्च 2007 तक 1652.68 करोड़ रुपए के समीक्षित बजट आबंटन में से 1648.14 करोड़ रुपए का इस्तेमाल किया जा चुका था। फरवरी में आयोजित राज्य के मंत्रियों की बैठक में मंत्रालय ने कार्यक्रमों और योजनाओं का आगे जायजा लिया। बैठक में राज्य स्तर पर चलने वाली जनजातीय परियोजनाओं को आबंटित धनराशि के उपयोग और क्रियान्वयन की निगरानी करने के लिए क्रियाविधि तय की गई। मंत्रालय ने सी.आई.आई और अन्य संगठनों के साथ बैठक की ताकि उन क्षेत्रों की निशानदेही की जा सके जहां इन संगठनों की क्षमता को जनजातियों के कल्याण के लिए चलने वाली योजनाओं के सफल क्रियान्वयन के लिए इस्तेमाल किया जा सके।

वनाधिकार विधेयक का अधिनियमन– जमीनों पर जनजातियों और अन्य वनवासियों के अधिकार से संबंधित अनूसूचित जनजातीय और अन्य वनवासी अधिनियम 2006 के अधिनियम के बाद मंत्रालय ने अधिनियम के प्रावधानों के क्रियान्वयन के वास्ते नियम बनाए। इसके लिए गठित तकनीकी समर्थन समूह में प्रतिष्ठित विशेषज्ञों को रखा गया है। समूह का गठन मार्च में किया गया और इसकी बैठक हैदराबाद, पुणे, रांची, शिलांग और नई दिल्ली में हुई जिसमें अन्य राज्यों के विचारों के बारे में चर्चा की गई। इन बैठकों के बाद, सभी संबंधितों से विचार मांगने के उपरांत नियमों के मसौदे को 19 जून को अधिसूचित किया गया। जल्द ही अधिनियम लागू हो जाएगा और नियमों को अधिसूचित किया जाएगा ताकि जनजातियों के साथ होने वाले अन्याय को समाप्त किया जा सके।

जनजातीय क्षेत्रों में संरचनात्मक विकास– गरीबी की रेखा के नीचे रहने वाली जनजातीय आबादी के लिए चलने वाली विशेष समर्थन योजनाओं के वास्ते मंत्रालय ने राज्यों को शत प्रतिशत सहायता धनराशि दी। इन धनराशियों को 70 प्रतिशत स्वसहायता समूहों को दिया गया जिसके तहत समुदाय आधारित रोजगार और आय सृजन क्षेत्रों जैसे, कृषि, बागवानी, पशुपालन और अन्य संरचनात्मक ढांचागत विकास संभव हो सके। मंत्रालय ने 17 राज्यों के अति प्राचीन जनजातीय समूहों (पीटीजी) के दीर्घकालिक योजनाओं को सुधारने और उसकी समीक्षा का काम शुरू किया। इस संदर्भ में दो अगस्त को एक बहु–विषयक निर्बाधन समिति की बैठक हुई। समिति ने पीटीजी आबादी वाले राज्यों और अंडमान व निकोबार द्वीपसमूह के लिए संरक्षण व विकास योजनाओं को तैयार करने का निर्णय किया।

अनुसूचित जनजाति छात्रों के लिए नई छात्रवृतियां– मंत्रालय ने नई केन्द्रीय छात्रवृत्ति योजना शुरू की जो उच्च अध्ययन के लिए होगी और जिसके तहत जनजातीय छात्रों को ट्यूशन फीस के लिए दो लाख रुपए दिए जाएंगे। यह अन्य खर्चों की वापसी के अलावा होगा। यह योजना इस साल जून में शुरू हुई। इस योजना के तहत मेधावी जनजातीय छात्रों को स्नातक स्तर की शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रबंधन, चिकित्सा, इंजीनियरिंग, आदि के 127 संस्थानों को चिन्हित किया गया है। जो पांच छात्र मेधावी छात्रों की सूची में सबसे ऊपर होंगे उन्हें ट्यूशन फीस और अन्य खर्चों के लिए दो लाख रुपए प्रतिवर्ष दिए जाएंगे और 3.72 लाख रुपए वाणिज्यिक पायलट प्रशिक्षण के लिए दिए जाएंगे। इसके अलावा छात्रवृत्ति के तहत (1) 2200 रुपये प्रति माह रहने के लिए (2) 3000 रुपए प्रति वर्ष किताबों और स्टेशनरी के लिए, (3) 45000 रुपए एकबारगी कम्प्यूटर और अन्य सामानों के लिए देय होगा। प्रतिवर्ष जनजातीय छात्रों को 635 छात्रवृत्तियां दी जाएंगी।

वन्य ग्रामों का विकास– वर्तमान वित्तीय वर्ष के दौरान मंत्रालय ने वन्य ग्रामों के विकास के लिए 150 रुपए का प्रावधान किया और चार अप्रैल 2007 तक 46.46 करोड़ रुपए जारी किए। इन जनजातीय गांवों में विकास की गति तेज करते के लिए कई योजनाओं को शुरू किया गया है। इनमें सुरक्षित प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, गांवों तक जाने वाली सड़कें और सिंचाई सुविधाएं शामिल हैं।

जनजातीय स्कूलों को और सहायता– जनजातीय छात्रों को बेहतर स्कूली शिक्षा प्रदान करने के लिए सरकार ने वित्तीय सहायता 30 लाख रुपए से बढ़ाकर 72.50 लाख रुपए कर दी है ताकि अनुसूचित जाति के लड़कों व लड़कियों वाले एकलव्य मॉडल रिहायशी स्कूल के खर्चे पूरे हो सकें। साल के दौरान देश भर के ऐसे 100 रिहायती स्कूलों को सहायता प्रदान की गई।

(पसूका)

पौष्टिक तत्वों से भरपूर आलू

(अन्तर्राष्ट्रीय आलू वर्ष 2008 पर विशेष)

डॉ. जितेन्द्र सिंह

संयुक्त राष्ट्र संघ ने वर्ष 2008 को अन्तर्राष्ट्रीय आलू वर्ष के रूप में मनाने की घोषणा की है। इसकी घोषणा संयुक्त राष्ट्र संघ की साधारण सभा ने 18 अक्टूबर, 2007 को एक प्रेस कान्फ्रेंस में की। इसका प्रस्ताव संयुक्त राष्ट्र संघ की प्रमुख संस्था खाद्य एवं कृषि संगठन, रोम ने किया था, जिसको साधारण सभा ने वर्ष 2005 में स्वीकार किया था। काफी दिनों के विचार विमर्श के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ ने वर्ष 2008 को अन्तर्राष्ट्रीय आलू वर्ष के रूप में मनाने की घोषणा की। इसके द्वारा विकासशील देशों में आमजन में आलू को मुख्य खाद्य के रूप में बढ़ावा देने के लिए जागरूकता फैलाई जायेगी।

आज इक्कीसवीं सदी में विश्व में चावल, गेहूं और मक्का के बाद आलू चौथा सर्वाधिक उपभोग किया जाने वाला खाद्य बनकर उभरा है। कृषि वैज्ञानिकों के अनुसार आलू ही भविष्य का ऐसा खाद्य है, जो आने वाले समय में विश्व की बढ़ती हुई आबादी को कुपोषण और भुखमरी से मुक्ति दिला सकता है। यूरोप के देशों में आलू का बड़ी मात्रा में उपभोग और उत्पादन किया जाता है। एशिया एवं अफ्रीका के देशों में यूरोपीय देशों की तुलना में काफी कम आलू का उपभोग और उत्पादन होता है। विकासशील देशों में आलू के प्रति जागरूकता पैदा करने से इन क्षेत्रों में भी आलू के उपभोग और उत्पादन में वृद्धि होने की अपार संभावनाएं मौजूद हैं। आलू के महत्व एवं उपयोगिता को जानने व समझने के लिए इसके कई पहलुओं पर विचार करना होगा।

ऐतिहासिक परिदृश्य : आलू का मूल स्थान अमेरिका माना जाता है। आज से लगभग 2000 वर्ष पूर्व पेरू के लोग आलू की खेती करना प्रारम्भ कर चुके थे। जब कोलम्बस ने सन् 1492 में नई दुनिया की खोज की, तो उन्हें शकरकंद की भांति आलू की फसल दिखाई दी। उस समय वहां की भाषा में इसे 'पापोष' अर्थात कंद कहते थे।

हमारे देश में आलू सत्रहवीं सदी के प्रारम्भ में आया। ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार पुर्तगाली व्यवसायी अपने साथ नई फसल के रूप में आलू को भारत में लाये थे। संस्कृत में अरबी, रतालू आदि कंद वाली फसलों के लिए प्रारम्भ में आलू या आलूक शब्द का प्रयोग किया गया। शायद इसीलिए इस फसल को आलू नाम से सम्बोधित किया गया। आलू का वनस्पतिक नाम सोलेनम ट्यूबोरोसम है। यह सोलनेसी परिवार का सदस्य है। आलू एक प्रकार से तने का परिवर्तित रूप है।

वैश्विक परिदृश्य : विश्व में आलू की खेती लगभग 2 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्रफल में की जाती है। प्रति वर्ष आलू का वैश्विक उत्पादन 31 करोड़ टन के आस–पास होता है। आलू का सर्वाधिक उपभोग यूरोप के देशों में किया जाता है। लेकिन पिछले दशक से विकासशील देशों में भी आलू का उपभोग काफी तेजी से बढ़ा है। फिलहाल, अभी अफ्रीका के देशों में आलू का उपभोग काफी कम है। इन देशों में प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष लगभग 14.18 किग्रा. आलू का उपभोग किया जाता है। जबकि यूरोप में प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष लगभग 16.13 किग्रा. आलू का उपभोग किया जाता है। विश्व में औसत आलू का उपभोग प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष लगभग 33.68 किग्रा. है।

घरेलू परिदृश्य : भारत में आलू की खेती लगभग 1.3 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल से प्रति वर्ष लगभग 23.6 मिलियन टन आलू का उत्पादन किया जाता है। हमारे देश में 90 फीसदी आलू का क्षेत्रफल उत्तर भारत में है, जहां पर आलू की खेती ठंड के मौसम में की जाती है। देश में 1950–51 में आलू की खेती 0.24 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल की जाती

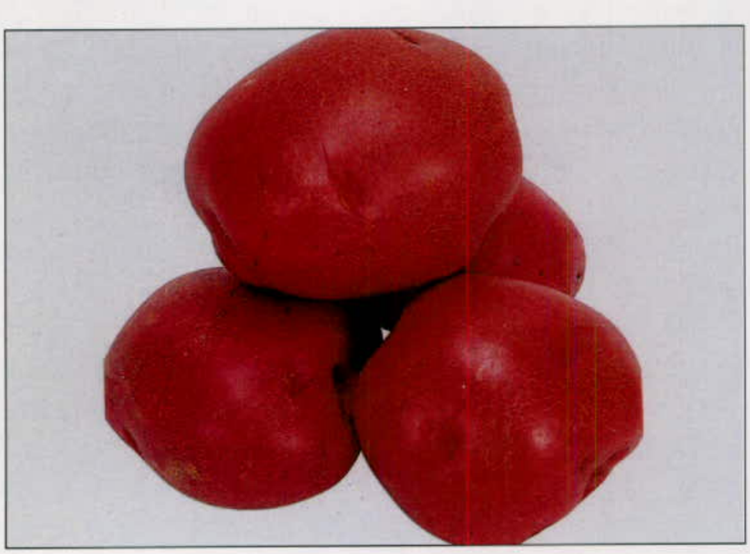

2008 – आलू के ठाठ

तालिका–1 विश्व में क्षेत्रवार आलू की पैदावार

क्रम सं.	क्षेत्र	क्षेत्रफल हैक्टेयर	कुल उत्पादन टन	उपज टन/हैक्टेयर
1.	अफ्रीका	1499687	16420729	10.95
2.	एशिया	9143495	131286181	14.36
3.	यूरोप	7348420	126332492	17.19
4.	लैटिन अमेरिका	951974	15627530	16.42
5.	उत्तरी अमेरिका	608131	24708603	40.63
	विश्व	19551707	314375535	16.08

स्रोत : विश्व खाद्य संगठन,

तालिका– 2 विश्व में क्षेत्रवार आलू का उपभोग

क्रम सं.	क्षेत्र	जनसंख्या	कुल खाद्य	किग्रा/व्यक्ति
1.	अफ्रीका	905937000	12850000	14.18
2.	एशिया	3938469000	101756000	25.83
3.	यूरोप	739276000	71087000	16.95
4.	लैटिन अमेरिका	561344000	13280000	23.65
5.	उत्तरी अमेरिका	330608000	19156000	57.94
	विश्व	6475634000	218129000	33.68

स्रोत : विश्व खाद्य संगठन,

थी, जो आज बढ़कर 1.3 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल हो गयी है। आज देश का कुल आलू उत्पादन 1.66 मिलियन टन से बढ़कर 24 मिलियन टन तक पहुंच गया है। इधर कुछ वर्षों में आलू की उत्पादकता में भी काफी वृद्धि हुई है। 1950–51 में आलू की जो उत्पादकता 69.2 क्विंटल/हेक्टेयर थी, वह आज बढ़कर 189.5 क्विंटल/हेक्टेयर हो गई है। आज हमारे देश का विश्व में आलू उत्पादन में तीसरा एवं क्षेत्रफल की दृष्टिकोण से चौथा स्थान है। देश में आलू का उपभोग प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष लगभग 15 कि.ग्रा. है, जो विश्व के औसत आलू के उपभोग का प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष लगभग 33.68 कि.ग्रा. से काफी कम है।

आलू का महत्व : आलू का उपभोग आज सब्जी के अतिरिक्त अन्य बहुत तरह से किया जाता है। यही कारण है कि आज आलू विश्व में लोगों द्वारा सर्वाधिक उपभोग किया जाने वाला चौथा प्रमुख खाद्य बनकर उभरा है। यदि आलू से जुड़ी कुछ भ्रांतियों को दूर कर दिया जाये एवं आलू के पोषण मूल्य से आमजन को परिचित कराकर जागरुक किया जाए तो आलू को विश्व की मुख्य खाद्य फसल बनने में देर नहीं लगेगी।

आलू प्रति इकाई क्षेत्रफल एवं समय से अन्य सभी फसलों की तुलना में अधिक खाद्य पैदा करने की क्षमता रखता है। कृषि वैज्ञानिकों के अनुसार आलू 47.60 कि.ग्रा./दिन/हेक्टेयर शुष्क पदार्थ पैदा करता है, वहीं पर गेहूं 18 किग्रा. एवं चावल 12.40 कि. ग्रा./दिन/हेक्टेयर शुष्क प्रदार्थ पैदा करता है। आलू 3 कि.ग्रा. /दिन/हेक्टेयर भोज्य प्रोटीन पैदा करता है, वहीं पर गेहूं 2.5 कि.ग्रा. एवं चावल 1 कि.ग्रा./दिन/हेक्टेयर भोज्य प्रोटीन पैदा करता है। आलू, गेहूं से 3.7 गुना और धान से चार गुना अधिक खनिज लवण पैदा करता है। इसके अतिरिक्त आलू कार्बोहाइड्रेट, रेशा, विटामिन आदि प्रति इकाई क्षेत्रफल एवं समय में मुख्य खाद्य की फसलों की तुलना में अधिक पैदा करता है। खाद्यान्न फसलों की अपेक्षा आलू में पोटैशियम, फास्फोरस, लोहा और कैल्शियम आदि तत्व भी अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। जन्तु प्रोटीन, मीट, चिकन, बीफ एवं दूध की तुलना में आलू सर्वोत्तम वनस्पति प्रोटीन का स्रोत है। यदि कोई व्यक्ति 3 किग्रा. प्रतिदिन आलू का सेवन करता है तो उसकी प्रतिदिन की ऊर्जा की पूर्ति हो जाती है।

आलू से जुड़ी कुछ भ्रांतियां – आलू को आमजन का मुख्य खाद्य बनाने के लिए आवश्यक है कि आलू से जुड़ी भ्रांतियों को पहले दूर किया जाये। लोगों के मन में आलू के सेवन को लेकर निम्नलिखित भ्रांतियां फैली हुई हैं–

- लोगों को भ्रम है कि आलू के सेवन से शरीर का मोटापा बढ़ता है, जो कि बिल्कुल असत्य है। क्योंकि आलू में मात्र 0.1 प्रतिशत वसा पाई जाती है। आलू के सेवन से शरीर में जो वसा बढ़ती है, वह आलू की न होकर, आलू को पकाने व तलने में प्रयोग की गई वसा की मात्रा पर निर्भर करती है।
- लोगों को दूसरा बड़ा भ्रम है कि आलू के सेवन से लोग डायबीटीज के रोगी हो जाते हैं। यह भी लोगों की मात्र निर्मूल कल्पना है क्योंकि पश्चिमी देशों में डायबीटीज के रोगियों को वहां के डाक्टर कम कैलोरी वाले खाद्य के रूप में आलू के सेवन की सलाह देते हैं।
- लोगों का मानना है कि आलू में एल्कोलायड/सोलेनिन नामक तत्व पाया जाता है जो शरीर के लिए हानिकारक होता है। यह बिल्कुल सत्य है कि इसमें यह हानिकारक तत्व पाया जाता है, जो शरीर के लिए नुकसानदेह होता है। लेकिन इसके साथ यह भी जानना जरूरी है कि यह हानिकारक तत्व सिर्फ आलू के हरे कंदों में पाया जाता है जिनका सेवन नहीं किया जाता है।
- लोगों को भ्रम है कि खाद्यान्न, मीट, दूध की तुलना में आलू में बहुत कम मात्रा में पोषक तत्व पाये जाते हैं, जो कि सत्य से बिल्कुल परे है। प्रयोगों से सिद्ध हो चुका है कि आलू अन्य उपभोग किए जाने वाले खाद्य से किसी मायने में कमतर नहीं है।

आलू के प्रसंस्कृत उत्पाद : आज विकसित देशों के साथ–साथ विकासशील देशों में भी आलू के प्रसंस्कृत उत्पादों के सेवन का चलन जोरों से बढ़ रहा है। हमारे देश में पिछले एक दशक से

आलू के प्रसंस्कृत उत्पादों का सेवन बहुत अधिक बढ़ा है। आलू से मैगी, चिप्स, भुजिया, बेबी फूड, सूप, सॉस, आलू आटा, ग्रेनूल्स आदि प्रमुख प्रसंस्कृत उत्पाद तैयार किए जाते हैं। आलू के आटे का उपयोग बड़ी मात्रा में बिस्कुट बनाने के प्रयोग में लाया जाता है। इसके अतिरिक्त आलू का बड़ी मात्रा में प्रयोग समोसा, पेटीज और डोसा आदि फास्ट फूड बनाने में किया जाता है। भारत में कुल फल और सब्जी उत्पादन का मात्र 5–6 प्रतिशत प्रसंस्करण किया जाता है। आलू का प्रसंस्करण तो मात्र 1–2 प्रतिशत है। जबकि विकसित देशो में 40–60 प्रतिशत तक आलू का उपभोग प्रसंस्कृत रुप में किया जाता है।

आलू की भरपूर फसल

आलू का निर्यात : विश्व के समस्त आलू उत्पादन का लगभग 8 फीसदी आलू हमारे देश में पैदा होता है। इस प्रकार चीन और रूस के बाद भारत का विश्व में आलू के उत्पादन में तीसरा स्थान है, जिसमें मात्र 0.52 प्रतिशत आलू का निर्यात हमारे देश से किया जाता है। हमारे देश से कुल निर्यात में 50 फीसदी कच्चा आलू, 28 फीसदी फोजन आलू, 10 फीसदी आलू बीज, 8 फीसदी चिप्स एवं 4 फीसदी अन्य तरह से आलू का निर्यात किया जाता है। एक आंकड़े के अनुसार वर्ष 2000–03 के दौरान 1.84 लाख क्विंटल कच्चा आलू, 0.39 लाख क्विंटल आलू बीज एवं 0.72 लाख क्विंटल आलू के प्रसंस्कृत उत्पादों का निर्यात किया गया। श्रीलंका, यूएई, बांग्लादेश, नेपाल, पाकिस्तान, मारीशस, मालद्वीप, सिंगापुर, जापान, मलेशिया, सऊदी अरब आदि आलू के बड़े आयातक देश हैं।

संभावनाएं : आलू की खेती अधिक श्रम चाहने वाली फसल है। इसकी खेती को बढ़ावा देने से कृषि मजदूरों का बड़ी संख्या में रोजगार का सृजन होगा। एक हेक्टेयर क्षेत्रफल पर आलू की खेती के लिए 250 दिन के मानव श्रम की आवश्यकता होती है। यूरोपीय देशों में आलू का उत्पादन गर्मी में किया जाता है। हमारे देश में 85 फीसदी आलू का उत्पादन ठंड के मौसम में किया जाता है। ठंड के मौसम में यूरोपीय देशों में आलू का उत्पादन न होने के कारण भारत बड़ी मात्रा में यूरोपीय देशों को आलू निर्यात कर काफी विदेशी मुद्रा अर्जित कर सकता है। भारत में विविध जलवायु होने के कारण देश के किसी न किसी भाग पर वर्ष भर आलू की खेती की जा सकती है जिससे वर्ष भर ताजे आलू की उपलब्धता बनाए रखी जा सकती है। देशी एवं विदेशी बाजार में आलू के प्रसंस्कृत उत्पादों की बढ़ती मांग को देखते हुए आलू के विभिन्न तरह के प्रसंस्कृत उत्पाद तैयार करने के लिए छोटे एवं बड़े स्तर पर खाद्य प्रसंस्करण की ईकाइयां स्थापित कर लोगों को रोजगार प्रदान किया जा सकता है।

निष्कर्ष : दुनिया की बेतहाशा बढ़ती हुई आबादी को खाद्यान्न के भरोसे लोगों को दो जून का भोजन मुहैया कराना एक चुनौती पूर्ण कार्य है। विशेषकर एशिया और अफ्रीका के देशों में तो सिर्फ खाद्यान्न के भरोसे लोगों को दो जून का भोजन कराना और भी कठिन कार्य है। ऐसे में दुनिया के सामने आलू का अन्य खाद्यान्नों की तरह भोजन में सम्मिलित करने को बढ़ावा देना का एक अच्छा विकल्प नजर आता है। आलू में वे सभी खूबियां मौजूद हैं जिससे आलू को अन्य खाद्यान्नों की तरह भोजन में प्रयोग किया जा सके। शायद, आलू के इन्हीं गुणों के कारण संयुक्त राष्ट्र संघ ने वर्ष 2008 को अन्तर्राष्ट्रीय आलू वर्ष के रूप में मनाने की घोषणा की है।

आलू को समूची दुनिया में आज भी मुख्य रूप से सब्जी एवं फास्ट फूड के रूप में ही प्रयोग में लाया जाता है। यदि अन्तर्राष्ट्रीय आलू वर्ष 2008 आम लोगों में आलू के सेवन को लेकर फैली कुछ भ्रांतियों को तोड़ने में सफल होता है तो इसमें दो राय नहीं कि आने वाले समय में आलू को मुख्य आहार के रूप में न शामिल किया जाये। बहरहाल, आलू को मुख्य खाद्य का दर्जा देने से सर्वाधिक फायदा विकासशील देशों को होगा क्योंकि इन्हीं देशों की सर्वाधिक जनसंख्या कुपोषण और भुखमरी का शिकार है। एक आंकड़े के मुताबिक इन्हीं देशों में आलू का सबसे कम इस्तेमाल होता है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में अन्तर्राष्ट्रीय आलू वर्ष 2008 का निष्कर्ष निकाले तो सर्वाधिक फायदा अपने देश को होगा। कृषि क्षेत्र में

तालिका – 3 अन्य मुख्य खाद्य फसलों की तुलना में आलू का पोषण मूल्य

क्र. सं.	फसल	कार्बोहाइड्रेट ग्राम	रेशा ग्राम	वसा ग्राम	विटामिन सी ग्राम	विटामिन बी ग्राम
1.	आलू	42.5	752	118	32.0	2.5
2.	गेहूं	14.8	249	311	0.00	1.3
3.	चावल	11.2	29	72	0.00	0.3
4.	मक्का	7.1	28.7	383	0.00	0.3
5.	सोयाबीन	2.0	352	1856	0.00	0.5

तालिका – 4 आलू में पाये जाने वाले पोषक तत्वों का रासायनिक विश्लेषण (100 ग्राम खाने योग्य आलू के भाग के आधार पर)

तत्व	मात्रा	तत्व	मात्रा
नमी	7.47 ग्राम	विटामिन सी	17 मि. ग्राम
प्रोटीन	1.6 ग्राम	फास्फोरस	44 मि. ग्राम
वसा	0.1 ग्राम	लोहा	0.7 मि.ग्राम
खनिज पदार्थ	0.6 ग्राम	सोडियम	1.9 मि.ग्राम
रेशा	0.4 ग्राम	पोटैशियम	247 मि.ग्राम
कार्बोहाइड्रेट	22.6 ग्राम	कापर	0.02 मि.ग्राम
कैलोरीज	17 ग्राम	सल्फर	3.0 मि.ग्राम
कैल्शियम	10 ग्राम	थियमिन	10 मि.ग्राम
मैग्नीशियम	20 ग्राम	विटामिन	40 आई.यू.
अक्जैलिक अम्ल	20 ग्राम	क्लोरीन	0.1 मि.ग्राम
निकोटिनिक अम्ल	1.2 ग्राम	राइबोफलेविन	0.01 मि.ग्राम

नई उपलब्धियां और कृषि प्रधान देश होने के बावजूद आज हमारा देश दुनिया का सर्वाधिक दलहन, तिलहन और खाद्यान्न आयातक देश है। आज भी हमारे देश की आबादी का एक बहुत बड़ा हिस्सा कुपोषण का शिकार है जिन्हें दो वक्त का भोजन नहीं मिल पाता है। ऐसे में आलू के उपभोग को अन्य खाद्यान्न की फसलों की तरह बढ़ावा देने से अपने देश को कई फायदें होंगे। पहला यह कि लोगों को धीरे–धीरे कुपोषण और भुखमरी में मुक्ति मिलेगी। दूसरा यह कि आलू को खाद्यान्न की फसलों की तरह इस्तेमाल से खाद्यान्नों से निर्भरता घटेगी। तीसरा यह कि प्रति वर्ष बड़ी मात्रा में किए जाने वाले खाद्यान्नों के आयात में भी कमी आएगी। बहरहाल, संयुक्त राष्ट्र संघ का अन्तर्राष्ट्रीय आलू वर्ष 2008 का मिशन यदि कामयाब होता है तो यूरोप के देशों के साथ–साथ

बहु उपयोगी आलू की विभिन्न किस्में

एशिया और अफ्रीका के देशों में भी आलू का उपभोग बढ़ेगा जिससे कुपोषण और भुखमरी के विरुद्ध लड़ाई कुछ आसान हो जाएगी।

(लेखक उदय प्रताप स्वायत्तशासी महाविद्यालय, वाराणसी में कृषि प्रसार के प्रवक्ता हैं।)
ई–मेल : dr jitendrasingh@sify.com

सर्वशिक्षा अभियान के तहत् 9359 करोड़ रुपये जारी किये गये

सर्व शिक्षा अभियान के तहत् राज्यों और केंद्र शासित क्षेत्रों के लिए 9359 करोड़ रुपये जारी किये गये हैं। इस कार्यक्रम को लागू करने के लिए वर्ष 2007–08 के बजट में 10671 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया था। सर्व शिक्षा अभियान में और तेज़ी लाने के लिए वर्ष 2007–08 में 2300 करोड़ रुपये की अनुपूरक अनुदान राशि दी गई थी।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में सर्व शिक्षा अभियान के वास्ते पहले दो वर्ष अर्थात् वर्ष 2007–08 एवं 2008–09 के लिए केंद्र 65 फीसदी और राज्य 35 फीसदी का हिस्सा देगा। तीसरे वर्ष के वास्ते यानी वर्ष 2009–10 के लिए यह हिस्सेदारी क्रमशः 60 फीसदी और 40 फीसदी होगी। चौथे वर्ष 2010–11 के बाद यह अनुपात क्रमशः 55 और 45 फीसदी का होगा तथा उसके बाद यानी 2011–12 के बाद यह अनुपात आधा–आधा होगा। पूर्वोत्तर राज्यों में सर्व शिक्षा अभियान के लिए केन्द्र का 90 फीसदी और राज्यों का 10 फीसदी का अनुपात होगा। इसमें पूर्वोत्तर राज्यों में सर्व शिक्षा अभियान केंद्रीय बजट में आवंटित 10 प्रतिशत कोष केन्द्र के हिस्से के अनुदान में शामिल होगा। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में सर्व शिक्षा अभियान के वास्ते 71,000 करोड़ रुपये मंजूर किये गये हैं। (पसूका)

आम आदमी बीमा योजना

मोहन कुमार मिश्र

बदलते युग के साथ मान्यताएं भी बदलती हैं और प्रतिमान भी बदल जाते हैं। अस्तु, आज जीवन–बीमा रोटी, कपड़ा और मकान के संग मनुष्य की 'चौथी मौलिक आवश्यकता' बन गयी है। भारतीय जीवन बीमा निगम (एलआईसी) ने अपनी स्थापना काल से ही इस तथ्य को भलिभांति समझा है। दरअसल इसकी स्थापना का एक प्रमुख उद्देश्य बीमा के सुरक्षा दायरे में अधिक से अधिक लोगों को विशेष कर ग्रामीण क्षेत्र के सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े लोगों को लाना है। अपने इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए एलआईसी ने समूह बीमा के जरिये सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र को विस्तारित करने की नयी रणनीति बनायी, ताकि सर्वसाधारण को जीवन बीमा का लाभ मिल सके।

समाज के कमजोर वर्ग के लोगों के लिए समूह बीमा के तहत प्रीमियम सब्सिडी का लाभ सुनिश्चित कराने के लिए सन 1988 में 'सामाजिक सुरक्षा कोष' की स्थापना की गयी। इसमें केन्द्र सरकार और एलआईसी ने अंशदान किया।

भारत सरकार ने एलआईसी पर भरोसा करते हुए इसके जरिये ही लोगों को आर्थिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए समय–समय पर भिन्न–भिन्न योजनाएं चलायी। इसको हम तालिका–1 से समझ सकते हैं। इसमें दर्शाई गई विभिन्न योजनाओं के तहत वर्ष 2003–2004 से वर्ष 2006–07 की उपलब्धियां तालिका–2 से स्पष्ट है।

सामाजिक सुरक्षा के तहत समूह योजना में समाविष्ट जीवन विभिन्न व्यवसायों पर आधारित हैं, जो तालिका–3 से स्पष्ट है।

केन्द्रीय वित्त मंत्री श्री पी. चिदंबरम ने वर्ष 2007–2008 के अपने बजट भाषण में असंगठित क्षेत्र के कामगारों को

तालिका – 1

योजनाएं	आरंभ होने की तिथि	समाप्त होने की तिथि
लालजी बीमा योजना	15.08.1987	14.08.2000
ग्रामीण समूह बीमा योजना	15.08.1995	01.04.2000
सामाजिक सुरक्षा समूह योजना	1988	10.08.2000
स्वर्णजयंती ग्राम स्वरोजगार योजना	01.04.1988	जारी
कृषि श्रमिक सामाजिक सुरक्षा योजना	01.07.2001	दिसम्बर 2003
जनश्री बीमा योजना	10.08.2000	जारी
बुनकरों के लिए बीमा योजना	01.07.2003	जारी
खादी कारीगर जनश्री बीमा योजना	15.08.2003	जारी
हस्तकला कारीगरों के लिए बीमा योजना	जुलाई 2003	जारी
बुनकर बीमा योजना	मार्च 2004	02.10.2005
महात्मा गांधी बुनकर बीमा योजना	02.10.2005	जारी
आंगनवाडी कार्यकत्री जनश्री बीमा योजना	01.04.2004	जारी
अनुसूचित जनजातियों के लिए बीमा योजना	2004	जारी
शिक्षा सहयोग योजना	31.12.2001	जारी
आम आदमी बीमा योजना	02.10.2007	जारी

तालिका–2 समूह बीमा के तहत नव व्यवसाय

वर्ष	योजनाओं की संख्या	सदस्यों की संख्या (लाख में)	बीमा धन/प्रति वर्ष वार्षिकी (रु. करोड़ में)
समूह बीमा (सामाजिक सुरक्षासहित			
2006–2007	20,434	140.38	152864.62
2005–2006	18,033	113.97	1,77,317.32
2004–2005	18,189	81.00	1,17,662.56
2003–2004	15,797	44.48	1,28,047.85
समूह सेवा निवृत्ति			
2005–2006	127	0.71	91.10
2004–2005	231	0.43	82.50
2003–2004	344	1.722	14.90

(स्रोत– एलआईसी पेंशन एवं समूह बीमा विभाग,केंद्रीय कार्यालय, मुंबई)

तालिका–3

सामाजिक सुरक्षा समूह योजना के अंतर्गत व्यवसाय के अनुसार समाविष्ट जीवनों की संख्या का विवरण

क्र. सं	व्यवसाय	वर्ष 2006–07 के दौरान नये जीवनों की संख्या (नई तथा वर्तमान योजनाओं के अंतर्गत)	31.03.2007 को समाविष्ट कुल जीवनों की संख्या
1	बीड़ी मजदूर	3157	345298
2.	ईट भट्टी के मजदूर	0	0
3.	बढ़ई	44	101
4.	मोची	38	83
5.	मछुआर	17683	41981
6.	कुली	9487	25643
7.	हस्तशिल्प कारीगर	85447	116345
8.	हथकरघा बुनकर	128723	404811
9.	हथकरघा एवं खादी	25311	28607
10.	स्त्री दर्जी	99	240
11.	चर्म उद्योग कामगर	0	0
12.	'सेवा' से संबद्ध पापड़ मजदूर	36	36
13.	शारीरिक अपंग स्व रोजगारी व्यक्ति	0	1331
14.	प्राथमिक दुग्ध उत्पादक	185228	807827
15.	रिक्शा चालक, ऑटोरिक्शा चालक	130608	132252
16.	सफाई कर्मचारी	1355	5125
17.	नमक उत्पादक	0	514
18.	तेंदू पत्ता संग्राहक	0	9338979
19.	शहरी गरीब के लिए योजना	3287981	3661242
20.	जंगल मजदूर	1644	33487
21.	रेशम उत्पादन मजदूर	0	0
22.	ताड़ी निकालने वाले	3201	8050
23.	बिजली करधद कर्मचारी	27255	69417
24.	दुर्गम ग्रामीण पर्वतीय क्षेत्र की महिलाएं	0	0
25.	खाण्डसरी/शक्कर जैसे खाद्य पदार्थ	0	0
26.	वस्त्र	42013	42013
27.	लकड़ी उत्पाद	0	131
28.	कागज उत्पाद	0	0
29.	चर्म उत्पाद	0	0
30.	छपाई	0	0
31.	रबड़ एवं कोयला उत्पाद	0	0
32.	मोमबत्ती उत्पाद	0	0
33.	खिलौने निर्माण	0	0
34.	कृषक	44501	94360
35.	परिवहन चालक	128	234
36.	परिवहन कर्मचारी	56	920
37.	ग्रामीण गरीब	751112	1168745
38.	निर्माण कामगार	2370	2866
39.	पटाखा कामगार	0	0
40.	नारियल प्रक्रिया करने वाले	3	36
41.	आंगनवाड़ी शिक्षक/सहायक	193112	495633
42.	वोतवाल	2345	13498
43.	प्लॉटेशन मजदूर	241622	241622
44.	स्वसहयोग समूह से जुड़ी महिलाऐं	532147	532232
	कुल भारत में	**5716706**	**17577659**

सामाजिक सुरक्षा प्रदान कराने के प्रति अपनी सरकार की प्रतिबद्धता दुहरायी थी। इसी के अनुसार उन्होंने 2 अक्टूबर को शिमला में 'आम आदमी बीमा योजना' की शुरूआत की। 'आम आदमी बीमा योजना' ग्रामीण क्षेत्र के भूमिहीन परिवारों के लिए निःशुल्क बीमा योजना है, जिसे सरकार (केन्द्र सरकार, राज्य सरकार एवं केन्द्र शासित प्रदेश सरकार) भारतीय जीवन बीमा निगम के साथ मिलकर चलाएगी।

इस योजना का लाभ प्रत्येक ग्रामीण भूमिहीन परिवार के एक ऐसे व्यक्ति को मिलेगा जिसकी उम्र 18से 59 के बीच हो। यह व्यक्ति परिवार का मुखिया अथवा रोजगार करने वाला हो सकता है। इनका चयन राज्य सरकार/केन्द्र शासित प्रदेश सरकार अपनी पंचायतों से मिल कर करेंगी। इस प्रकार राज्य सरकार/केन्द्र शासित प्रदेश सरकार चुने हुए सदस्यों की ओर से नोडल एजेंसी का कार्य करेंगी। प्रत्येक

सदस्य को भारतीय जीवन बीमा निगम द्वारा एक परिचय पत्र दिया जाएगा। प्रत्येक सदस्य के लिए रु. 200/– का वार्षिक प्रीमियम देय होगा जिसमें से रु. 100/– केन्द्र सरकार द्वारा बनाए गए आर्थिक कोष से तथा शेष रु. 100/– का अंशदान सम्बद्ध राज्य सरकार/केन्द्र शासित प्रदेश सरकार द्वारा किया जाएगा।

इस योजना की एक बड़ी विशेषता यह है कि इसमें शामिल होने या फिर दावा भुगतान के लिए प्रपत्र एकदम आसान है।

दावा भुगतान के लिए मृतक के लाभार्थी को मृत्यु प्रमाण पत्र एवं एलआईसी द्वारा प्रदत्त परिचय पत्र नोडल एजेन्सी के पास जमा करना पड़ता है जिसे नोडल एजेन्सी एलआईसी के निकटतम पेंशन एवं समूह बीमा (पी.एण्ड जी.एस.) इकाई के पास प्रेषित करेगी जहां से वास्तविक लाभार्थी के नाम 'अकाउन्ट पेयी' चेक आ जाएगा। हां, यदि दुर्घटना में मृत्यु हुई हो, तो पोस्टमार्टम रिपोर्ट एवं पुलिस जांच रिपोर्ट भी जमा करनी पड़ेगी। बीमा अवधि में मृत्यु अथवा दुर्घटना से मृत्यु /अपंगता की स्थिति में मिलने वाले लाभ को तालिका–4 द्वारा दर्शाया जा सकता है–

तालिका–4

क	मृत्यु होने पर	रु. 30,000/–
ख	दुर्घटना में मृत्यु होने पर	रु. 75,000/–
ग	दुर्घटना में स्थायी पूर्ण अपंगता होने पर	रु. 75,000/–
घ	दुर्घटना में एक आंख, एक हाथ, या एक पैर असक्षम होने पर	रु. 37,500/–

इस योजना के तहत बीमित व्यक्ति के दो 9वीं से 12वीं कक्षा तक के बच्चे को रु. 100/– प्रतिमाह की शिक्षावृत्ति दी जाएगी, जो पहली जनवरी एवं पहली जुलाई को देय होगी।

(लेखक भारतीय जीवन बीमा निगम 'योगक्षेम' मुंबई में कार्यरत हैं।)
ई–मेल : mohanmishra@licindiacom.

वरिष्ठ नागरिकों के लिए आयकर में छूट

किसी अन्य पुरुष करदाता के मामले में 1,10,000/– रुपये एवं किसी अन्य महिला करदाता के मामले में 1,45,000/– रुपये की सामान्य सीमा की तुलना में वरिष्ठ नागरिकों की आय पर 1,95,000/– रुपये (ब्याज आय सहित) की सीमा तक कर छूट प्राप्त है। (पसूका)

हमारे आगामी अंक

मार्च 2008 अंक ग्रामीण महिला सशक्तिकरण व महिलाओं से संबंधित विषय पर केंद्रित है ।

अप्रैल 2008 अंक वार्षिक बजट (वर्ष 2008–09) व आर्थिक नीतियों पर केंद्रित है।

मई 2008 अंक पर्यटन पर केंद्रित है।

इसके अतिरिक्त ग्रामीण विकास, कृषि व स्वास्थ्य से संबंधित लेख भी इनमें शामिल किए जाएंगे। उपरोक्त विषयों पर सारगर्भित लेख (आम बोलचाल की भाषा में) व फोटो हमें भेजे जा सकते हैं। पत्रिका के प्रकाशन की तिथि आगामी माह से एक माह पूर्व होती है। अतः प्रकाशन सामग्री एक माह पूर्व हमें मिल जानी चाहिए।

प्रकाशन विभाग के विक्रय केंद्र : दिल्ली सूचना भवन, सीजीओ, काम्प्लैक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली–110003, हॉल न. 196, पुराना सचिवालय, दिल्ली– 110054; **मुंबई** 701 बी विंग, 7वीं मंजिल, केंद्रीय सदन बेलापुर, नवी मुंबई– 400614; **कोलकाता** 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कोलकाता–700069; **चेन्नई** 'ए' बिंग, राजाजी भवन, बेसेंट नगर, चेन्नई– 600090; **तिरुअनंतपुरम** प्रेस रोड, निकट गवर्मेंट प्रेस, तिरुअनंतपुरम – 695001; **हैदराबाद** ब्लॉक नं. 4 प्रथम तल, गृहकल्प काम्प्लैक्स, एम.जी. रोड, नामपल्ली, हैदराबाद–500001; **बंगलौर** प्रथम तल, एफ विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला, बंगलौर –560034; **पटना** बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना–800004; **लखनऊ** हाल नं.1, द्वितीय तल, केंद्रीय भवन, सैक्टर एच, अलीगंज, लखनऊ–226024; **अहमदाबाद** अम्बिका काम्प्लैक्स, प्रथम तल, पालदी, अहमदाबाद– 380007; **गुवाहाटी** हाउस नं. 07, चेनीकुथी , न्यू कालोनी, के.के.बी. रोड, गुवाहाटी – 781003.

DSIR

TePP

TIFAC

Ministry of Science and Technology

Technopreneur Promotion Programme (TePP)

Call for Proposals

TePP is the programme to extend financial support to independent innovators for converting their innovative ideas into working prototypes/models. Over 7000 raw ideas have been accessed, 1500 proposals evaluated and 200 supported. TePP now invites proposals on the following:

PROGRAMME	ELIGIBILITY
TePP Phase I :	
1. Technopreneurship Support(TS)	Any independent innovator
2. TePP Project Fund (TPF)	Any independent innovator

Interested? Contact:

The Head
Technopreneur Promotion Programme (TePP)
Ministry of Science & Technology
Department of Scientific & Industrial Research (DSIR)
Technology Bhawan, New Mehrauli Road
NEW DELHI 110 016
FAX : 011-2696 0629 **E-mail**: asrao@nic.in

Important:

1. *TePP is a common programme of DSIR and TIFAC (DST).*
2. Proposals of grass root innovators and school children are supported under NIF and not TePP.
3. Faculty research and student projects are not supported under TePP, but faculty start-ups and student entrepreneurs are eligible provided they possess technology commercialization rights.
4. dot.com start-ups are not supported under TePP but start-ups with innovative delivery models of S&T to rural beneficiaries are eligible for support.
5. Innovators are advised to protect their intellectual property rights by submitting provisional application before revealing details in application, essential for evaluation. For approved projects, subsequent patenting costs including international patenting in two countries are eligible for support.
6. *The **application blank** appropriate to the category may be downloaded from DSIR Website: http://www.dsir.gov.in.*
7. You may send an advance copy of the proposal by e-mail to asrao@nic.in
8. Innovators are encouraged to submit proposals through the TePP Outreach Centers. Their addresses and contact details are given on the web page. All outreach centers provide counseling and mentoring, some provide incubation facilities too. There will be no counseling sessions in DSIR/TIFAC.
9. Canvassing in any form is liable for summarily rejection of the application.
10. The decision of the Ministry will be final. ***No correspondence shall be entertained on the proposals rejected.***

We share your dreams

आर. एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : डी.एल. (एस)-05/3164/2006-08
आई.एस.एस.एन. 0971-8451, पूर्व भुगतान के बिना आर.एम.एस.
दिल्ली में डाक में डालने के लिए लाइसेंस : यू (डी.एन.)-55/2006-08

R.N./708/57
P&T Regd. No. DL (S)-05/3164/2006-08
ISSN 0971-8451, Licenced under U (DN)-55/2006-08
to Post without pre -payment at R.M.S. Delhi.

प्रकाशक और मुद्रक : वीना जैन, अपर महानिदेशक (प्रभारी), प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्पलेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली-110003.
मुद्रक : अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स प्रा. लि., डब्ल्यू-30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया-II, नई दिल्ली-110 020 : संपादक : कैलाश चन्द मीना

ग्रामीण विकास
को समर्पित

कुरुक्षेत्र

वार्षिक मूल्य : 100 रुपये

वर्ष 54 अंक : 5 | मार्च 2008 | मूल्य : 10 रुपये

ग्रामीण महिला सशक्तिकरण

रोज़गार समाचार
साप्ताहिक

क्या आप सरकारी/सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रम/कर्मचारी चयन आयोग/संघ लोक सेवा आयोग/ रेलवे भर्ती बोर्ड/सशत्र सेनाओं/बैंकों में रोज़गार तलाश रहें हैं ?

रोज़गार समाचार आपका श्रेष्ठ मार्गदर्शक है। यह विगत तीस वर्षों से नौकरियों के लिए सबसे अधिक बिकने वाला साप्ताहिक है। आप भी इसके सहभागी बनें।

आपका हमारी वेबसाइट :
employmentnews.gov.in
पर स्वागत है, जो कि

- नवीनतम प्रौद्योगिकी से विकसित है।
- उन्नत किस्म के सर्च इंजिन से युक्त है।
- आपके प्रश्नों का विशेषज्ञों द्वारा शीघ्र समाधान करती है।

रोज़गार समाचार/एम्प्लाएमेंट न्यूज की प्रति के लिए निकटतम वितरक से संपर्क करें।

व्यापार संबंधी पूछताछ के लिए संपर्क करें :

रोज़गार समाचार, पूर्वी खण्ड 4, तल 5, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली।
फोन : 26182079, 26107405, ई-मेल : enabm sa@yahoo.com

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

Cir./EN-SP-3/08

KH-03/08/02

वर्ष : 54 ★ मासिक अंक ★ पृष्ठ : 48
फाल्गुन – चैत्र 1929, मार्च 2008
वरिष्ठ सम्पादक
कैलाश चन्द मीना
सम्पादक
ममता रानी
संपादकीय पत्र–व्यवहार
वरिष्ठ संपादक, कुरुक्षेत्र
कमरा नं. 655 'ए' विंग,
गेट नं. 5, निर्माण भवन
ग्रामीण विकास मंत्रालय
नई दिल्ली–110011
दूरभाष : 23061014, 23061952
फैक्स : 011–23061014, तार : ग्राम विकास
वेबसाइट : Publicationsdivision.nic.in
ई–मेल : kuru.hindi@gmail.com
संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
एन.सी. मजुमदार
व्यापार प्रबंधक
जगदीश प्रसाद
दूरभाष : 26105590, फैक्स : 26175516
ई–मेल : pdjucir_jcm@yahoo.co.in
आवरण एवं सज्जा
संजीव सिंह और अशोक जोशी

मूल्य एक प्रति	:	10 रुपये
वार्षिक शुल्क	:	100 रुपये
द्विवार्षिक	:	180 रुपये
त्रिवार्षिक	:	250 रुपये

विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)

पड़ोसी देशों में	:	530 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में	:	730 रुपये (वार्षिक)

कुरुक्षेत्र

इस अंक में

★ महिला सशक्तिकरण में शिक्षा का महत्व	प्रतापमल देवपुरा	4
★ महिलाओं की स्थिति पर वैश्वीकरण का प्रभाव	डॉ. अंजलि गुप्ता	7
★ कृषि कार्यों में महिलाओं की भूमिका	ममता भारती	11
★ ग्रामीण महिलाओं का स्वरोजगार : रेशम उद्योग	सत्यभान सारस्वत	13
★ आर्थिक विकास में महिलाओं का योगदान	एस.एल. बैरवा	16
★ ग्रामीण विकास और महिला रोजगार	सुदीप कुमावत	19
★ पशुधन: ग्रामीण गरीबों का अपना एटीएम	संदीप कुमार	23
★ ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में कृषि	गिरीश चन्द्र पांडे	26
★ सरकारी किसान क्रेडिट कार्ड – उपयोगिता व प्रगति	प्रो. संदीपसिंह मुंडे एवं डॉ. रजनी वशिष्ठ	30
★ कृषि विकास में विपणन और भाण्डागार	जयश्री जैन	33
★ भारत में भूमि सुधार कार्यक्रम का एक मूल्यांकन	डॉ. रमेश कुमार सिंह	37
★ पौष्टिक हरे चारे की उपज कैसे बढ़ाएं	डॉ. अंशु राहल	41
★ विटामिन–सी से भरपूर अमरूद	डॉ. राकेश कुमार प्रजापति एवं डॉ. श्यौराज सिंह	45

कुरुक्षेत्र की एजेंसी लेने, ग्राहक बनने और अंक न मिलने की शिकायत के बारे में व्यापार प्रबंधक, (वितरण एवं विज्ञापन) प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066 से पत्र–व्यवहार करें। विज्ञापनों के लिए सहायक विज्ञापन प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066 से संपर्क करें। दूरभाष : 26105590, फैक्स : 26175516

कुरुक्षेत्र में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

संपादकीय

भारतीय समाज में नारी का स्थान पूजनीय रहा है। समाज तथा सभ्यता के विकास में महिलाओं का योगदान सर्वोपरि रहा है कभी वह बेटी बनकर परिवार की शोभा बढ़ाती है तो बहन बनकर भाइयों से दुलार करती है, वहीं मां बनकर संतान का लालन–पालन करती है। बड़ी होने पर भी उसका सम्मान कम नहीं होता और वह दादी–नानी बनकर गौरवमय जीवन जीती है। भारत ही नहीं संपूर्ण विश्व में स्त्री का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। जहां भी स्त्री के सम्मान को चोट पहुंची है वहां विकास नहीं विनाश हुआ है।

हमारे देश में 70 प्रतिशत लोग गांवों में बसते हैं। गांवों के विकास तथा प्रगति में महिलाओं के सबल हाथ इसके प्रतीक हैं। चाहे परिवार हो, खेत खलिहान का काम हो, सबमें महिलाएं कंधे से कंधा मिलाकर काम कर रही हैं। अधिकांश ग्रामीण महिलाएं पुरुषों से अधिक काम करती हैं। सुबह उठकर चक्की चलाती हैं, मवेशियों का दूध निकालती हैं, गोबर उठाकर साफ–सफाई करती हैं, बच्चों को स्कूल भेजती हैं, खेतों में खाना पहुंचाती हैं तथा पशुओं के लिए चारा लेकर आती हैं। इतना कठिन परिश्रम करने के बाद भी उनके चेहरे पर मुस्कान झलकती रहती है।

भारतीय प्रजातंत्र में ग्रामीण महिलाओं की भूमिका दिनोंदिन सशक्त होती जा रही है। लोकसभा, विधानसभा और ग्राम पंचायतों के चुनावों में मतदान का सबसे ज्यादा प्रतिशत महिलाओं का होता है या यह कहें कि सरकार बनाने में सबसे बड़ा योगदान ग्रामीण महिलाओं का ही है। ग्राम सभा से लेकर संसद तक में ग्रामीण महिलाओं का अनुपात बढ़ता ही जा रहा है। इस भागीदारी को बढ़ाने के लिए महिला आरक्षण विधेयक को पारित करने पर विचार किया जाना चाहिए ताकि ग्रामीण महिलाएं प्रशासन, राजनीति तथा न्यायपालिका में अपनी सक्षम सेवाएं देकर भारत को समृद्ध बनाने में अपना अधिक योगदान दे सकें।

ग्रामीण महिलाओं को आगे बढ़ाने के लिए सरकार को ऐसी योजनाएं बनानी चाहिए जिनका लाभ इन महिलाओं को मिल सके। इसके लिए अच्छी स्वास्थ्य सेवाएं, पौष्टिक खाना, शिक्षा की बेहतर व्यवस्था और शोषण को रोकने के लिए सख्त कानून की आवश्यकता है। बाल विवाह, दहेज प्रथा और कन्या भ्रूण हत्या जैसे जघन्य अपराधों को रोकने के लिए सरकार को अपने प्रयास तेज करने होंगे। सरकार व समाज के मिले–जुले प्रयासों से ही महिलाओं का विकास संभव है।

हमारा यह अंक ग्रामीण महिला सशक्तिकरण पर केंद्रित है। इसमें महिलाओं से संबंधित योजनाओं, कुटीर उद्योगों व महिला शिक्षा पर आधारित लेख शामिल किए गए हैं। इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य व कृषि से संबंधित जानकारीपूर्ण लेख भी दिए गए हैं। आपकी प्रतिक्रियाओं का हमें इंतजार रहेगा।

मत सम्मत

जनवरी 08 का सम्पादकीय विशेष रूप से पसन्द आया। पर्यावरण पर प्रदूषण किस प्रकार भारी पड़ रहा है इसका विश्लेषण अच्छा है। आपके कथन 'पर्यावरण पर बढ़ता खतरा हमारी वर्तमान जीवन शैली का परिणाम है" से पूर्णतः सहमत हूं। पर्यावरण की अनदेखी करना एक बड़ी भूल है। हमें समय रहते चेतना होगा अन्यथा निकट भविष्य में पृथ्वी से मानव का ही नही, वरन सभी जीव–जन्तुओं का अस्तित्व नष्ट हो जायेगा।

आशीष कुमार पटेल, सिविल लाइन्स, उन्नाव

जनवरी 08 माह की पत्रिका में लेखक डॉ. नीरज कुमार राय द्वारा लिखे आलेख "गहराता पर्यावरण संकट" तथा राहुल धर द्विवेदी जी द्वारा लिखे आलेख "मानव विकास की कीमत देता पर्यावरण" में जिस प्रकार से पर्यावरण सम्बधी संकट को समझाया है वह वास्तव में देश के लिए आंख खोलने तथा सचेत होने का संकेत है। डॉ. एल. के इदनामी जी ने भी अपने आलेख "पर्यावरण संरक्षण आज की जरूरत" के माध्यम से आज की युवापीढ़ी, को समझाने का कार्य किया है। "आलेख उत्तराखण्ड में भूस्खलन संवेदनशीलता" भी काबिलेतारिफ है।

सुजीत कुमार, भागलपुर (बिहार)

कुरुक्षेत्र हिन्दी का मैं नियमित पाठक हूं। कुरुक्षेत्र पत्रिका को पढ़ने के कारण मुझे कई सारी प्रतियोगी परीक्षाओं में सफलता मिली है एवं ग्राम विकास के लिए समप्रित कई संस्थानों के बारे में जानकारी प्राप्त हुई है। मेरा विचार है कि इस पत्रिका को राज्य सरकारें जनप्रतिनिधियों जैसे निर्वाचित मुखिया, सरपंच, वार्ड सदस्या, प्रमुख, जिला परिषद अध्यक्ष को मुहैया कराएं ताकि इसे अध्ययन कर वे अपने कार्य में निपुणता लाए जिससे ग्राम विकास का कार्य तेजी से हो सके।

श्री शिवशंकर मिश्र, जिला– जहानाबाद (बिहार)

कुरूक्षेत्र, जनवरी 2008 'वृक्ष लगाओ–पर्यावरण बचाओ' अंक बहुत ही उपयोगी है। हमारी संस्कृति अरण्य (वन) संस्कृति कही जाती है। जैसे– जैसे वनों का नाश होगा भारतीय संस्कृति नष्ट होती जाएगी। एकशव दाह के लिए कम से कम 250 किलो मोटी लकड़ी चाहिए जो वृक्ष काट कर प्राप्त की जाती है। यदि अंतिम संस्कार की सारी क्रियाएं गैस या विद्युत शक्ति संचालित हों तो वृक्षों की कटाई रुकवाकर पर्यावरण को बचाया जा सकता है।

ठाकुर सोहन सिंह भदौरिया, बीकानेर–राजस्थान

जनवरी 2008 का अंक मुझे बेहद पसन्द आया। इसमें दिए गए सारे आलेख ज्ञानवर्द्धक हैं खासकर ओजोन परत का बढ़ता क्षरण, ग्लोबल वार्मिंग का धरती पर प्रभाव, लघु एवं सीमान्त कृषक तथा ग्रामीण विकास, थारू जनजाति, एक सांस्कृतिक पहचान, इस पत्रिका के बारे में मेरा विचार है कि कुरूक्षेत्र को देश में सभी जनप्रतिनिधियों को सरकार मुहैया कराये जिससे उन्हें विकास के बारे में जानकारियां मिल सकें तथा वे अपना कार्य प्रभावी तरीके से कर सकें।

प्रवीण कु.पाठक, ग्राम पो. करपी, अखल, बिहार

मैंने जनवरी 2008 के अंक का गहन अध्ययन किया। वास्तव में प्रदूषण एक भयावह समस्या है। आज पूरे विश्व में इस पर ध्यान दिया जा रहा है, चाहे बात जल प्रदूषण की हो या वायु प्रदूषण की। इन सभी प्रदूषणों से केवल मानव जीवन ही नहीं बल्कि पशु–पक्षी तथा वृक्षों पर भी भयावह प्रभाव पड़ता जा रहा है। कुरुक्षेत्र में स्वास्थ्य संबंधी लेख बहुत ही ज्ञानवर्द्धक होते हैं।

अजय कुमार शर्मा, गिरिडीह (झारखण्ड)

'वृक्ष लगाओ पर्यावरण बचाओ' के तहत संपादकीय ने दिल को छू लिया। वाकई प्रकृति ने हमारे देश में शुद्ध जल, वायु और हरी–भरी धरती दी है हमने उसे भौतिक सुख–साधनों की प्राप्ति के लिए अनेक–कल–कारखाने लगाकर प्रदूषित कर दिया है। वन संरक्षण के प्रति न केवल उदासीन हो गए बल्कि उनकी अंधाधुंध कटाई करके अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार रहे हैं। पौष्टिक तत्वों से भरपूर रोग निवारक अंगूर की जानकारी बहुत पसंद आई।

आखिद मजीद इराकी, जहानाबाद, (बिहार)

जनवरी 2008 का अंक प्राप्त हुआ पर्यावरण से सम्बन्धित होने के कारण यह अंक दिल को भा गया। वास्तव में वर्तमान में अगर देखा जाए तो पर्यावरण से जुड़ी समस्याएं ही दुनिया की सबसे अहम् समस्या है, अगर तुरन्त इस पर वैश्विक स्तर पर समाधान नहीं किया जायेगा तो विश्व को इसके भयानक परिणाम भुगतने होंगे। पर्यावरण की रक्षा के लिए अब क्रान्ति होनी चाहिए।

अरविन्द कुमार मौर्य, खोजवां बाजार, वाराणसी, उ.प्र.

मैं कुरूक्षेत्र की नियमित पठिका हूं। जनवरी 2008 अंक में पर्यावरण के समग्र आयामों को प्रकाशित किया गया। ग्लोबल वार्मिंग व इलेक्ट्रानिक वेव के विकिरण के कारण होने वाले पर्यावरणीय परिवर्तनों के कारण गौरैया जैसी चिड़िया भी आज हमसे दूर होती जा रही है। हमें पर्यावरण के बारे में सोचना होगा।

अंकिता मिश्रा, भोपाल–(म. प्र.)

मासिक कुरूक्षेत्र भी बहुत खूब,
दिन–प्रतिदिन निखरता जा रहा रंग–रूप।
देती है यह ज्ञान व सूचना की धूप,
मिटा देती है, अंधकार का विद्रूप।
सम्पादकीय का आखिर क्या कहना।
देखता हूं जब स्वास्थ्य पर लेख की दुनियां।
मानवाधिकार है जीवन का आधार,
सूचनाधिकार है भ्रष्टाचार पर प्रहार।
कुल मिलाकर उत्कृष्ट हैं सब लेख,
बेसब्री से प्रतीक्षारत रहती है कुरुक्षेत्र।

लखन रविदास,ग्राम पैसरा, जिला हजारीबाग, झारखंड

महिला सशक्तिकरण में शिक्षा का महत्व

प्रतापमल देवपुरा

महिला सशक्तिकरण की बात उठते ही यह चिन्तन आरम्भ होता है कि क्या वास्तव में महिलाएं कमजोर हैं जो उनके सशक्तिकरण की आवश्यकता है। प्रकृति ने तो महिलाओं को शारीरिक रूप में पुरुषों की तुलना में ज्यादा प्रतिरोधक क्षमता प्रदान करके सृष्टि को जन्म देने जैसा मजबूत कार्य सौंप रखा है। परन्तु आज वैश्वीकरण के इस युग में परिस्थितियां अधिक बदल चुकी हैं। स्त्रियों ने अनेक मौकों पर अपनी शक्ति सम्पन्नता का अहसास कराया है। आज का समाज यह समझ चुका है कि विकास के कार्य में स्त्री की सहभागिता के बिना वांछित लाभ प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है।

संतान को जन्म देने व उनका पालन–पोषण करने, अपने अस्तित्व की रक्षा करने जैसे कुछ कारणों ने उसे पुरुषों पर निर्भर बना दिया। परिणामस्वरूप साधनों पर पुरुषों का अधिकार हो गया और महिला पिछड़ गई। घर बाहर के ज्यादातर मामलों में निर्णय पुरुषों द्वारा लिये जाते हैं और प्रायः दोहरे मापदण्ड अपनाये जाते हैं। उनकी शक्ति पर संदेह करके उन्हें ऐसे अवसरों से वंचित किया जाता है जिसमें कि वे अपनी क्षमता का पूर्ण प्रदर्शन कर सकती हैं। आंकड़े भी पुरुषों की तुलना में उन्हें पीछे बताते हैं। इसलिए संतुलन को बनाए रखने के लिए महिला "सशक्तिकरण" आवश्यक हो गया है। महिलाओं में व्याप्त अशिक्षा अधिकारों के प्रति उदासीनता, आर्थिक निर्भरता, तकनीकी अज्ञानता, स्वास्थ्य के प्रति उदासीनता, सामाजिक कुरीतियां एवं पुरुषों का महिलाओं पर प्रभुत्व आदि समस्याओं को दूर करना आवश्यक है। महिला सशक्तिकरण द्वारा समाज में नारी की अस्मिता के विकास में आने वाले अवरोधों के खिलाफ एक सामाजिक चेतना को जागृत करना है।

महिला सशक्तिकरण का उद्देश्य

महिला सशक्तिकरण का तात्पर्य है सामाजिक सुविधाओं की उपलब्धता, राजनैतिक और आर्थिक नीति निर्धारण में भागीदारी,समान कार्य के लिए समान वेतन, कानून के तहत सुरक्षा एवं प्रजनन अधिकारों आदि को इसमें सम्मिलित किया जाता है। सशक्तिकरण का अर्थ किसी कार्य को करने या रोकने की क्षमता से है, जिसमें महिलाओं को जागरुक करके उन्हें आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षिक और स्वास्थ्य संबंधित साधनों को उपलब्ध कराया जाये। ताकि उनके लिए सामाजिक न्याय और पुरुष–महिला समानता का लक्ष्य हासिल हो सके। सशक्तिकरण का अभिप्राय सत्ता प्रतिष्ठानों में स्त्रियों की साझेदारी से भी है क्योंकि निर्णय लेने की क्षमता सशक्तिकरण का एक बड़ा मानक है। महिला सशक्तिकरण का आशय नारी के अपने अधिकार, सम्मान एवं योग्यता में संवर्धन की ओर अग्रसर करना हैं। महिलाओं को घर और बाहर दोनों में सुरक्षित करना है जिससे उन्हें जागरुक कर शक्तिशाली बनाया जा सके। महिला सशक्तिकरण की राष्ट्रीय नीति का उद्देश्य महिलाओं की प्रगति, विकास एवं आत्मशक्ति को सुनिश्चित करना है।

महिला सशक्तिकरण की प्रक्रिया

पढ़ाई लिखाई समय की मांग

स्त्रियों का सामाजिक, राजनैतिक और सार्वजनिक जीवन में प्रतिनिधित्व, दक्षता में अभिवृद्धि, सामाजिक सुरक्षा की प्राप्ति को हासिल करके उन्हें सशक्त बनाया जा सकता है। स्त्रियों का सशक्तिकरण उन्हें क्षितिज दिखाने का प्रयास है जिसमें वे नई क्षमताओं को प्राप्त कर स्वयं को नये तरीके से देखेंगी, घरेलू शक्ति संबंधों का बेहतर समायोजन करेंगी और घर एवं पर्यावरण में स्वायत्तता की अनुभूति करेंगी। लैंगिक असमानता, दहेज,सामाजिक मान्यता एवं समुचित शिक्षा, स्वास्थ्य आदि कुछ पहलुओं की दिशा में प्रयास करके ही महिला सशक्तिकरण किया जा सकता है। सशक्तिकरण की गतिविधियों के द्वारा नारी समाज के नव जागरण

और कल्याण की ठोस शुरूआत की जानी है। महिला सबलीकरण आधुनिक जीवन में सामाजिक न्याय की जड़ों को मजबूत करता है। समाज के रवैये में बुनियादी परिवर्तन लाकर महिलाओं के विवेक, सामर्थ्य एवं योग्यताओं को मिलने वाली चुनौतियों के बीच उन्हें प्रोत्साहित करना है। अपनी क्षमताओं को पहचान कर और उन्हें काम में लाकर व्यवहार में परिणित करना जिससे वे समाज के उत्थान में योगदान कर सकती हैं। महिलाओं का सशक्तिकरण एक लगातार चलने वाली गतिशील प्रक्रिया है, इसका मूल उद्देश्य यह है कि हाशिये के लोगों को मुख्यधारा में लाया जा सके और सत्ता–संरचना में भागीदार बनाया जा सके।

शिक्षा के बिना महिला सशक्तिकरण नामुमकिन

महिला शिक्षा की आवश्यकता

शिक्षा सामाजिक सशक्तिकरण के लिए पहला और मूलभूत साधन है। अब यह माना जाने लगा है कि शिक्षा ही वह उपकरण है जिससे महिला समाज में अपनी सशक्त, समान व उपयोगी भूमिका दर्ज करा सकती है। शिक्षा व्यक्ति के व्यक्तित्व व बुद्धि का विकास कर उसे आर्थिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक कार्यों को सम्पन्न करने के योग्य बनाती है। शिक्षा के आधार पर व्यक्ति में दक्षता, कौशल, ज्ञान एवं क्षमताओं का विकास होता हैं। शिक्षित महिला न केवल स्वयं लाभान्वित होती है बल्कि उससे भावी पीढ़ी भी लाभान्वित होती है। शिक्षा किसी भी प्रकार के कौशल की प्राप्ति एवं विवेकपूर्ण दृष्टिकोण के विकास के लिए पूर्णतया आवश्यक है। नारी की शिक्षा से उसका शोषण रोकने में मदद मिलेगी। निर्णय लेने की क्षमता सशक्तिकरण का एक बड़ा मानक है। शिक्षा का निर्णय लेने की क्षमता से घनात्मक एवं सार्थक संबंध है। शिक्षा द्वारा स्त्रियों के विभिन्न विषयों जैसे राजनीति, धर्म, समाज, आर्थिक एवं स्वास्थ्य पक्षों में आने वाले परिवर्तनों के बारे में जानकारियां प्राप्त करना आवश्यक है। न्यून शैक्षिक स्तर का सीधा प्रभाव है इस मानव पूंजी (महिला) का निम्न स्तरीय विकास, कुशलता का निम्न स्तर तथा श्रम बाजार में न्यून भागीदारी। महिलाओं की वास्तविक स्थिति से व्यक्ति, परिवार, समाज एवं राष्ट्र की सामाजिक, आर्थिक स्थिति प्रभावित होती है।

महिला शिक्षा की स्थिति

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त वर्ष 1951 में महिलाओं में साक्षरता दर 8.86 प्रतिशत थी जो सन् 2001 में बढ़कर 54.16 प्रतिशत हो गई है। आज भी देश में लगभग 30 करोड़ लोग निरक्षर हैं और उनमें अधिकतर महिलाएं हैं। सरकार द्वारा महिला शिक्षा और साक्षरता बढ़ाने के प्रयास से महिलाओं की साक्षरता 1981 में 29.75 प्रतिशत, 1991 में 39.29 प्रतिशत एवं 2001 में 54.16 प्रतिशत हो गई। फिर भी अभी तक 45.84 प्रतिशत महिलाएं साक्षर नहीं हैं। स्कूल छोड़ने वाले विद्यार्थियों में भी बालिकाओं की संख्या अधिक है। प्राइमरी स्तर पर ही लगभग 42 प्रतिशत बालिकाएं स्कूल छोड़ देती हैं। इतनी बड़ी संख्या में स्कूल छोड़ देने का सीधा परिणाम होता है, माध्यमिक व उच्च शैक्षणिक स्तर तक बहुत कम बालिकाओं का पहुंच पाना। विश्व भर में प्राथमिक शिक्षा से वंचित बच्चों का साठ फीसदी भाग लड़कियों का है। भारत में स्कूल जाने वाली आयु की 3 करोड़ बालिकाएं पढ़ने नहीं जा रही हैं। बिहार, उत्तर प्रदेश व राजस्थान ऐसे राज्य हैं जहां एक ओर लड़कियों की नामांकन दर कम है, वहीं दूसरी ओर उनके स्कूल छोड़ने की दर भी अधिक है। सभी शैक्षिक स्तरों पर बालिकाओं की नामांकन दर में यद्यपि क्रमशः वृद्धि हुई है परन्तु तुलनात्मक आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि लगभग सभी शैक्षिक स्तारों पर बालिकाओं का नामांकन बालकों से कम है।

महिला शिक्षा में बाधाएं

लोगों की परम्परागत व रूढ़िवादी मानसिकता, महिला शिक्षा को गैर जरूरी मानता है। लोग लड़कियों की शिक्षा का ध्यान देना आवश्यक नहीं समझते हैं। साथ ही लड़कियों को पराया धन समझने की सोच ही महिला शिक्षा पर निवेश को आर्थिक तौर पर बोझ मानती है। लड़कियों पर घरेलू दायित्वों का बोझ, बाल विवाह, अधिक शिक्षित होने पर अधिक दहेज, शिक्षा के लिए लड़कियों को घर से दूर जाने पर सुरक्षा आदि कई कारण उन्हें पढ़ाने के प्रति अभिभावकों को हतोत्साहित करते हैं। देश के पिछड़े, अनुसूचित जातियों तथा अल्पसंख्यकों के एक बड़े वर्ग की मानसिकता वर्तमान में भी परम्परावादी है, जो कि इन वर्गों में महिला साक्षरता की राह में एक बड़ा अवरोध है। न्यून शैक्षिक स्तर के कारण ही प्रायः महिलाएं

स्वयं के स्वास्थ्य के प्रति जागरुक नहीं हो पाती और इसी कारण उनके कल्याण से संबंधित उपलब्ध सुविधाओं का ज्ञान उन्हें नहीं है। यद्यपि सभी शैक्षिक स्तरों पर लैंगिक असमानता आज भी विद्यमान है परन्तु स्त्रियों की स्वयं की साक्षरता दर व शैक्षिक स्तर में हुई प्रगति को उत्साहजनक माना जा सकता है।

महिला शिक्षा का कानूनी पक्ष

संविधान की धारा 45 में प्राथमिक शिक्षा को सार्वभौमिक बनाने के उद्देश्य से निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा को राज्य का एक "नीति निर्देशक" सिद्धान्त घोषित किया गया है। महिलाओं को समान संवैधानिक अधिकार तो प्राप्त हैं पर उनके मार्ग में आने वाली कठिनाइयों को दूर कर उसे व्यावहारिक रूप से लागू किया जाए। अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा से संबंधित 93वें संविधान संशोधन अधिनियम को ईमानदारी के साथ लागू करते हुए इसे 6 वर्ष की आयु के समस्त बच्चों की अनिवार्य व निःशुल्क प्रारम्भिक शिक्षा के लक्ष्य को पूरा करने का गंभीर प्रयास किए जाने की आवश्यकता हैं। वास्तविकता यह है कि महिलाओं की अशिक्षा ही शिक्षा के लोकव्यापीकरण में सबसे बड़ी बाधा है। यदि महिला साक्षरता दर देश में अधिक होगी तो देश की कुल साक्षरता दर भी तुलनात्मक तौर पर अधिक हो जाएगी। देश में अनिवार्य शिक्षा कार्यक्रम को सख्ती से लागू किया जाए तथा अपनी लड़कियों को स्कूल न भेजने वाले अभिभावकों के प्रति कार्यवाही भी की जाए।

महिला शिक्षा के अनेक लाभ

आधुनिक और अत्यन्त स्पर्धाशील विश्व की चुनौतियों का मुकाबला करने के लिए केवल शिक्षा का होना ही जरूरी नहीं है बल्कि एक अच्छे स्तर और विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता है। शिक्षा को एक ऐसे उपकरण के रूप में भी मान्यता दी गयी है, जिसकी सहायता से समाज में परिवर्तन व विकास के अभीष्ट लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है। अब महिला कार्यक्रमों का फोकस महिला कल्याण से हटकर महिला सशक्तिकरण की ओर हो रहा है। निश्चय ही सशक्त होने पर महिला अपने कल्याण के लिए दूसरे पर आश्रित नहीं बल्कि स्वयं समर्थ होगी। जब पुरुष शिक्षित होता है तो एक व्यक्ति शिक्षित होता है और जब स्त्री शिक्षित होती है तो एक पूरा परिवार शिक्षित होता है। क्योंकि शिक्षित महिला अपने समस्त परिवार की शिक्षा व्यवस्था में अहम् भूमिका का निर्वाह करती है। शिक्षित महिलाएं उत्पादकता, आय एवं आर्थिक विकास के साथ–साथ स्वस्थ एवं सुपोषित जनसंख्या के निर्माण में सहायक हैं। शिक्षित महिलाएं जागरुक रहकर बड़ी कुशलता के साथ सामाजिक दायित्वों को संभाल सकती हैं।

महिला शिक्षा के लिए व्यवस्थाएं

- ग्रामीण क्षेत्रों के सरकारी विद्यालयों में बुनियादी सुविधाओं तथा शैक्षिक उपकरणों का होना आवश्यक है जिससे लड़कियों में शिक्षा के प्रति रुझान में वृद्धि हो।
- महिला शिक्षा के लिए स्कूलों की घर से भौगोलिक दूरी को कम किया जाए तथा ग्रामीण क्षेत्रों में प्रत्येक गांव, टोलों, भागलों, में नवीन स्कूल खोले जाएं जिससे लड़कियों को अपने निवास स्थान के निकट ही शिक्षा प्राप्त हो सके।
- जनता में चेतना एवं जागरुकता का प्रसार करने के लिए स्थानीय समाज सुधारकों तथा स्वयंसेवी संस्थाओं की प्रभावशाली भूमिका हो सकती है इसलिए उन्हें प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। पिछड़े तथा कमजोर वर्गों में बालिका शिक्षा के प्रति उत्साह जगाने के लिए आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करने के लिए ठोस पहल करनी चाहिए।
- विद्यालयों में योग्य शिक्षकों की नियुक्ति कर शिक्षण कार्य को प्रभावी बनाया जाना चाहिए। शिक्षकों से शिक्षण कार्य के अतिरिक्त अन्य कार्य न लिया जाए और उन्हें निरन्तर प्रशिक्षित किया जाना भी आवश्यक है। महिलाओं को शैक्षिक रूप से और अधिक सुदृढ़ करना होगा, साक्षरता दर व विभिन्न शैक्षिक स्तरों पर उनकी स्थिति को निरन्तर उन्नत करना होगा, शिक्षा में लैंगिक असमानता को समाप्त करने हेतु प्रयासरत होना होगा तथा प्राथमिक शिक्षा पर और अधिक ध्यान देना होगा।
- दूर शिक्षा की व्यवस्था करने से विविध शैक्षिक पृष्ठभूमि वाले तथा विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में बिखरे विद्यार्थियों की एक बड़ी संख्या में उनकी आवश्यकता एवं सुविधा के अनुरूप ज्ञान, कौशल एवं अभिवृत्ति प्रदान करने की विधाएं अपनाना आवश्यक है।
- दूरस्थ शिक्षा में उच्च कोटि की अधिगम सामग्री के निर्माण, उत्पादन तथा प्रेषण में तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी माध्यमों का समुचित रूप से व्यापक प्रयोग करके महिलाओं को घर बैठे शिक्षित किया जा सकता है।
- महिला शिक्षा के प्रसार के लिए गांव–गांव में महिला समितियों का गठन करके उन्हें बालिकाओं की शिक्षा सुनिश्चित करने का दायित्व सौंपा जाए तो इससे भी महिला साक्षरता के अभियान को कुछ गति प्राप्त हो सकती है।

(लेखक पंचायती राज संस्थान में प्रशिक्षण अधिकारी हैं।)
ई–मेल : prnd99@rediffmail.com

महिलाओं की स्थिति पर वैश्वीकरण का प्रभाव

डॉ. अंजलि गुप्ता

वैश्वीकरण आज के युग की अपरिहार्यता है जिसके प्रभाव से विश्व का कोई भी देश अछूता नहीं रह सकता। वैश्वीकरण ने निस्संदेह भारतीय महिलाओं की स्थिति को प्रभावित किया है। वैश्वीकरण ने महिलाओं को एक वस्तु बना दिया है और उपभोक्तावादी संस्कृति धड़ल्ले से महिलाओं का प्रयोग (दुरूपयोग) एक वस्तु के रूप में कर रही है, विशेषकर इलेक्ट्रानिक मीडिया। कोई भी फैशन शो या विज्ञापन महिलाओं के अभाव में संभव नहीं है।

वैश्वीकरण ने आधुनिक युवा महिलाओं को ग्लोबल सिटीजन बना दिया है जो आत्मनिर्भर, स्वनिर्मित, आत्मविश्वासी है जिसने पुरुष प्रधान,चुनौती पूर्ण क्षेत्रों में भी अपनी योग्यता प्रदर्शित की है। वह केवल नर्स,शिक्षिका, स्त्री रोगों की डाक्टर न बनकर इंजीनियर, पायलट, वैज्ञानिक, तकनीशियन, सेना, पत्रकारिता जैसे नए क्षेत्रों को अपना रही है। वस्तुतः 21वीं शती महिला शती है तथापि भारतीय राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा पाटिल, श्रीमती सोनिया गांधी, सुश्री मायावती, सुश्री जयललिता, सुश्री ममता बैनर्जी, सुश्री मेधा पाटेकर, श्रीमती किरण मजुमदार शॉ, सुश्री इला भट्ट, श्रीमती वृन्दाकारत, श्रीमती सुधा मूर्ति, सानिया मिर्जा जैसी सामाजिक, राजनीतिक जीवन की ख्याति प्राप्त उंगलियों पर गिनी जाने वाली महिलाओं को छोड़ दिया जाए तो समाज की अधिसंख्यक महिलाओं की स्थिति में कोई विशेष उपलब्धि जैसा परिवर्तन नहीं आया है और निकट भविष्य में भी क्रांतिकारी परिवर्तन होगा, ऐसी संभावना भी नहीं है।

देश की सुरक्षा की प्रहरी महिलाएं

निर्विवाद रूप से यह सत्य है कि स्वाधीनता उपरांत न केवल शहरों अपितु ग्रामों में भी जागरुकता बढ़ी है। महिलाएं घर–परिवार की चारदीवारी से निकलकर घर और बाहर दोनों दायित्वों को निभा रही हैं और दोहरी जिम्मेदारी के बोझ तले पिस रही हैं। सार्वजनिक जीवन और क्षेत्रों में महिलाओं की स्थिति में कोई बड़ा सुधार नहीं हुआ है।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में घोषित किया गया है कि इसका लक्ष्य न्याय प्राप्ति व समस्त नागरिकों को स्तर और अवसर की समानता प्रदान करना है। राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं को उचित प्रतिनिधित्व देने के लिए संविधान के 73वें 74वें संशोधन द्वारा देशभर की पंचायतों व जिला परिषदों में 33 प्रतिशत स्थान आरक्षित करने का प्रावधान किया गया। 26 अक्टूबर, 2006 को घरेलू हिंसा, महिला आरक्षण अधिनियम पारित किया गया। सैद्धांतिक रूप से महिलाओं को कानून के सभी अधिकार प्राप्त हैं, जो पुरुषों को प्राप्त हैं, परन्तु व्यवहार में अनेक विसंगतियां हैं जिनकी भुक्तभोगी हममें से अधिकांश महिलाएं हैं (अपवादों को छोड़कर)। परिवार के अन्दर ही लड़कियों को भाइयों के समान शिक्षा, खेलकूद, खाने–पीने तक की छूट नहीं मिलती, लड़कों को बचपन से गैर–शाकाहारी मिलता है, लड़कियों को नहीं, लड़के देर रात तक मटरगश्ती करते हैं, लड़कियों को अंधेरा होने से पूर्व घर लौटना होता है अन्यथा जब तक लड़की घर वापस नहीं आती माता–पिता के प्राण अधर में लटके रहते हैं।

विवाह निश्चित करते समय लड़का दिखाकर उसकी मर्जी जानने की रस्म पूरी कर ली जाती है। बचपन से लड़कियों को शिक्षा–तुम्हें दूसरे (सास) के घर जाना है अतः सारी नैतिकता, संस्कार, रसोई बनाने, गृहस्थी संभालने का दायित्व उसी का है। शहरी लड़कियों को ग्रामीण लड़कियों की अपेक्षा अधिक छूट और सुविधाएं प्राप्त हैं। शादी के बाजार में नौकरीपेशा लड़कियों की मांग ज्यादा है, अतः अब पहले की अपेक्षा लड़कियों को काफी छूट मिल गई हैं। हालांकि नौकरीपेशा लड़कियों की समस्याएं घर–बाहर दोनों जगह बढ़ गई हैं। पग–पग पर वह तिरस्कृत, असुरक्षित और उत्पीड़ित हैं। नारी उत्पीड़न की घटनाएं द्रौपदी के चीर–हरण की

तरह बढ़ रही हैं। कोई भी महिला ऐसी नहीं है जिसने जीवन में कभी न कभी कोई उत्पीड़न, शोषण, हिंसा किसी न किसी रूप में सहन ना की हो। यद्यपि सभी पुरुष बलात्कारी, अभद्र, पिटाई करने वाले, अपहरणकर्ता, शोषणकर्ता नहीं हैं तथापि महिलाएं, सभी आयु में संभावित शिकार हैं। भारत में आईपीसी के अंतर्गत प्रतिवर्ष घटित कुल अपराध लगभग 6 प्रतिशत महिलाओं के प्रति होते हैं।

प्रतिवर्ष 31000 यातना मामले (पति व अन्य द्वारा) 28000 छेड़खानी के मामले, 14000 अपहरण के मामले, 14000 बलात्कार के मामले, दहेज प्रताड़ना संबंधी, 2800 मामले, एक दो मामले सती प्रथा।

लड़कियों और महिलाओं की स्थिति पर दिल्ली स्टेट कमीशन की रिपोर्ट रोंगटे खड़े करने वाली है–मुम्बई, कोलकाता, चेन्नई तीनों मैट्रो शहरों से दोगुने बलात्कार के मामले दिल्ली में होते हैं। दस वर्ष से कम उम्र की बच्चियों के साथ बलात्कार पूरे देश से चार गुना अधिक, 88 प्रतिशत अपराध परिचितों और रिश्तेदारों द्वारा घटित और सबसे दुखद पहलू 89 प्रतिशत अपराध घर की परिधि में होते हैं। इस सबके बावजूद रोशनी की किरण यही है कि देश की विकसित अर्थव्यवस्था, 9 प्रतिशत विकास दर ने महिलाओं के समक्ष संभावनाओं के नए असीमित क्षेत्र खोल दिए हैं। एसोचैम व इको पल्स के सर्वेक्षण के अनुसार वर्ष 1998 से वर्ष 2004 के मध्य महिलाओं को मिलने वाले रोजगार में 3.35 फीसदी की वृद्धि हुई है। वहीं पुरुषों को इस मामले में 8 फीसदी का नुकसान उठाना पड़ा है। निजी सार्वजनिक क्षेत्र में महिलाओं की संख्या वर्ष 1998–47.74 प्रतिशत, वर्ष 2004–49.34 प्रतिशत थी। पुरुषों की संख्या वर्ष 1998–2.34 करोड़, वर्ष 2004–2.15 करोड़ थी।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की 'महिला वैश्विक रोजगार' रिपोर्ट के अनुसार समान काम के लिए अभी भी पुरुषों की तुलना में महिलाओं को वेतन कम मिलता है। विश्व के कुल 2.9 अरब रोजगारशुदा लोगों में महिलाओं की संख्या पहले से अधिक है। बड़ी संख्या में महिलाएं कम वेतन वाले कार्यों में लगी हुई हैं जैसे खेती। महिलाओं की कार्य क्षमता संबंधी निम्न आंकड़े आश्चर्यचकित कर देने वाले हैं–कुल आबादी में आधी होते हुए भी महिलाएं दो तिहाई काम करती हैं, पर उनके काम का एक तिहाई दर्ज हो पाता है। 70 प्रतिशत महिलाएं खेती के कार्य में संलग्न, विश्व के कार्य का 60 प्रतिशत कार्य महिलाएं सम्पन्न करती हैं। किन्तु केवल एक प्रतिशत विश्व भूमि पर महिलाओं को स्वामित्व प्राप्त है और विश्वव्यापी आय में केवल 10 प्रतिशत की भागीदारी है। विश्व के 10 खरब गरीबों में 60 प्रतिशत महिलाएं हैं तथापि आर्थिक रूप से कोई बहुत बड़ा सुधार महिलाओं की स्थिति में नहीं हुआ है। वस्तुतः किसी भी देश का विकास लगभग सभी क्षेत्रों में एवं नागरिकों का कल्याण महिलाओं की सक्रिय भागीदारी के बिना संभव नहीं है। जिन्होंने आधा आसमान सिर पर उठा रखा है उनकी मूलभूत संसाधनों तक कितनी पहुंच है और सामाजिक–राजनीतिक निर्णय–निर्माण प्रक्रिया में कितनी सहभागिता है। महिलाओं की स्थिति विकास का एक प्रकार का संकेतक भी है। वर्ल्ड इकोनोमिक फोरम की रैकिंग के अनुसार महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण के क्षेत्र में भारत का स्थान 115 नम्बर पर है। श्रमशक्ति में महिलाओं की भागीदारी भारत, इंडोनेशिया, मलेशिया जैसे देशों में सबसे कम है। संयुक्त राष्ट्र आर्थिक और सामाजिक आयोग (एशिया प्रशांत के लिए) के वार्षिक आर्थिक सर्वेक्षण 2007 के अनुसार यदि भारत में महिलाओं की भागीदारी अमरीका के बराबर हो जाए तो देश का सकल घरेलू उत्पाद 4.2 प्रतिशत की दर से बढ़ेगा और वृद्धि दर 1.08 प्रतिशत बढ़ जाएगी जिससे अर्थव्यवस्था को 19 अरब डालर का लाभ होगा। महिलाओं के लिए रोजगार के अवसरों की सुलभता सीमित होने के कारण इस क्षेत्र को प्रति वर्ष 42 से 47 अरब डालर का घाटा उठाना पड़ रहा है। शिक्षा में लड़के–लड़की के बीच अंतर के कारण 16 से 18 अरब डालर का

अपराध रोकने के लिए सख्त कानून जरूरी

आर्थिक नुकसान हो रहा है और यदि यह अंतर कम नहीं किया गया तो प्रतिवर्ष 30 अरब डालर की अतिरिक्त कीमत चुकानी होगी।

महिला विकास व अधिकारों की बात करना व्यर्थ है जब तक विश्व की आधी जनसंख्या को मूलभूत अधिकार प्राप्त ना हो। भारत में विश्व की जनसंख्या का 1/7वां हिस्सा है। लगभग 800 करोड़ में से 50 प्रतिशत महिलाएं हैं और उनकी आधी संख्या 20 वर्ष से नीचे है। भारत में प्रतिवर्ष लगभग 12 करोड़ कन्याओं का जन्म होता है जिसमें से डेढ़ करोड़ अपना प्रथम जन्म दिवस नहीं देख पाती हैं अथवा 5 वर्षों में 850000 अकाल मृत्यु को प्राप्त होती हैं। केवल 9 करोड़ कन्याएं अपना 15वां जन्म दिवस मना पाती हैं। कन्याएं अनचाही होने के साथ–साथ अपने परिवार पर बोझ मानी जाती हैं। इसी कारण लड़कियों का शोषण जन्म से पूर्व प्रारंभ होकर मृत्युपर्यंत चलता रहता है। कन्या को जन्म से शैशवावस्था, किशोरावस्था, वैधव्य सभी अवस्थाओं में शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक भेदभाव का शिकार होना पड़ता है। लिंग निर्धारण की उच्च तकनीक, चिकित्सीय नैतिकता के अभाव के कारण लाखों बेटियां जन्म से पहले ही खो जाती हैं। अनैतिक मेडिकल व्यवसायिकता ने 1000 करोड़ के देशव्यापी व्यवसाय को बढ़ावा दिया है। लिंग निर्धारण परीक्षण व कन्या भ्रूण हत्या के संबंध में सरकार को ठोस कदम उठाना होगा, कानूनों को सख्ती से क्रियान्वित करना होगा, उनका सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक शोषण रोकना होगा, यही समय की मांग है। मुस्कराती लक्ष्मी ही आधुनिक भारत का भविष्य है। जहां दक्षिण एशिया में मातृत्व मृत्युदर 1,00,00 लाख पर 540 की मृत्यु हो जाती हैं वहीं भारत में प्रति 5 मिनट में एक महिला की मृत्यु। एक अनुमान के अनुसार प्रतिवर्ष 1,36,000 महिलाएं गर्भावस्था संबंधी जटिलताओं से मृत्यु को प्राप्त होती हैं। यूरोप में पूरे वर्ष में मातृत्व संबंधी जितनी मृत्यु होती हैं उतनी भारत में केवल एक सप्ताह में, तथापि महिलाओं के स्वास्थ्य के लिए कोई विशेष योजना या आंदोलन नहीं हैं।

आज के वैज्ञानिक,वैश्वीकरण के युग में भी अधिकतर मृत्यु इसलिए होती हैं क्योंकि अधिकांश महिलाएं समय पर अस्पताल नहीं पहुंच पाती अन्यथा 70 प्रतिशत महिलाओं को बचाया जा सकता है। टिटनेस और एनीमिया आज की महिलाओं के दो बड़े शत्रु हैं क्योंकि शिशु जन्म के उपरांत भी महिलाओं को बहुत कम अथवा कोई देखभाल उपलब्ध नहीं होती। शबाना आजमी के शब्दों में –(8 मार्च, महिला दिवस के अवसर पर) सुरक्षित मातृत्व समाज के विकास का सूचक है और भारत माता का जीवन दांव पर है। गर्भवती महिलाओं में 54 प्रतिशत एनीमिक हैं। एक लाख जीवित जन्मदर पर 301 मातृ मृत्यु दर। केवल 43 प्रतिशत जन्म प्रशिक्षित स्टाफ की देखरेख में होते हैं। आज के दौर में भी महिलाओं के समक्ष बड़ी गम्भीर चुनौती है। उसे गृहिणी के साथ–साथ अपने को प्रोफेशनली भी सिद्ध करना है। दोनों मोर्चों पर उससे असीमित अपेक्षाएं हैं और अनेकों सीमाएं भी। विशेषकर भारतीय समाज जो परंपरावाद पुरातनता और आधुनिकता में सामंजस्य स्थापित कर रहा है। परिवार व समाज में महिला की भूमिका को लेकर यद्यपि पुरुष मनोवृत्ति में कुछ परिवर्तन आया है। वैश्वीकरण ने भारत की 50 प्रतिशत जनता के गृह कार्यों के प्रति दृष्टिकोण को बदला है।

वैश्वीकरण ने महिलाओं की स्थिति को भी प्रभावित किया है। जीवन के हर क्षेत्र में महिलाएं अपनी योग्यता, क्षमता के बल पर झंडे गाड़ रही हैं। देश के विकास में उनकी भागीदारी ने उन्हें अबला, कमजोर से सबला और समर्थ सिद्ध कर दिया है। आज की रोल मॉडल इंदिरा नूयी, ओपरा विनफ्रे, किरण देसाई, नैंसी पिलोसी, सिगोलेने रॉयल, हिलेरी क्लिंटन जैसी महिलाएं है तथापि समाज की बहुसंख्यक महिलाएं मूलभूत मानवाधिकारों से वंचित हैं, निरक्षर हैं, शोषित और पीड़ित हैं। आज भी महिला की भूमिका प्रमुखतः पत्नी, माता, पति की अनुगामिनी के रूप में ही है चाहे उसकी शिक्षा और कैरियर का स्वरूप कुछ भी क्यों न हों। महिला के चिन्तन का केन्द्र बिन्दु पति और परिवार ही है।

ईंधन, चारा, पानी, तीनों जिम्मेदारी पूरी करने का दायित्व महिला पर ही है। जाति प्रथा, बाल विवाह व दहेज यह तीनों महिला की दुरावस्था के सबसे बड़े कारण हैं। आज के समय में भी महिला को अपने शरीर पर, अपनी जननात्मक क्षमता पर अधिकार नहीं है। पति का घर स्त्री की सबसे निरापद जगह माना जाता है पर वहीं वह सबसे अधिक उत्पीड़ित होती है। पति ही उस पर अत्याचार करता है, पति ही उसके अधिकार के टुकड़े–टुकड़े कर देता है। वस्तुतः वैश्वीकरण के बावजूद परिवार और समाज में महिला भूमिका को लेकर कोई विशेष परिवर्तन पुरुष मनोवृत्ति में नहीं हुआ।

भारत में महिलाओं की स्थिति मिली जुली है। बहुत कम महिलाओं को अपनी स्थिति पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त है। अधिकतर महिलाएं काफी सीमा तक अपने पिता, पति अथवा भाइयों, बेटों पर आश्रित हैं। अधिकांश महिलाओं की स्थिति में कोई सुधार अथवा परिवर्तन नहीं हुआ है। महिला विकास के लिए समाज और पुरुषों के दृष्टिकोण के साथ–साथ स्वयं महिलाओं को भी अपना दृष्टिकोण परिवर्तित करना होगा कि उनका घर, परिवार से पृथक एक मनुष्य के रूप में भी अस्तित्व है और ऐसा व्यापक स्तर पर जागृति, शिक्षा और आर्थिक सशक्तिकरण द्वारा ही संभव है।

(लेखिका राजनीति शास्त्र विभाग में वरिष्ठ रीडर हैं।)
ई–मेल : rcgup@hotmail.com

प्रगतिशील
भारत को सलाम
गणतंत्र के
उपलब्धिमय 58 वर्ष
सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार
davp 22202/13/0125/0708

KH-03/08/02

कृषि कार्यों में महिलाओं की भूमिका

ममता भारती

हमारे देश में आज भी करीब 70 फीसदी आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती हैं। उसमें से अधिकतर लोग कृषि कार्यों पर निर्भर हैं। शहरों में कार्यशील महिलाएं दफ्तर जाती हैं या कई कारोबार चलाती हैं। गांवों में महिलाएं घर व बच्चों को संभालने के साथ–साथ खेती के काम में हाथ बंटाती हैं। वे हर कदम पर किसानों का साथ निभाती हैं। क्यारी से खेत की तैयारी तक बुवाई से कटाई तक, रोग, कीट व खरपतवारों के नियंत्रण में, फसलों को गहाना या उनको ले जाना, महिलाओं से कुछ भी छूटा नहीं है। खेत खलिहानों से गोदामों तक हर जगह उनका पसीना बराबर बहता है। अतः कृषि में महिलाओं की भागीदारी बहुत महत्वपूर्ण है।

यह बात अलग है कि कृषि कार्यों में लगी महिलाओं की अपनी कोई अलग पहचान नहीं है, क्योंकि अर्थव्यवस्था की चाबी प्रायः पुरुषों के पास रहती है। अतः वे चाह कर भी तरक्की की राह में उतनी आगे नहीं बढ़ पातीं। उनकी अशिक्षा, अनभिज्ञता, उदासीनता, रूढ़ियां और उनके अंधविश्वास रास्ते के रोड़े साबित होते हैं। ऐसी स्थिति में राष्ट्र के चहुंमुखी समग्र विकास के लिए कृषि कार्यों में लगी ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण पर ध्यान दिया जाना बहुत जरूरी है।

इसके लिए उनकी सूचना और शिक्षा का पुख्ता व बेहतर इंतजाम हो ताकि उनमें जागरुकता आए। साथ ही साथ खेती के दौरान आने वाली समस्याओं को पहचान कर उनको आसानी से हल करने की दिशा में कारगर उपाय किए जाएं। समय और श्रम बचाने वाली तकनीकी जानकारी सरल भाषा में रोचक ढंग से उन तक पहुंचाई जाए। इस बारे में काफी कुछ हुआ भी है। उदाहरण के लिए आकाशवाणी का कृषि एवं गृह एकांश इस दिशा में मील का पत्थर सिद्ध हुआ है। परिणास्वरूप कृषि के सहायक उद्योग धंधे बहुत से देहाती इलाकों में बढ़े हैं। अतः जरूरत जनभागीदारी बढ़ाने व ललक जगाने की है। दूरदराज के पिछड़े हुए इलाकों में अभी बहुत कुछ किया जाना जरूरी है, ताकि अंधेरे कोने भी रोशन हो सकें।

महिला समूह द्वारा मसालों की पैकिंग

डेरी पशुपालन, पोल्ट्री, मछली पालन, रेशम कीट पालन, चटनी, अचार, मुरब्बे यानी कि खाद्य परिरक्षण, हथकरघा, दस्तकारी जैसे कामों में ग्रामीण महिलाएं पीछे नहीं हैं, लेकिन जो गांव शहरी इलाकों के नजदीक हैं वहां की महिलाओं को इस नव जागृति और चेतना का लाभ अधिक पहुंचा है, बहुत–सी महिलाओं ने तो अपनी सफलता के रिकार्ड कायम किए हैं।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश में एक जिला है बागपत। वहां की बड़ौत तहसील की उषा तोमर ने मिसाल कायम की है। करीब 7 वर्ष पहले अपने इलाके की 15 महिलाओं को ले कर उषा ने स्वयं सहायता के लिए एक छोटा–सा समूह बनाया था। अब वह बढ़ कर कई गुना हो गया है जो पूरे जिले में एक आदर्श मिसाल बन गई है। इस समूह ने बड़ा अनोखा काम किया है। एक महिला कृषि प्रसार विद्यालय का गठन किया जो कृषि से जुड़ी महिलाओं को नई–नई जानकारी देता है।

इसके बेहतर परिणाम मिले। पुराने औजारों व पुराने तरीकों से छुटकारा मिला। समय,शक्ति व श्रम की बरबादी रुकी। सोचने का ढंग बदला। कम लागत व कम वक्त में ज्यादा फायदा हुआ। क्षेत्र में फूलों व नई सब्जियों की खेती बढ़ी। सदस्य महिलाओं के परिवारों की आमदनी बढ़ी, उनका जीवन स्तर सुधरा है। यह देखकर दूसरी महिलाओं को भी प्रेरणा मिली है। समूह की सदस्याओं को देख–देख कर गांव की दूसरी महिलाएं भी पत्र–पत्रिकाओं, रेडियो, टी. वी. आदि से जानकारी लेने में अधिक रुचि लेने लगी हैं। जो पढ़ना–लिखना नहीं जानती थीं, वे भी शर्म, संकोच और भय छोड़ कर अब अक्षर ज्ञान लेने की कोशिश कर रही हैं।

इसी तरह एक दो नहीं देश के ग्रामीण क्षेत्रों में अनेक समूह चल रहे हैं। वे अपनी थोड़ी–थोड़ी बचत इकट्ठी करके जरूरतमंद सदस्याओं की मदद करते हैं। मार्च 2007 तक 68575 समूह बने थे जिनमें 10 लाख महिलाएं सदस्य थीं। दरअसल, ग्रामीण महिलाओं की व्यस्त दिनचर्या, जरूरतें व

समस्याएं शहरी महिलाओं की तुलना में अलग होती है। रोजमर्रा के काम आसान बनाने वाली सुविधाजनक घरेलू मशीनें देहातों में नहीं के बराबर हैं। अतः सूरज की पहली किरण के साथ उनका कार्य शुरू हो जाता है। पशुओं को चारा देना, दूध दुहना, गोबर पाथना, घर आंगन लीपना, नौकरों की रोटी बनाना, खाना खेतों तक पहुंचाना, फिर उधर से जलावन लाना। इसके अलावा अनाज, दाल व मसाले साफ करना, कुएं से पानी लाना जैसे अनेक काम उन्हें रोज करने होते हैं। शिक्षा, सूचना व मनोरंजन के अवसर उन्हें अपेक्षाकृत कम मिलते हैं।

वे खेती के कामों में करीब 55 फीसदी से भी ज्यादा का योगदान करती हैं, लेकिन इस सबके बावजूद उनमें से ज्यादातर के पास जमीनों के मालिकाना हक नहीं है। वे अपने निजी तथा खेती किसानी में फसल की बुवाई से उपज की बिक्री तक के फैसले खुद नहीं ले पातीं। साथ हीं वे अपने स्वयं के पोषण, स्वास्थ्य और मानसिक विकास आदि के बारे में ज्यादा कुछ नहीं कर पाती हैं। प्रायः वे अपने अधिकारों से वंचित रह जाती हैं या बेदखल कर दी जाती हैं और इस तरह से वे हाशिए पर चली जाती हैं किंतु अब गांवों में भी स्थिति सुधर रही है।

टॉफी रैपिंग करती स्वयं सहायता समूह की सदस्य महिलाएं

खासकर भूमिहीन परिवारों में तथा मजदूरी करने वाली अनपढ़ व गरीब महिलाओं की दशा तो ज्यादा खराब है। पूरे परिवार का पोषण करके अन्नदाता कही जाने वाली महिलाएं अक्सर खुद भूखी और प्यासी रहती हैं। देहाती इलाकों में रहने वाली पढ़ी लिखी जागरुक महिलाएं इस स्थिति में बदलाव लाने में बहुत बड़ा योगदान कर सकती हैं। वे औरों को जगा सकती हैं। कृषक महिलाओं को वैधानिक सुरक्षा दिलाने में मदद कर सकती हैं। हमारे देश में अनेक गैर सरकारी संगठन भी इस दिशा में काम करके अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

स्वयं सिद्धा, राष्ट्रीय महिला कोष तथा अन्य कल्याणकारी कार्यक्रमों का लाभ उठा कर महिलाएं अपना काम धंधा शुरू कर सकती हैं तथा स्वावलंबी हो सकती हैं। दरअसल, कल्याण मंत्रालय द्वारा महिलाओं के विकासार्थ सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तिकरण और जैंडर यानी लैंगिक न्याय आदि के लिए प्रयास तो चल ही रहे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि कृषि कार्यों में लगी महिलाएं जागरुक होकर स्वयं आगे आएं और देशभर में सरकार की ओर से चलाई जा रही कल्याणकारी योजनाओं का लाभ उठाएं। गांव की शिक्षित युवतियां, शिक्षिकाएं तथा पंचायतों में चुनी गई महिलाएं अपने आसपास के इलाकों में नवचेतना एवं जागृति लाने का काम कर सकती हैं। हमारे देश में कई महिलाओं ने स्वयं व्यक्तिगत तौर पर तथा संस्थागत रूप से अनेक प्रेरणास्पद, अनुकरणीय एवं उल्लेखनीय कार्य किए हैं।

कृषि मंत्रालय के स्तर से भी निरंतर इस बात के प्रयास किए जा रहे हैं कि कृषि कार्यों में लगी ग्रामीण महिलाओं की स्थिति में भी तेजी के साथ सुधार हो। हमारे देश में 503 कृषि विज्ञान केन्द्र काम कर रहे हैं। इनके द्वारा प्रवीणता विकास हेतु कृषि कार्यों में लगी महिलाओं के लिए विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए जाते हैं। वर्ष 2006–07 में 2,39,76 महिलाओं तथा 64,394 ग्रामीण लड़कियों को फसल उत्पादन, बागवानी, गृह विज्ञान, पशुधन उत्पाद एवं प्रबन्धन की उन्नत तकनीक का प्रशिक्षण दिया गया था। आवश्यकता आगे बढ़कर पहल करने तथा रुचि लेकर लाभ उठाने की है ताकि गांव देहात की महिलाओं का समग्र विकास तथा कल्याण हो सके। किसान परिवारों की आम महिलाएं यह जान सकें कि स्वच्छता, समुचित शिक्षा, पोषण, वैज्ञानिक दृष्टिकोण जागरुकता से अशक्तता दूर होती है और इन्हें प्राप्त करना असंभव नहीं हैं।

हमारे देश में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली की ओर से कृषि में महिलाओं के लिए एक राष्ट्रीय अनुसंधान केन्द्र भी उड़ीसा में काम कर रहा है।

(लेखिका स्वतंत्र पत्रकार हैं।)

सर्वप्रिय योजना

राष्ट्रीय सहकारी उपभोक्ता संघ (एनसीसीएफ) द्वारा आम आदमी विशेषकर निम्न आय समूह से संबंधित लोगों के लाभ के लिए चुनिंदा वस्तुओं के वितरण हेतु सर्वप्रिय योजना चलाई जा रही है, जिसमें चार किस्म की दालों, नमक, चाय, नहाने का साबुन, कपड़े धोने के साबुन, अभ्यास पुस्तिकाओं, खाद्य तेल और टूथ पेस्ट के वितरण के लिए जुलाई, 2000 में शुरू किया गया था। योजना पर सभी राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों से अच्छी प्रतिक्रिया प्राप्त नहीं हुई लेकिन हिमाचल प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल जैसे कुछ राज्य समय–समय पर इस योजना के तहत आपूर्ति प्राप्त कर रहे हैं। (पसूका)

ग्रामीण महिलाओं का स्वरोजगार:रेशम उद्योग

सत्यभान सारस्वत

भारत जैसे विकासशील देश में, महिलाओं के विकास के बिना 'विकास' सम्भव ही नहीं हो सकता हैं। भारत की जनसंख्या का लगभग 72 प्रतिशत जनाधार ग्रामीण है। अर्थात् भारत अब भी ग्रामों में ही बसता है, जहां से कृषि आधारित उद्योगों के माध्यम से न केवल भरण–पोषण का भौतिक आधार मिलता है, अपितु रोजगार का सुलभ साधन भी मिलता है। 2001 की जनसंख्या के अनुसार भारत की आबादी में 50 प्रतिशत महिलाएं ही हैं, भले कुछ राज्यों में कन्या भ्रूण हत्याओं के कारण अब महिलाओं का अनुपात घट रहा है जो कि निश्चय ही एक चिन्ता का विषय है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर वर्ष 2007–2008 के केन्द्रीय बजट में महिलाओं पर केंद्रित परियोजनाओं के लिए 8795 करोड़ रुपये के बजट का प्रावधान किया गया है।

समुचित शिक्षा के अभाव में ग्रामीण महिलाओं के सामने रोजगार की विकट समस्या है और वे पुरुष प्रधान भारत देश में अब भी स्वतंत्रता के 60 वर्ष के बाद, घर की चार दिवारी में रहकर परतंत्रता के लिए बाधित है अर्थात् महिलाएं अपनी मूल–भूत आवश्यकता के लिए अपने साथी पुरुष पर ही निर्भर हैं। महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने के लिए उन्हें स्वरोजगार का साधन कुटीर उद्योग के रूप में उपलब्ध कराने के लिए एक सकारात्मक विकल्प "रेशम–उद्योग" है।

रेशम उद्योग एवं रेशम कीटपालन कृषि आधारित एक कुटीर उद्योग है, जिसमें महिलाओं को स्वरोजगार का साधन उपलब्ध है। वस्त्र मंत्रालय, भारत सरकार से उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार रेशम उद्योग एवं रेशम कीटपालन में 60–70 प्रतिशत भागीदारी ग्रामीण महिलाओं की है जो कि इस "स्व–रोजगार" के माध्यम से आत्मनिर्भर हो सकती है।

रेशम उद्योग अथवा रेशमी वस्त्रों का भौतिक आधार कच्चे रेशम की उपलब्धता है जो कि रेशम कीटपालन द्वारा प्राकृतिक रूप में ही उपलब्ध हो सकता है। रेशम कीटपालन में, शहतूत की खेती, शहतूती रेशम अर्थात् सामान्य रेशम के लिए अनिवार्य है क्योंकि शहतूत की पत्ती खाकर ही रेशम का कीड़ा रेशम बनाता है। दूसरे अवयव में रेशम कीटपालन घरों में रहकर करने के लिए मानव श्रम की आवश्यकता अनिवार्य है और यदि रेशमी धागे बन जाते हैं तो धागाकरण के माध्यम से धागा निर्माण अर्थात् रेशमी कोशों के धागा बनाने की प्रक्रिया में भी मानवीय श्रम आवश्यक है। इस पूरे उद्योग में महिलाओं की सहभागिता से उद्योग को चलाने में सफलता मिल सकती है।

महिला समिति की कीट पालक से वैज्ञानिक चर्चा करते हुए (साथ में रेशम कोशा)

भारत के 50,000 गांव में, लगभग 60,00,000 लोग रेशम कीटपालन व रेशम उद्योग के माध्यम से अपना जीवनयापन कर रहे हैं। इनमें कुछ परम्परागत राज्य हैं, जैसे उत्तर भारत में जम्मू–कश्मीर, दक्षिण में कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु पूर्व में पश्चिम बंगाल एवं पश्चिम में राजस्थान व गुजरात जहां रेशमी वस्त्रों का निर्माण अपनी विभिन्न कला कृतियों से किया जाता है।

भारत के कुछ राज्यों में प्राकृतिक संसाधनों के अभाव में, जैसे कृषि योग्य भूमि की अनुपलब्धता, कृषि योग्य भूमि है किन्तु सिंचाई के साधनों की अनुपलब्धता, ऐसे राज्यों में भी रेशम उद्योग एक स्वरोजगार का सशक्त माध्यम है। जिसका सकारात्मक पहलू है कि शहतूत का पौधा एक 'कल्पतरू' की तरह है जो कि असामान्य परिस्थितियों में भी जीवित रह सकता है। समुद्रतल से लेकर 9000–10,000 फीट की ऊंचाई तक शहतूत रोपण हो सकता है। उत्तर भारत में, जोशीमठ (बद्रीनाथ के पास) उत्तराखण्ड राज्य में लगभग 10,000 फीट की ऊंचाई पर शहतूत का वटवृक्ष उपलब्ध है, जिसे वहां की पहाड़ी महिलाएं 'कल्पवृक्ष' की तरह पूजती हैं।

पहाड़ी क्षेत्र की महिलाओं के सामने 'बेरोजगारी' की विकट समस्या है। न तो वे खेती कर सकती हैं न आवागमन के अभाव में कोई व्यापार कर सकती हैं। ऐसे में रेशम कीटपालन एक सशक्त विकल्प के रूप में महिलाओं को स्वरोजगार का साधन उपलब्ध है। उत्तराखण्ड में, देहरादून जनपद के अनेकों गांव ऐसे हैं, जहां महिलाएं रेशम कीटपालन कर रेशमी धागों का निर्माण कर रही हैं। दूरस्थ पहाड़ी क्षेत्रों में बागेश्वर (अल्मोड़ा), रुद्रप्रयाग (चमोली गढ़वाल) में महिलाएं रेशमी धागाकरण के साथ–साथ छोटे–छोटे हथकरघे पर रेशमी वस्त्रों का निर्माण भी कर रही हैं।

महिला रेशम समितियां

उत्तराखण्ड में महिला सशक्तिकरण का एक अनूठा उदाहरण है जहां पर महिलाओं ने अपने आत्मविश्वास को पूर्णरूप से सशक्त रखकर अपने को आत्मनिर्भर बनाने के लिए 'महिला रेशम' समितियों का निर्माण किया है। देहरादून से मात्र 25 किमी. दूर भगवानपुर गांव में लगभग 20 महिलाएं स्वयं महिला समिति चलाती हैं, उसकी प्रधान भी एक महिला है तथा सरकार व संगठन दोनों में ही महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित की जाती है। महिला समिति द्वारा विगत वर्षों में रेशम कीटपालन से आर्थिक लाभ तालिका में दर्शाया गया है।

अनुमानित उत्पादन के आंकड़ों में, शुद्ध आय के लिए लगभग 30 प्रतिशत की कमी उन संसाधनों पर खर्च की जाती है, जो ये महिलाएं, रेशम बीज (कीटाणुओं) के क्रय में, शहतूत बागान, शहतूत वृक्षों के रखरखाव पर खर्च करती हैं। सामान्यतः वर्ष में दो बार रेशम कीटपालन अपने घरों के पास उपलब्ध पेड़ों व शहतूत बागानों से करती है, कुछ राज्यों में जैसे उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड व हिमाचल प्रदेश में समितियों को राज्य सरकार अनुबन्ध के माध्यम से राजकीय रेशम फार्मों से शहतूत पत्ता उपलब्ध कराते हैं।

महिला समिति द्वारा रेशम कीटपालन

वर्ष	रेशम बीज (कीटाणु) की संख्या (अनुमानित)	रेशम कोशा की उत्पादन (किग्रा.)	आर्थिक लाभ (रुपये में)	शुद्ध आय (रुपये में)
2001–02	2000	850.00	106250.00	74375.00
2002–03	2200	900.00	112500.00	78750.00
2003–04	2500	1000,00	125000.00	87500.00

रेशम धागाकरण में महिलाएं

रेशम कोशा (कोकून) के उत्पादन के बाद लगभग 80 प्रतिशत कोशाओं को रेशमी धागाकरण के उपयोग में लाया जाता है–शेष 20 प्रतिशत बीजोत्पादन के काम में आते हैं। रेशम धागाकरण ग्रामीण महिलाओं को एक पूर्णकालीन उद्योग के रूप में कार्य देता है अथवा स्वरोजगार का साधन होता है। इसमें मौसम में कोशाओं के उपलब्ध होने के बाद कोशाओं को उबालकर (कोषोमरान्त) सुखाकर 3–4 माह तक रख सकते हैं फिर महिलाएं अपनी सुविधानुसार चरखे पर अथवा तकली पर धागा बना सकती हैं। कर्नाटक के सिदल–गट्ठा (कोलार) में सैकड़ों महिलाओं में आजीविका साधन रेशम धागाकरण है तो उत्तराखण्ड के रुद्रप्रयाग, चमोली जनपदों में महिलाएं सर्दी के मौसम में घर में तकली पर धागा बनाकर अपनी आजीविका साधन उपलब्ध कराती हैं।

कालीन –दरी के निर्माण में महिलाएं

सामान्य जानकारी के लिए घरों में प्रयोग होने वाली 'दरी' व विशेष अवसर पर उपयोग होने वाले गलीचे (कालीन) पूजा–पाठ

युवा महिला रेशमी धागाकरण का प्राशिक्षण लेते हुए

में प्रयोग लाने वाले 'आसनों' में रेशमी धागों का उपयोग होता है। कश्मीर के पोम्पोर–पुलवॉमा में रेशमी–गलीचों व दरी का निर्माण महिलाएं करती हैं। यहां पर दोनों ही वर्ग में महिलाएं विशेषकर गरीब मुस्लिम महिलाओं का रोजगार का साधन ही कालीन अथवा गलीचे बनाना है। वाराणसी व भदोई (वाराणसी संभाग) में हजारों की संख्या में महिलाएं कालीन–निर्माण में लगी हैं। यहां यह स्पष्ट करना भी आवश्यक है कि कालीन बनाने में ऊनी धागों का भी जहां एक ओर उपयोग होता है वहां रेशमी धागे (सिल्क वेस्ट) से कालीन का निर्माण होता है, जो कि तुलनात्मक रूप में कोमल व मनमोहक कालीन होते हैं।

रेशम बीजोत्पादन में महिलाएं

भारत सरकार से उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार रेशम बीज उत्पादन में महिलाओं की 70–80 प्रतिशत भागीदारी 'स्वरोजगार' के रूप में होती है। भारत के परम्परागत राज्य, जहां रेशम का बहुत उत्पादन होता है, जैसे–कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु–वहां रेशम कीट बीजोत्पादन का लगभग 80 प्रतिशत कार्य गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा

होता है जो कि सरकार से तकनीकी अनुबन्ध के अनुसार रेशम बीजोत्पादन करती है। इन संस्थाओं में कार्यकर्त्ता अथवा श्रमिक से लेकर वैज्ञानिक तक का कार्य महिलाएं ही करती हैं।

व्यावहारिक आंकड़ों के अनुसार रेशम बीज उत्पादन में 'रेशम कीटपालन' में लगभग शत–प्रतिशत महिलाएं कार्य करती हैं। कहीं–कहीं तो महिलाएं अपनी समिति बनाकर बीजोत्पादन का कार्य कर रही हैं।

ग्राम प्रमुख वरिष्ठ महिला 'रेशम उद्योग की जानकारी देते हुए

रेशमी–साड़ी निर्माण में महिलाएं

रेशमी साड़ी महिलाओं का एक ऐसा विशेष परिधान है, जिसे पहनकर महिला अपने को गौरवान्वित अनुभव करती हैं। असम में सुनहरी रेशम, की मूंगा की साड़ी वहां की परम्परा तो है ही, समाज में प्रतिष्ठा का साधन भी है। इन साड़ी निर्माण में महिलाओं के लिए पूर्णकालीन स्वरोजगार उपलब्ध है।

गुजरात के सूरत–जनपद में रेशमी साड़ी में जरी का काम महिलाएं करती हैं तो राजस्थान में 'कैथून' में कोटा डोरिया साड़ी के निर्माण में महिलाओं की सहभागिता है। बनारस में साड़ी के विपणन हेतु 'सजा–धजा' में महिलाओं की भूमिका बड़ी ही महत्वपूर्ण है। यहां तक बड़े–बड़े घराने की महिलाएं भी अपने घर व कार्य के बाद रेशमी साड़ियों को तैयार करने में अपना सहयोग देकर अतिरिक्त आय को साधन का स्रोत बनाती हैं।

निष्कर्ष में, रेशम उद्योग एक ऐसा कुटीर उद्योग है, जिसमें हर वर्ग की, विशेषकर ग्रामीण महिलाओं को "स्व–रोजगार" आदि का समान अवसर है। कुछ क्षेत्रों में ये महिलाएं–पुरुषों की तुलना में रेशम प्रौद्योगिकी में अपनी निपुणता साबित कर चुकी हैं। पुरुष प्रधान भारत देश में महिलाओं को आत्मनिर्भर एवं अपने आत्मविश्वास से जीवनयापन करने के लिये–रेशम उद्योग एवं रेशम कीटपालन एक सही दिशा में,सही कदम है व 'स्वरोजगार का साधन भी है।

(लेखक राष्ट्रीय रेशमकीट बीज परियोजना (वस्त्र मंत्रालय) में संयुक्त निदेशक हैं।)

महिलाओं में सशक्तिकरण के लिए योजनाएं

महिला और बाल विकास मंत्रालय महिलाओं के चहुंमुखी सशक्तिकरण के लिए अनेक कार्यक्रम और स्कीमें कार्यान्वित कर रहा है, जैसे प्रशिक्षण और रोजगार कार्यक्रम को सहायता (एसटीईपी–स्टेप), स्वावलम्बन कार्यक्रम, स्वयंसिद्धा परियोजना और स्व–शक्ति परियोजना। इसके अलावा, महिलाओं की आर्थिक सृजन की क्षमता और आर्थिक सुरक्षा को मजबूत बनाने के लिए दूसरे विभागों की संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना, स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना (इस कार्यक्रम के तहत 40 प्रतिशत लाभ महिलाओं के लिए निर्धारित है), स्वर्ण जयंती शहरी स्वरोजगार योजना, शहरी क्षेत्रों में महिला और बाल विकास (डीडब्ल्यूसीयूए) इत्यादि जैसी अन्य स्कीमें भी हैं। महिलाओं को भी स्व–सहायता समूहों के रूप में संगठित होने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है और इन समूहों को संसाधन प्रदान किए जा रहे हैं। (पसूका)

लेखकों से

कुरुक्षेत्र के लिए मौलिक, अप्रकाशित लेखों का स्वागत है। रचना दो प्रतियों में टाइप की हुई हो और उसके साथ ई–मेल तथा मौलिकता का प्रमाण–पत्र संलग्न हो। कुरुक्षेत्र में साहित्यिक रचनाएं प्रकाशित नहीं की जाती हैं। अस्वीकृत रचना लौटाने के लिए कृपया डाक टिकट लगा और अपना पता लिखा लिफाफा लगाएं। लेख वरिष्ठ संपादक, कुरुक्षेत्र कमरा नं. 655 'ए' विंग, गेट नं. 5, निर्माण भवन, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली–110011 के पते पर भेजें।

आर्थिक विकास में महिलाओं का योगदान

एस.एल.बैरवा

यह सर्वविदित है कि हमारे देश की जनसंख्या का आधा हिस्सा महिलाएं हैं। जीवन के हर क्षेत्र में महिलाओं के योगदान को स्वीकार किया गया है क्योंकि महिला एवं पुरुष विकास रूपी गाड़ी के दो पहिए हैं। महिलाएं राष्ट्र के विकास में उतना ही महत्व रखती है जितना पुरुषों का है। अतः देश का समग्र विकास महिलाओं की भागीदारी के बगैर संभव नही हैं। वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या 1,02,70,15,247 है। इसमें 53,12,77,078 पुरुष तथा 49,57,38,169 महिलाएं हैं। जो कुल आबादी का 48.27 प्रतिशत है। आधी आबादी यानी भारतीय महिलाओं के विकास की ओर बढ़ते कदम आज पूरी दुनिया के लिए मिसाल बन चुके हैं। आज भारतीय महिलाओं ने देश दुनिया के विभिन्न क्षेत्र में अपना सम्मानित स्थान बनाया है। आज महिलाएं बेहतर रोजगार के लिए दुनिया के किसी भी कोने में जाने के लिए तैयार हैं। आज ऐसा कोई क्षेत्र नहीं जहां महिलाओं ने अपनी उपस्थिति दर्ज न कराई हो। राष्ट्र के विकास की अग्रदूत बनी महिलाओं द्वारा देश ही नहीं वरन् विदेशों में भी अपने राष्ट्र का परचम लहराया है। समुद्र की गहराइयों से लेकर पहाड़ों की ऊंचाइयां भी इन कदमों के सामने छोटी पड़ गई। राष्ट्र की आंतरिक तथा बाह्य गतिविधियां इनसे अछूती न रह पायीं।

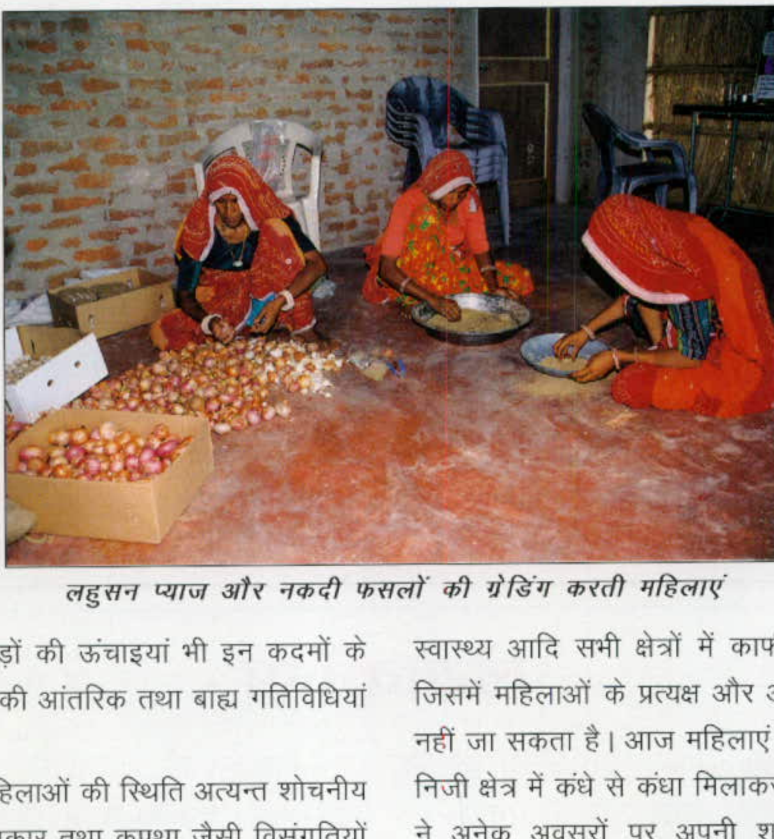

लहुसन प्याज और नकदी फसलों की ग्रेडिंग करती महिलाएं

स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व महिलाओं की स्थिति अत्यन्त शोचनीय बनी हुई थी। वह शोषण, शिकार तथा कुप्रथा जैसी विसंगतियों का शिकार थी। समाज में कई प्रकार की रुढियां, अंधविश्वास व्याप्त थे जिनमें बाल विवाह, सतीप्रथा आदि अन्य कुप्रथायें प्रमुख थीं। नारी को भोग की वस्तु माना गया। महिलाओं के प्रति रूढ़िवादी एवं परम्परागत सोच स्त्री को पिता, पति या पुत्र का "आश्रित" मानते हुए उसे मुख्य रूप से घर की चारदीवारी तक सीमित रखा गया। जिसका प्रमुख कारण तात्कालिक सामाजिक विचार का पिछड़ापन तथा स्त्रियों का अज्ञानता के बंधन में जकड़ा होना था।

स्वतंत्रता के बाद से ही नारी के स्वरूप में तेजी से परिवर्तन आया है। जिस देश में नारी को घर की दहलीज से बाहर निकलने की आज्ञा नहीं थी, उसी देश में आज नारी पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम कर रही है। वह घर की चारदीवारी से निकलकर अंतरिक्ष तक जा पहुंची है। जिस देश की नारी जाग्रत, शिक्षित और गुणवती होती है वही देश संसार में सबसे अधिक उन्नति करता है। इसी विचारधारा को ध्यान में रखकर हमारे यहां स्त्रियों को पुरुषों के बराबर अधिकार प्रदान किये गये और इनके लिए शिक्षा की समुचित व्यवस्था की गयी, तब किसी ने सोचा भी न था कि यह पिछड़ा हुआ नारीवर्ग पुरुषों से भी आगे निकल जायेगा।

विगत दशकों में हमारे देश में कृषि, उद्योग, यातायात, संचार, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि सभी क्षेत्रों में काफी तेजी से विकास हुआ है। जिसमें महिलाओं के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष योगदान को नकारा नहीं जा सकता है। आज महिलाएं पुरुषों के साथ सरकारी तथा निजी क्षेत्र में कंधे से कंधा मिलाकर कार्य कर रही हैं। महिलाओं ने अनेक अवसरों पर अपनी शक्ति सम्पन्नता का एहसास कराया है। आज पुरुष प्रधान समाज यह समझ चुका है कि विकास कार्यों में महिलाओं की सहभागिता के बिना वांछित लक्ष्य प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। महिलाओं को विकास की मुख्य

धारा से जोड़े बिना किसी समाज, राज्य एवं देश के आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। महिला कल्याण व सशक्तिकरण को राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक पोषण मिला। महिलाओं की स्थिति में सुधार तथा इनको विकसित समाज की मुख्यधारा में जोड़ने के लिए विधायी उपाय, कल्याणकारी योजनाएं तथा विकास कार्यक्रमों का संचालन किया गया। महिलाओं को अपने अधिकार तथा दायित्वों के प्रति सजग करने के लिए शिक्षा के समुचित अवसर उपलब्ध कराये गये, जिससे महिलाओं में स्वावलम्बन और आत्मनिर्भरता की भावना जाग्रत हुई है। महिलाएं समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन का स्वरूप लिए राष्ट्र की विकासधारा में सम्मिलित हो गई।

कुटीर उद्योग में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी

हाल ही के कुछ दशकों से महिलाओं ने बड़ी तादाद में घरेलू दायित्वों के अतिरिक्त कारखानों, बागानों, खदानों, सरकारी कार्यालयों, छोटे एवं बड़े पैमाने के उद्योगों, विनिर्माण एवं असंगठित क्षेत्र की उत्पादनशील गतिविधियों में अपनी पहचान बनाना प्रारंभ कर दिया है। भारत एक कृषि प्रधान देश है। जिसमें कृषि एक जीवन पद्वति है। जनसंख्या के दो तिहाई लोगों को जीविका प्रदान करने वाली कृषि देश की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार है। कृषि कार्य में जहां शारीरिक श्रमदान का प्रश्न है वहां 80 प्रतिशत कार्य महिलाएं ही करती हैं। कृषि में प्रत्यक्ष योगदान के बावजूद महिलाओं को कृषक की श्रेणी में नहीं रखा गया है। पुरुष भले ही कुछ समय हल चला लेता हो, लेकिन खेती के हर चरण में बुवाई, निराई से लेकर कटाई और अनाज घर ले आने तक हर काम महिलाएं ही करती हैं। सर्दी हो या गर्मी घुटनों तक कीचड़ पानी में खड़ी होकर वे खेतों को सींचती हैं तथा फसलों की देखभाल करती है। फसल कटाई, धान अलग करना, अनाज की सार संभाल करने के तमाम कार्य स्त्रियां ही करती हैं। फसलों एवं पशुओं की बीमारियों की रोकथाम, पशुधन के चारे पानी की व्यवस्था के अलावा जब पुरुष खेत खलिहान का काम करते हैं तब घर की देखभाल, बच्चों को संभालना और खेत पर खाना पहुंचाने का काम भी स्त्रियों के जिम्मे रहता है। गृह आधारित लघु एवं कुटीर उद्योगों में अधिकांश कार्य महिलाओं द्वारा ही सम्पन्न होता है। जैसे नमदा, दरी, रंगाई, छपाई आदि लघु उद्योगों में तथा बीड़ी, पापड़, अचार, ऊनी कपड़े आदि गृह उद्योगों में महिलाएं ही अधिक कार्य करती हैं।

महिलाओं के प्रत्यक्ष योगदान एवं सक्रिय भागीदारी के परिणामस्वरूप अनेक प्रकार के फलों, सब्जियों और अनाज के मामलों में भारत सबसे बड़ा उत्पादक देश बन गया है। सरकार द्वारा महिलाओं के लिए शिक्षा की समुचित व्यवस्था होने से महिलाओं में दक्षता, कौशल, ज्ञान एवं क्षमताओं का विकास हुआ है। महिलाएं विभिन्न योजनाओं व राष्ट्रीय कार्यक्रमों से जुड़ी, यथा संभव बहुमुखी विकास के मार्ग पर कदम बढ़ाया जिसमें वे कामयाब भी हुई हैं। महिलाएं अपनी बुद्धि, योग्यता के आधार पर सभी नौकरियों और व्यवसायों में आगे आने लगी हैं। लिपिक, शिक्षिका, अधिकारी, प्रशासनिक सेवाओं में तो महिलाएं अपने कदम जमा चुकी हैं इससे आगे पुलिस, इंजीनियरिंग, पायलट, चिकित्सा, सेना, नर्सिंग, पत्रकारिता, सौन्दर्य प्रसाधन, विशेषज्ञों आदि के रूप में भी उल्लेखनीय प्रगति प्राप्त कर ली है। खेलकूद, पर्वतारोहण के क्षेत्र शिक्षित महिलाओं से गौरवान्वित हुए हैं। एयरहोस्टस, रिशेप्सनिस्ट, सेल्सगर्ल्स, मॉडल, कला, नृत्य, संगीत आदि क्षेत्रों में महिलाओं का वर्चस्व स्थापित हुआ है। आज की महिलाएं केवल पत्नी, माता आदि सम्बन्धों के द्वारा ही अपना परिचय नहीं देती, बल्कि अपने आप को राष्ट्र के उत्तरदायी नागरिक के रूप में उपस्थित करती हैं।

आज 21वीं शताब्दी में प्रवेश करती हुई लाखों महिलाएं राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कार्यरत हैं। कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं बचा है, जहां महिलाओं ने देश का नाम रोशन न किया हो। वह राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री, राज्यपाल, विधायक, सांसद, न्यायधीश जिलाधीश बनकर राष्ट्र का

संचालन कर रही है। इन्दिरा गांधी से लेकर तीजनबाई तक, अरूंधती राय, कल्पना चावला, शुभा मुद्गल, पी.टी. उषा, बरखा दत्त, किरण बेदी, कर्णम मल्लेश्वरी जैसी लाखों महिलाएं हैं, जिनकी पहचान उनके पति या पिता से नहीं बल्कि उनसे पिता या पति की पहचान है। महिलाओं ने इस पुरुष प्रधान समाज में यह सिद्ध कर दिया है कि वे किसी भी तरह पुरुषों से कम नहीं हैं। वे हर क्षेत्र में आगे आई हैं बात चाहे चांद पर जाने की हो या समुद्री गोताखोरों की, घर में दायित्व निभाने की हो या सीमा पर सुरक्षा के सभी स्थानों पर महिलाओं ने देश के विकास में महत्वपूर्ण सराहनीय योगदान दिया।

आज की इस पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में लगभग हर काम की एक कीमत देखी जाती है। राष्ट्रीय आय में समस्त व्यक्तियों की आय को जोडकर आंका जाता है। इसमें लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाता है। व्यक्तिगत आय का स्तर अधिक है तो आर्थिक कल्याण भी अधिक माना जाता है। अतः प्रत्येक महिला कुछ भी कार्य करती है तो वह आर्थिक विकास में बराबर की भागीदार है। यदि वह किसी सेवा या व्यवसाय में कार्यरत नही हैं और घर पर ही जिम्मेदारियां संभालती है, बच्चों का पालन पोषण करती है तो भी वह पुरुष को बाहर के विकास कार्यों के लिए मुक्ति प्रदान कर, उचित और अनुकूल वातावरण देकर, प्रेरित और प्रोत्साहित कर, भावी पीढ़ी को शिक्षित कर देश के आर्थिक विकास में अपनी भागीदारी का सफलतापूर्वक निर्वहन कर रही है। आर्थिक जगत में महिलाओं के इस प्रवेश ने सूक्ष्म स्तर पर परिवार निर्माण एवं व्यापक स्तर पर राष्ट्र निर्माण को गति प्रदान की है।

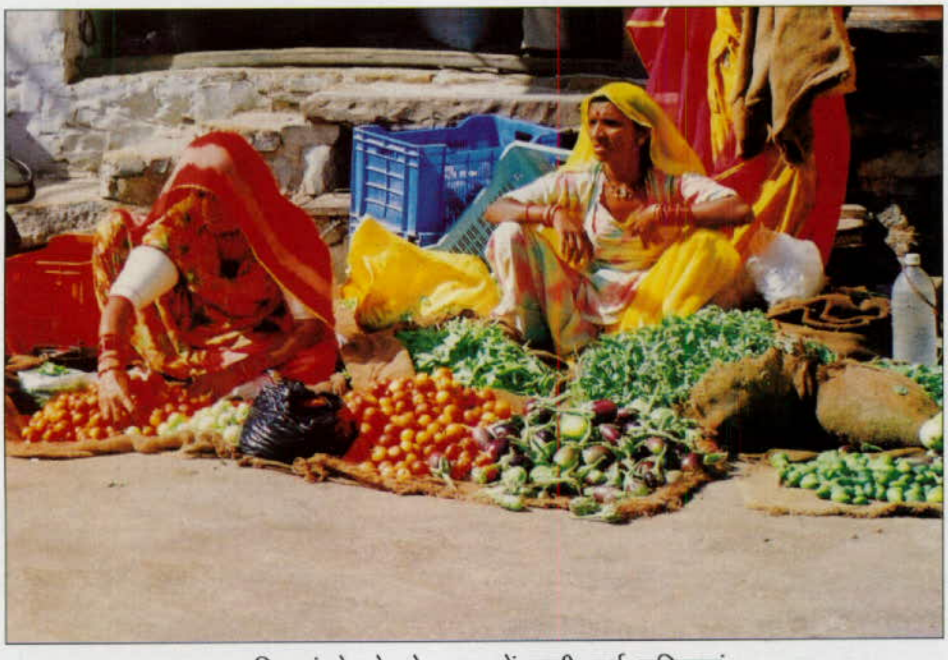

सब्जियां बेचने के काम में लगी हुई महिलाएं

स्वतंत्रता प्राप्ति से अब तक महिलाओं का सर्वांगीण विकास हुआ है। शिक्षा, रोजगार एवं व्यवसायों में महिलाओं का अनुपात बढ़ा है अर्थात आज भी महिलाएं आर्थिक, सामाजिक और बौद्धिक या मानसिक रूप से अधिक सक्षम, स्वतंत्र और प्रगतिशील हैं। लेकिन महिलाओं के विकास की प्रक्रिया कदापि संतोषजनक नहीं है। अनेक ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक, सामाजिक कारणों से भारतीय महिलाओं की स्थिति कमजोर बनी हुई है तथा शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य एवं आर्थिक भागीदारी से सम्बंधित संकेतक में भी पुरुषों की तुलना में महिलाओं की स्थिति निम्नतर बनी हुई है। ग्रामीण क्षेत्रों, पिछड़े इलाकों में एवं समाज के कमजोर वर्गों में तो महिलाओं की स्थिति और भी गंभीर है। शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं के विकास का अंतर चिन्ताजनक है। वर्ष 2001 में पुरुष साक्षरता दर 75.85 प्रतिशत तथा महिला साक्षरता दर 54.16 प्रतिशत है। आज भी देश में लगभग 30 करोड़ लोग निरक्षर हैं और उनमें भी अधिकतर महिलाएं हैं। आज भारत की अधिकांश महिलाएं अशिक्षा, अंधविश्वास, दरिद्रता एवं रूढियों से ग्रस्त हैं। केंद्र सरकार, राज्य सरकारें एवं गैर सरकारी संगठन इन समस्याओं को एक योजनाबद्ध तरीके से मिटाने के लिए प्रयासरत हैं।

आज सरकार महिलाओं के उत्थान, विकास और उन्हें सशक्त बनाने वाले सारे प्रयासों पर जोर दे रही हैं वैश्वीकरण के इस दौर में महिलाएं भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ हैं। जितना तीव्र गति से महिलाओं का विकास होगा उतनी ही तीव्र गति से देश प्रगति, खुशहाली और समृद्धि के पथ पर आगे बढ़ेगा।

(लेखक राजकीय महाविद्यालय कुशलगढ़ (राजस्थान) में अर्थशास्त्र विभाग में व्याख्याता हैं।)

ग्रामीण विकास और महिला रोजगार

सुदीप कुमावत

देश के ग्रामीण विकास में महिला रोजगार की महत्ता को सर्वोपरि समझते हुए केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा महिला रोजगार के विकास हेतु पिछले कुछ दशकों से अथक प्रयास किये जा रहे हैं। इसमें निश्चय ही ग्रामीण विकास में महिला रोजगार की भागीदारी बढ़ेगी और महिलाओं में आर्थिक आत्मनिर्भरता बढ़ने से समाज में उनकी स्थिति बेहतर होगी।

ग्रामीण विकास का महिला रोजगार से गहरा सम्बन्ध है। महिला रोजगार की प्रक्रिया में ग्रामीण विकास का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है। देश की 72.2 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में निवास करती है इसलिए ग्रामीण विकास भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। भारत की खुशहाली एवं समृद्धि का रास्ता गांव की गलियों में से होकर गुजरता है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी से लेकर इन्दिरा गांधी, राजीव गांधी और अब डॉ. मनमोहन सिंह तक सभी का यह मत है कि भारत की मूल आत्मा गांवों में ही निवास करती है। लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों की आर्थिक व सामाजिक स्थिति किसी से छिपी नहीं है क्योंकि ग्रामीण आधारभूत ढांचे और संरचनात्मक ढांचे की स्थिति ठीक नहीं है। इसलिए ग्रामीण विकास पर ध्यान देना आवश्यक है जिससे महिला रोजगार को बढ़ाया जा सके।

देश की ग्रामीण जनसंख्या में लगभग आधा भाग महिलाओं का है, अतः ग्रामीण विकास में महिलाओं की अनदेखी नहीं की जा सकती है। किसी भी देश की सामाजिक, आर्थिक प्रगति को जानने के लिए वहां की महिलाओं की स्थिति एवं स्तर का आंकलन करना अति आवश्यक है। समाज में महिलाओं की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। महिलाओं की शक्ति का समुचित उपयोग करने एवं सम्माननीय स्थान देने पर वे राष्ट्र के विकास को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित कर सकती हैं। यह सच है कि ग्रामीण महिलाओं को विकास की मुख्य धारा से जोड़े बिना किसी समाज, राज्य एवं देश के आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

ग्रामीण महिलाओं के जीवन स्तर में सुधार धीमी गति से हुआ है, जिसका मुख्य कारण ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का सीमित प्रभाव रहा है। इन कार्यक्रमों का लाभ दूर–दराज के इलाकों तक नही पहुंच पाया है। इसलिए योजना के प्रारूप में स्पष्ट रूप से उल्लिखित किया गया है कि "विभिन्न क्षेत्रों के विकास के लाभ से महिलाओं को वंचित नहीं रखा जाए और सामान्य विकास कार्यक्रमों के साथ–साथ महिलाओं के लिए विशेष कार्यक्रम भी चलाए जाएं। सामान्य विकास कार्यक्रमों में आर्थिक जैंडर संवेदनशीलता परिलक्षित की जानी चाहिये।"

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सर्वप्रथम सन् 1954 में सरकार ने ग्रामीण विकास कार्यक्रम की शुरूआत की, लेकिन महिलाओं की वास्तविक भागीदारी का प्रारम्भ सन् 1974 में हुआ। महिलाओं की व्यवहारिकता एवं निपुणता को प्रदर्शित करने के लिए गरीबी निवारण एवं विकास कार्यक्रमों की आवश्यकता पर बल दिया। ग्रामीण विकास के अन्तर्गत महिला रोजगार के प्रसार से महिलाओं की समाज के सामाजिक व आर्थिक क्षेत्र में सहभागिता बढ़ी है। भारत में पिछले तीन दशकों से महिलाओं की कार्य सहभागिता का प्रतिशत निरन्तर बढ़ रहा है। जैसा कि सन् 1995 में मानव विकास रिपोर्ट में बताया गया है कि ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की कार्य सहभागिता की दर अधिक है। भारतीय श्रम में महिलाओं का योगदान एक तिहाई है जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में 90 प्रतिशत व शहरी क्षेत्रों में 10 प्रतिशत महिलाएं असंगठित क्षेत्र में कार्यरत हैं।

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जिसकी 72.2 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में निवास करती है। यह जनसंख्या कृषि, कुटीर उद्योग, हथकरघा जैसे कार्यों पर निर्भर करती है। देश के आर्थिक विकास में कृषि का महत्वपूर्ण योगदान है। देश की 58 प्रतिशत जनसंख्या कृषि कार्य में लगी हुई है, जिसका सकल घरेलू उत्पाद में 25 प्रतिशत हिस्सा है। कृषि कार्य ग्रामीण जनसंख्या का मुख्य व्यवसाय है। कृषि क्षेत्र में महिला श्रमिकों द्वारा किये जाने वाले अनेक कार्य बुवाई, निराई–गुड़ाई, चारे की कटाई, अनाज निकलवाने आदि तक सीमित है। इसके अतिरिक्त महिलाएं मुर्गीपालन, पशुपालन और मधुमक्खी पालन के कार्य भी करती हैं। इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्र की 83 प्रतिशत महिलाएं कृषि और कृषि से सम्बन्धित कार्यों में लगी हुई हैं।

भारत सरकार ने ग्रामीण विकास में महिला रोजगार की भागीदारी बढ़ाने के लिए समय–समय पर नीतियों का निर्माण किया है। भारत में ग्रामीण विकास, रोजगार–संवर्द्धन व विभिन्न क्षेत्रों की विशेष किस्म की समस्याओं को हल करने के लिए कई प्रकार के कार्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं, जिनमें से कुछ विशेष कार्यक्रम निम्न प्रकार हैं :–

स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना

गांवों में रहने वाले गरीबों के लिए स्वरोजगार की यह योजना 1 अप्रैल, 1999 को प्रारम्भ की गई। इस योजना में पूर्व से चल रही 6 योजनाओं का विलय किया गया है। इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में अत्यधिक मात्रा में सूक्ष्म उद्योगों की स्थापना करना है। इस कार्यक्रम की मुख्य बातें निम्नलिखित हैं :–

- इस योजना के अन्तर्गत अनु.जाति / जनजाति को 50 प्रतिशत, महिलाओं को 40 प्रतिशत, विकलांगों को 3 प्रतिशत सहायता देने का लक्ष्य बनाया गया है।

● स्वयं सहायता समूहों की स्थापना का निर्णय किया गया जिसमें महिलाओं को वरीयता प्रदान की गई है।

● इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 1999–2004 तक 19.69 लाख स्वयं सहायता समूहों का गठन किया जा चुका है, जिसमें 45.67 लाख स्वरोजगारी शामिल हैं। इन्हें अब तक कुल 9385.11 करोड़ रुपये की सहायता दी गई है। इन कुल स्वरोजगारियों में 45.69 प्रतिशत अनुसूचित जाति/जनजाति से और 52.80 प्रतिशत महिलाएं हैं।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी कार्यक्रम

प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह और कांग्रेस अध्यक्ष श्रीमती सोनिया गांधी ने 2 फरवरी, 2006 को आंध्र प्रदेश के अनन्तपुर जिले में एक ऐतिहासिक और पथ–प्रदर्शक कानून, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी कार्यक्रम का शुभारम्भ किया।

इस योजना के अन्तर्गत मजदूरों की संख्या में कम से कम एक तिहाई महिलाओं को आवश्यक रूप से रोजगार प्रदान करने की व्यवस्था की गई है। यह योजना 27 राज्यों के 200 पिछड़े जिलों में लागू की गई है। योजना के क्रियान्वयन हेतु वर्ष 2005–06 में 23 अरब 67 करोड़ 57 लाख रुपये जारी किए गए तथा वर्ष 2006–07 के लिए 440157.07 लाख रुपये की धनराशि जारी की गई। इसके अंतर्गत 2 करोड़ 54 लाख 73 हजार 820 "जॉब कार्ड" जारी किए गए जिससे 89 लाख 43 हजार 703 लोगों ने काम की मांग की और 83 लाख 5930 लोगों को रोजगार उपलब्ध कराया जा चुका है, जिसमें महिलाओं की एक तिहाई भागीदारी है। अनुसूचित जाति/जनजाति और महिलाओं की भागीदारी इस कार्यक्रम में पर्याप्त रूप में बढ़ी है।

महिला स्वयं सिद्ध योजना

महिला सशक्तिकरण वर्ष 2001 में इस योजना की घोषणा केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री द्वारा 12 जुलाई, 2001 को केन्द्रीय परामर्श समिति की बैठक में की गई। इस योजना को महिलाओं के स्वयं सहायता समूहों के गठन के माध्यम से संचालित किया जाना है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य महिलाओं का सामाजिक–आर्थिक सशक्तिकरण करना है। योजना को चरणबद्ध तरीके से पूरे देश में लागू किया जाएगा। प्रारम्भ में प्रथम चरण में देश के 650 विकास खण्डों में इसे 116 करोड़ रुपये व्यय करते हुए संचालित करने का निर्णय लिया गया है। इस योजना के अन्तर्गत 9.30 लाख महिलाओं को लाभान्वित किया जा सकेगा।

स्वर्णिम योजना

यह योजना सरकार द्वारा पिछड़े वर्ग की ऐसी महिलाओं के लिए चालू की गई है जो गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करने वाले परिवारों की सदस्य हैं। इस योजना के अन्तर्गत पिछड़े वर्ग की महिलाओं को 50 हजार रुपये तक का ऋण उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गई है। इस ऋण पर ब्याज की दर मात्र 4 प्रतिशत निर्धारित की गई है। इस ऋण को महिलाएं 12 वर्ष की अवधि में जमा करा सकती हैं।

महिला डेयरी परियोजना

ग्रामीण महिलाओं के जीवन को सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से ऊंचा उठाने हेतु महिला डेयरी परियोजना की शुरूआत की गई है। इस परियोजना के अन्तर्गत देश में महिला दुग्ध सहकारी समितियों का गठन कर उनकी प्रत्यक्ष भागीदारी सुनिश्चित की गई है। आज इन समितियों को पूर्णरूप से महिलाओं द्वारा संचालित किया जा रहा है। इन समितियों के गठन से महिलाओं में आत्मविश्वास एवं नेतृत्व क्षमता के विकास की भावना जागृत हुई है। भारत सरकार के महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा संचालित कार्यक्रम 'समर्थन', प्रशिक्षण एवं रोजगार कार्यक्रम' के अन्तर्गत सन् 2004 में लगभग 9000 महिला दुग्ध समितियों के माध्यम से 3.6 लाख महिला सदस्य लाभान्वित हो रही थीं।

ग्रामीण विकास के अन्तर्गत महिला रोजगार की स्थिति में सुधार लाने हेतु इन कार्यक्रमों के अतिरिक्त भारत सरकार द्वारा महिलाओं के लिए सामान्य विकास कार्यक्रम भी चलाए जा रहे हैं। जो निम्न प्रकार हैं।

सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना

इस योजना का शुभारम्भ 25 सितम्बर, 2001 को किया गया था। यह योजना देश के 385 जिलों में चलाई जा रही है। इस योजना में 19 करोड़ कार्य दिवसों के लिए रोजगार जुटाने में मदद मिली है। योजना के अन्तर्गत 7 लाख कार्य शुरू किए गए, जिनमें से 3 लाख कार्य पूरे किये जा चुके हैं। इस योजना में अनुसूचित जाति/जनजाति के लोगों को 22.5 प्रतिशत सहायता देने का लक्ष्य रखा गया है।

प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना

आर्थिक सुधारों के लाभ समाज के सभी वर्गों तक पहुंचाने के लिए और ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों का जीवन स्तर ऊपर उठाने के लिए सामाजिक तथा आर्थिक आधारभूत ढांचे के निम्न तत्वों की पहचान की गई है जो इस प्रकार है :–

- प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना।
- ग्रामीण आवास (i) इन्दिरा आवास योजना (ii) समग्र आवास योजना।
- ग्रामीण जल आपूर्ति कार्यक्रम।
- ग्रामीण स्वच्छता।
- राजीव गांधी ग्रामीण विद्युतीकरण योजना।

इन क्षेत्रों में किए जा रहे प्रयासों में तेजी लाने के लिए प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना की शुरूआत 2000–01 में की गई।

खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग

इस आयोग की स्थापना सन् 1956 में की गई थी। यह गैर कृषि क्षेत्र में रोजगार के अवसरों का सृजन करता है। इसकी स्थापना निम्न उद्देश्यों के साथ की गई है।

● ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार उपलब्ध कराने का सामाजिक दायित्व।

● ग्रामीण व्यक्तियों को आत्मनिर्भर बनाने एवं एक समृद्ध ग्रामीण सामुदायिक भावना उत्पन्न करने का विस्तृत दायित्व।

खादी एवं ग्रामोद्योग का वर्ष 2001–02 के अनुसार उत्पादन 7551.52 करोड़ रुपये तथा रोजगार स्तर 62.64 लाख व्यक्ति था।

इस प्रकार भारत सरकार द्वारा ग्रामीण विकास में महिला रोजगार को प्रोत्साहन देने हेतु कई कार्यक्रमों का आयोजन किया जा रहा है, जिससे महिला रोजगार की स्थिति सुदृढ़ हो सके।

देश के ग्रामीण विकास में महिला रोजगार की महत्ता को सर्वोपरि समझते हुए केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा महिला रोजगार के विकास हेतु पिछले कुछ दशकों से अथक प्रयास किये जा रहे हैं, जिससे निश्चय ही ग्रामीण विकास में महिला रोजगार की भागीदारी बढ़ेगी और महिलाओं में आर्थिक आत्मनिर्भरता बढ़ने से समाज में उनकी स्थिति बेहतर होगी।

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का मूल्यांकन

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही ग्रामीण विकास की अनेक योजनाओं और कार्यक्रमों का संचालन किया जाता रहा है। प्रारम्भ में इन योजनाओं और कार्यक्रमों की संख्या काफी कम रही, जिनमें धीरे–धीरे वृद्धि की जाती रही है। इन कार्यक्रमों के संचालन से यह आशा की गई थी कि ग्रामीण विकास तीव्र गति से होगा और ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाले लोगों के जीवन स्तर में सुधार होगा। लेकिन जिस गति से कार्यक्रमों की घोषणा की गई और उनमें बदलाव किया गया उस गति से महिलाओं, गरीबों, पिछड़े वर्गों के लोगों के जीवन स्तर में परिवर्तन नहीं आ सका।

विभिन्न विकास कार्यक्रमों का ग्रामीण क्षेत्रों में अनुकूल प्रभाव नहीं पड़ने के पीछे प्रमुख कारण निम्न हैं : –

● महिलाओं के लिए विशेष कार्यक्रमों का क्रियान्वयन काफी कम मात्रा में और देर से किया गया।

● जिन व्यक्तियों को वास्तव में सुविधाएं मिलनी चाहिए थी उन्हें नहीं मिली।

● अशिक्षा के कारण लोगों को कार्यक्रमों की सही जानकारी उपलब्ध नहीं हो पाई।

इन सभी कमियों के बावजूद ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। वर्तमान में इन कार्यक्रमों के संचालन से देश की तस्वीर बदलती नजर आ रही है, जिसमें विशेषकर महिलाओं, गरीबों, पिछड़े वर्गों की सामाजिक आर्थिक स्थिति में परिवर्तन हुआ है।

निष्कर्ष

भारत में 1974 के बाद महिला रोजगार की स्थिति में काफी सुधार हुआ है एवं महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक स्थिति भी मजबूत हुई है। परन्तु इसे अभी भी संतोषजनक नहीं कहा जा सकता है। देश के ग्रामीण क्षेत्रों में महिला रोजगार की स्थिति दयनीय है। अतः आज भी देश में महिला रोजगार की ओर ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता है। उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सरकार द्वारा महिला रोजगार को प्रोत्साहन देने हेतु काफी कार्यक्रम क्रियान्वित किए गए हैं। इन कार्यक्रमों का महिला रोजगार पर सकारात्मक प्रभाव भी पड़ा है। महिलाएं हमारे देश की जनसंख्या का महत्वपूर्ण भाग होने के कारण देश के आर्थिक विकास को प्रभावित करती हैं। इसलिए ग्रामीण कार्यक्रमों का सुचारू रूप से संचालन किया जाना आवश्यक है। सरकार द्वारा महिलाओं के लिए सामान्य कार्यक्रमों के साथ–साथ विशेष कार्यक्रमों का संचालन भी किया जाना चाहिए, जिससे निश्चय ही महिलाओं की ग्रामीण विकास में भागीदारी बढ़ेगी।

(लेखक राजस्थान विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभाग में शोधकर्ता हैं।)

मानव तस्करी की शिकार महिलाओं और बच्चों की मुक्ति और पुनर्वास के लिए वृहद योजना

मानव तस्करी की शिकार महिलाओं और बच्चों की मुक्ति और पुनर्वास के लिए सरकार ने आज एक वृहद योजना शुरू की। इस योजना का नाम उज्ज्वला है। इसके अंतर्गत सीमा पार से तस्करी करके लाई गई महिलाओं और बच्चों को मुक्त करवाकर उन्हें वापस उनके देश भेजने की भी व्यवस्था की गई है।

मंत्रालय ने बहुआयामी योजना बनाई है जिसमें महिला तस्करी का मुकाबला करने के लिए कानून बनाना, नीतिगत और कार्यक्रमगत हस्तक्षेप शामिल हैं।

उज्ज्वला योजना में निम्नलिखित पांच प्रमुख बिंदु हैं:–

● रोकथाम – इसके तहत सामुदायिक निगरानी समूहों/कैशौर्य दलों का गठन, पुलिस, सामुदायिक नेताओं जैसे महत्वपूर्ण कर्मियों को इस समस्या के प्रति जागरुक और संवेदनशील बनाना, कार्य शालाओं का आयोजन, आदि।

● बचाव – शोषण वाले स्थान से पीड़ित को बचाकर सुरक्षित निकालना।

● पुनर्वास – इसमें पीड़ित को सुरक्षित आश्रयस्थल मुहैया कराना है। इसमें भोजन, वस्त्र, सांत्वना, चिकित्सकीय सुविधा, कानूनी सहायता, रोजगारपरक शिक्षा और आय के स्रोत वाली गतिविधियां शामिल हैं।

● पुनस्समाकलन – अगर पीड़ित महिला चाहे तो उसे दोबारा उसके परिवार/समुदाय में वापस भेजना।

● पुनर्वापसी – सीमा पार की पीड़ित महिलाओं को उनके मूल देश में वापस भेजना। (पसूका)

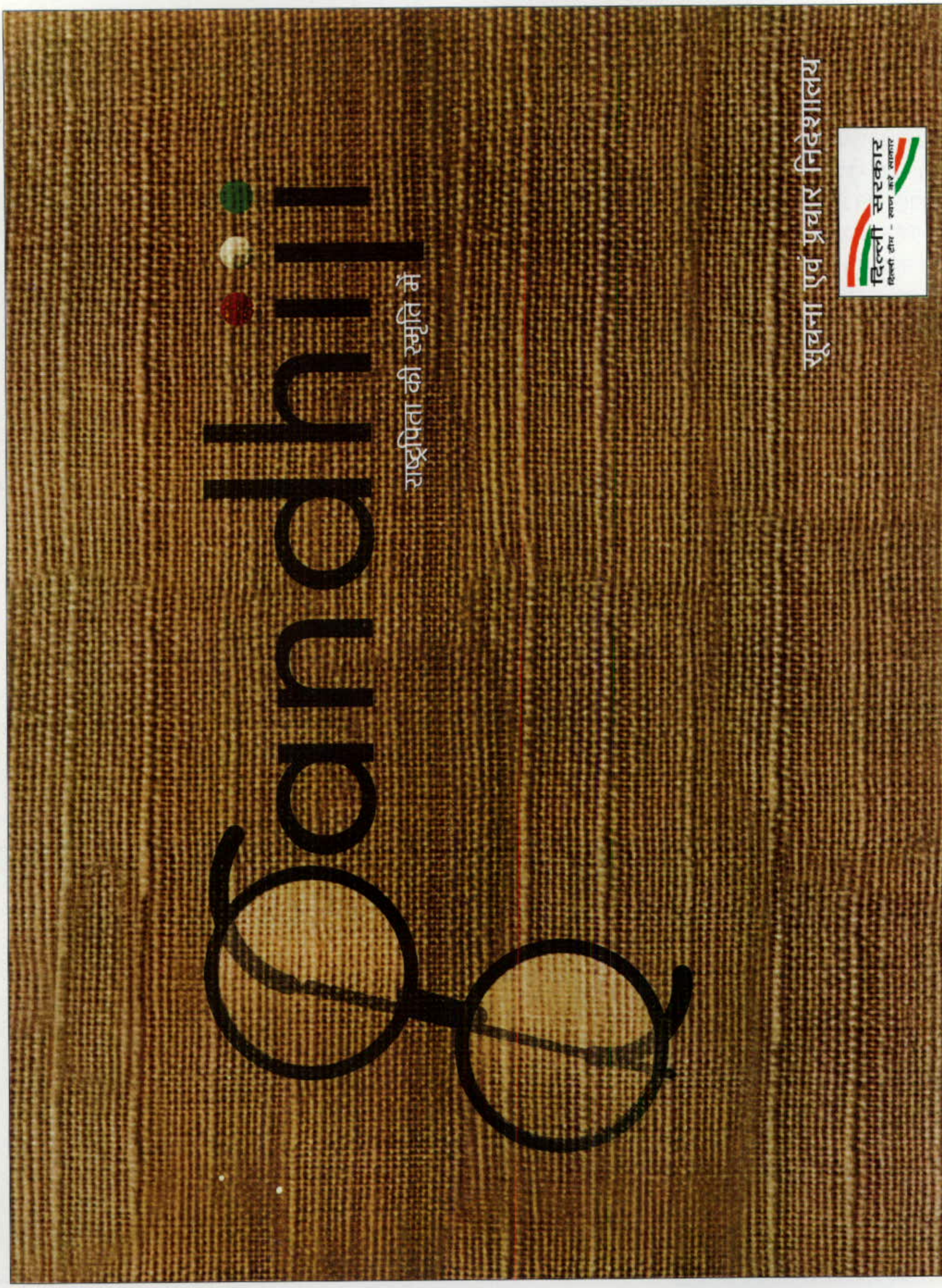
Gandhiji
राष्ट्रपिता की स्मृति में
सूचना एवं प्रचार निदेशालय
दिल्ली सरकार
KH-03/08/4

पशुधनःग्रामीण गरीबों का अपना एटीएम

संदीप कुमार

आम बोलचाल की भाषा में एटीएम (ऑटोमेटेड टेलर मशीन) ने **एनी टाइम मेनी** का रूप अख्तियार कर लिया है। एटीएम, डेबिट कार्ड, क्रेडिट कार्ड जैसे बहुतेरे विकल्पों ने लोगों की वित्तीय जिंदगी बदलकर रख दी है। लेकिन एक कटु सच यह भी है कि अभी तक एटीएम लाखों गांव–गिराम तक नहीं पहुंच पाया है। इस वजह से एटीएम के सीधे–सीधे प्रयोग से गरीब–गुरबे, ग्रामीण किसान, मजदूर अब भी महरुम हैं। बावजूद इसके आपको जानकर हैरत होगी कि ग्रामीण–गरीबों के पास बहुत पहले से ही एटीएम कार्ड जैसी एक ऐसी समानांतर व्यवस्था है जिससे वो कभी–भी कहीं–भी नगदी निकलवा सकते हैं और एटीएम जैसी यह व्यवस्था है पशुपालन। कह सकते हैं कि गरीबों के पास भले ही एटीएम कार्ड नहीं है लेकिन एनी टाइम मनी हासिल करने का एक जरिया जरूर है।

नगदी पैसों के लिहाज से पशुपालन की परिपाटी ग्रामीण इलाकों में सदियों से चली आ रही है। कम–से–कम झारखंड के ग्रामीण इलाकों में इसका अब भी धड़ल्ले से प्रयोग देखा जा सकता है। जब हाईटेक होती दुनिया में लोगों ने एटीएम और क्रेडिट कार्ड चमकाना शुरू कर दिया तो इससे गिरिडीह जिले (झारखंड) के बगोदर के एक छोटे से गांव घाघरा के रतिलाल महतो को कोई फर्क नहीं पड़ता। रतिलाल महतो जब चाहे तब बिना किसी एटीएम कार्ड के जहां चाहे वहां पैसे निकलवा–भुनवा सकते हैं। वजह यह है कि उनके पास दर्जन भर बकरे–बकरियां और गाय–बैल हैं। इसके अलावा वो मुर्गी और बत्तख भी पालते हैं। गरीब होने के बावजूद रतिलाल के पास जीव–जंतु के रूप में ऐसा जखीरा है जिसका मार्केट वैल्यू हजारों में है। रतिलाल के पास जीव–जंतुओं का जो जखीरा है उसे अगर हम जिंदा एटीएम कार्ड कहें तो क्या गलत है। रतिलाल ऐसी किस्मत वाले अकेले ग्रामीण नहीं हैं। वो तो एक प्रतीक हैं वैसे अनगिनत गरीब लोगों के जिनके लिए पशुपालन का मतलब एटीएम से कम नहीं है।

पशुपालन को ग्रामीणों का एटीएम समझना निहायत ही गलत नहीं होगा। पशुपालन आज भी पारंपरिक तरीके से होने वाली खेती और ग्रामीण अर्थव्यवस्था में अहम भूमिका निभाता है। झारखंड के ग्रामीण इलाकों में शायद ही कोई परिवार होगा जो पशुपालन न करता हो। पशुपालन का मतलब बड़ी संख्या में जानवरों का जखीरा ही खड़ा कर लेना नहीं है। एक–दो मवेशियां भी लोग पाल लेते हैं। झारखंड के गांवों में कमोबेश ग्रामीण बैल–गाय, भैंस–भैंसा, बकरा–बकरी आदि पालते हैं। इसके अलावा घरेलू पक्षियों में मुर्गा–मुर्गी, बत्तख, कबूतर भी पालने का प्रचलन है। बैल–भैंसा आदि का बड़े पैमाने पर खेती–बाड़ी में इस्तेमाल होता है। ग्रामीण लोग भैंस–गाय को दूध प्राप्ति के लिए और मवेशियों की संतति बढ़ाते रहने के लिए भी पालते हैं। दूध का खुद ही इस्तेमाल करने या फिर उसे बेचने का भी काम किया जाता है। इसी तरह से मुर्गी और बत्तख के अंडों की बिक्री करके भी पैसे कमाए जाते हैं। बैंकिंग के लहजे में कहें तो ये पशुधन दूध और अंडे के रूप में गरीबों को बराबर ब्याज देते रहते हैं। इसे आम के आम और गुठली के दाम के तौर पर भी आप देख सकते हैं।

लंबे समय तक मादा जंतुओं को पालने का फायदा भी गरीबों–किसानों को होता है। बकरियां–भेड़ें तो एक ही बार में दो–तीन मेमने तक जनती हैं। गाय–भैंस की संतति भी साल–दो साल में एकाध बार हो ही जाती है। अगर मुर्गी या फिर बत्तख की बात करें तो इनके अंडे का इस्तेमाल नहीं किया जाए तो इनसे भारी संख्या में जीवों की उत्पत्ति हो जाया करती है और फिर मुर्गियां बत्तखों का एक दड़बा–सा तैयार हो जाता है। अगर एक बार फिर बैंकिंग की तर्ज पर जीव–जंतुओं की संतति को देखा जाए तो इसे हम फिक्सड डिपोजिट कह सकते हैं। यानी एक नियत समय के बाद पशुधन का दुगुना–चौगुना हो जाना। ये तो अब साफ हो गया है कि ग्रामीण इलाकों में पशुपालन और पशुधन एक तरह से चलता–फिरता बैंकिंग–सिस्टम है। लेकिन इन सबसे बढ़कर जो बात पशुपालन के पक्ष में जाती है वो है इसका कभी–भी मुद्रा के रूप में परिवर्तित हो जाना। बैंकिंग और अर्थव्यवस्था

परिवारों के पास आधे दर्जन तक मवेशी होते हैं

शब्दावली में आप इसे लिक्विडिटी कह सकते हैं। चूंकि पशुधन का करेंसी (रुपये) में तुरत–फुरत परिवर्तन हो सकता है इसलिए कह सकते हैं कि पशुधन में इजी कन्वर्टिबिलिटी का गुण भी होता है। बैंकिंग बोलचाल में कहें तो पशुधन एक ऐसा मूलधन है जिससे बराबर ब्याज भी मिलता रहता है, एक नियत समय पर यह दुगुना–चौगुना भी हो जाता है और जरूरत पड़ने पर कभी भी इसके मार्फत रुपया निकाला (विद्ड्रावल किया) जा सकता है।

अपनी लिक्विडिटी और कन्वर्टिबिलिटी के लक्षण की वजह से ही पशुधन को आज के एटीएम के जमाने की टक्कर की चीज माना जाने लगा है। झारखंड की सामाजिक, आर्थिक और भौगोलिक स्थिति पर एक बार नजर फेरें तो ये साफ हो जाएगा कि कैसे पशुधन यहां के गरीब–गुरबों के लिए एटीएम से कम नहीं है। झारखंड में साढ़े बत्तीस हजार से ज्यादा गांव हैं जहां इस प्रदेश की अधिकांश आबादी रहती–बसती है। आधी से ज्यादा आबादी गरीबी रेखा से नीचे अपना पालन पोषण करती है। झारखंड की कमोबेश सवा दो करोड़ की आबादी में से ज्यादातर खेती–किसानी करते हैं या फिर खेतिहर मजदूर हैं। आंकड़ों की गवाही यही है कि झारखंड की जो अधिकांश आबादी गांवों में रहती है और खेती–किसानी करती है वो बहुत हद तक गरीबों की श्रेणी में ही आती है। जब गरीबी है और खेती ही एकमात्र गुजारा है तो ऐसे में लाजिमी है कि ग्रामीणों के सामने कई दफे रुपये–पैसों की मुश्किलें आती ही होंगी। ऐसी ही हालत में इन गरीब–गुरबों के लिए उनका पशुधन मसीहा का काम करता है।

झारखण्ड के गांवों में भैंस–भैंसा भी खूब पाला जाता है

ग्रामीण इलाकों में आज भी परंपराओं और रूढ़ियों पर बेहद जोर होता है। गाहे–बगाहे होने वाले उत्सवों–समारोहों के लिए ग्रामीणों को पैसे की जरूरत पड़ती है। त्योहार तो मानो खर्चा का दूसरा नाम ही होते हैं। होली–दीवाली हो या ईद–बकरीद या फिर करमा–सरहूल, हर पर्व मनाने में अंटी ढीली करनी पड़ती है। लड़कियों की शादी के लिए दहेज जुटाना पहाड़ के समान होता है। यहां तक कि श्राद्ध जैसे कामों में भी अच्छा–खासा खर्च हो जाता है। ये सब ऐसे हालात होते हैं जबकि गरीबों–किसानों के सामने पैसे जुटाने की सबसे ज्यादा दरकार पड़ती है। लेकिन किसानों के पास न तो कोई नौकरी है कि वे भविष्य–निधि (पीएफ) से रुपये निकालकर काम चला लें या फिर बैंक से आसानी से पर्सनल लोन ही हासिल कर सकें और न ही उनके पास कोई कारोबार–धंधा है कि रुपयों का आना–जाना लगा रहे। ऐसी ही विकट और संकट की स्थिति में गरीबों–किसानों को साहूकारों का दामन थामना पड़ता है। कभी अपने खेतों को बेचना पड़ता है तो कभी उसे गिरवी रखकर कर्ज लेना पड़ता है, वो भी काफी ज्यादा ब्याजदर पर। फिर हालत वैसी हो जाती है जिसके लिए एक ग्रामीण अर्थशास्त्रीय कहावत है कि भारतीय किसान कर्ज में जन्म लेते हैं, कर्ज में ही पलते–बढ़ते हैं और फिर कर्ज में ही मर जाते हैं। लेकिन पशुपालन ने बहुत हद तक ग्रामीणों को बेहाल होने से बचाया है।

झारखंड के ग्रामीण इलाकों में देखा गया है कि जब भी छोटी–मोटी तादाद में रुपयों की जरूरत पड़ती है तो वो पशुधन पर भरोसा करते हैं। मसलन जब भी अगर किसी को पांच सौ या हजार रुपये की जरूरत पड़ी तो वो एक–दो बकरे को बेचकर इतनी रकम जुटा सकता है। मोटी रकम के हालात में गाय–बैल या फिर भैंस–भैंसा की भी बिक्री कर दी जाती है। अच्छे नस्ल के इन मवेशियों के लिए पांच से पंद्रह हजार रुपये तक मिल जाया करते हैं। हारी–बीमारी में भी किसानों को पैसों की जरूरत पड़ती रहती है। चूंकि ग्रामीण इलाकों में चिकित्सा के मुकम्मल बंदोबस्त नहीं होते सो कस्बों–शहरों तक उन्हें दौड़ लगानी पड़ती है। ऐसे में कई बार यह भी देखा जाता है कि मरीज और मवेशी दोनों को जरूरतमंद लोग एक ही साथ लेकर बाजार पहुंचते हैं और फिर मवेशी बेचकर मरीजों का इलाज करवाकर लौटते हैं। यह सही है कि कई दफे गरीबों को उनके पशुधन का सही दाम नहीं मिल पाता लेकिन इतना तो जरूर होता है कि वक्त पर उनका पशुधन काम आ जाता है और कुछ–न–कुछ रकम दिला ही देता है। ऐसे में अगर मौके पर मवेशियों के बदले कुछ कम कीमत मिलती भी है तो इस रूप में लें कि हमने किसी दूसरे बैंक के एटीएम से पैसे निकलवाए जिसमें कुछ रकम सर्विस चार्ज के रूप में काट ली गई है।

ऐसा भी नहीं है कि पशुपालन सिर्फ मजबूरी में काम आने के उद्देश्य से ही किया जाता है। पशुपालन तो खेती का प्राण है। खेती और पशुपालन का संबंध तो चोली–दामन वाला होता है। एक के बिना दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती। इसलिए भी बैल–भैंसा जैसे मवेशियों के पालन पर किसानों–ग्रामीणों का खूब जोर होता

है। आज भी झारखंड में खेती अधिकतर पारंपरिक तरीके से होती है। यहां खेती में ट्रैक्टर की भूमिका अभी बेहद कम है। जुताई के काम में बैल–भैंसा ही हल खींचने का काम करते हैं। फसलों की कटाई होने के बाद मवेशियों की मदद से ही बैलगाड़ी–भैंसागाड़ी के मार्फत खेतों से उठाकर फसलों को घरों–खलिहानों तक लाया जाता है। झारखंड के किसान अधिकतर धान की खेती करते हैं। थ्रेसर–ट्रैक्टर हर किसान के बूते की बात नहीं इसीलिए झारखंडी किसान मवेशियों की मदद से ही फसलों से धान निकालते हैं और फिर पुआल–बिचाली अलग करते हैं। इसके लिए बाकायदा एक खलिहान बनाया जाता है जहां धान के पौधों को जमीन पर फैलाने के बाद उन पर मवेशियों के झुंड को बार–बार चलाया जाता है। इससे धान झड़कर अलग हो जाता है और पुआल अलग। मवेशियों की भूमिका यहीं खत्म नहीं होती। धान को घर तक पहुंचाने या उससे चावल निकालने के लिए मिल तक ले जाने और फिर चावल को घर तक बैलगाड़ी में ही लादकर ले जाया जाता है। केवल धान की एक फसल को ही ध्यान में रखते हुए भी अगर एक जोड़े बैल की भूमिका को देखें तो हमें अंदाजा हो जाएगा कि पशुपालन की खेती में क्या अहमियत है। दलहन, तिलहन समेत दूसरी फसलों की खेती के लिहाज से भी मवेशियों की भूमिका कम नहीं।

हालांकि, दूध बेचने का धंधा करने वालों और जानवरों की खरीद–बिक्री का कारोबार करने वालों के लिए तो पशुधन एक व्यवसाय है लेकिन गरीबों–किसानों के लिए पशुपालन एक जरूरत है उनकी खेती के लिए। लगे हाथ अगर ये पशुपालन उन्हें बिना पासबुक और एटीएम कार्ड के बैंकिंग की तमाम सुविधाएं चलते–फिरते दिला देती हैं तो इसे सोने पर सुहागा क्यों न कहें।

(लेखक स्टार न्यूज के पत्रकार हैं।)
ई–मेल : sandepk@starnews.co.in

गेहूं के क्षेत्रफल ने 275 लाख हेक्टेयर की सीमा को पार किया

कृषि मंत्रालय द्वारा संकलित आंकड़ों के अनुसार वर्तमान रबी मौसम में बुआई में अच्छी प्रगति हो रही है। गेहूं की बुआई पिछले वर्ष इसी दिन के 280.63 लाख हेक्टेयर की तुलना में 275.67 लाख हेक्टेयर की गयी है।

19.84 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में शरद चावल की बुआई की गयी है जबकि पिछले वर्ष 20.06 लाख हेक्टेयर में बुआई की गयी थी।

पिछले वर्ष 2007 में इस समय तक की गयी 69.4 लाख हेक्टेयर में मोटे अनाज की बुआई की तुलना में इस वर्ष 67.77 लाख हैक्टेयर में बुआई की गयी है। जौ एवं मक्के की पिछले वर्ष की तुलना में ज्यादा क्षेत्र में खेती की गयी है (जौ–7.57 लाख हैक्टेयर, मक्का–10.35 लाख हैक्टेयर)।

रबी तिलहन की पिछले रबी में 96.65 लाख हैक्टेयर में की गयी बुआई की तुलना में इस वर्ष 87.97 लाख हैक्टेयर में बुआई हुई है। सरसों/तोरी बीज का दायरा 59.04 लाख हैक्टेयर तक पहुंच गया है (पिछले रबी में, इस समय तक 66.67 लाख हैक्टेयर)।

रबी दाल की क्षेत्र 131.55 लाख हैक्टेयर (पिछले वर्ष 138.11 लाख हैक्टेयर) चना का क्षेत्र 79.95 लाख हैक्टेयर पहुंच गया है। (पिछले वर्ष इस समय तक 83.24 लाख हैक्टेयर की तुलना में)। (पसूका)

सदस्यता कूपन

मैं/हम **कुरुक्षेत्र** का नियमित ग्राहक बनना चाहता हूं/चाहती हूं/चाहते हैं।

शुल्क : एक वर्ष के लिए 100 रुपये, दो वर्ष के लिए 180 रुपये, तीन वर्ष के लिए 250 रुपये का (जो लागू नहीं होता, उसे कृपया काट दें)

डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर क्रमांक .... दिनांक .... संलग्न है।

कृपया ध्यान रखें, आपका डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर *निदेशक, प्रकाशन विभाग* को नई दिल्ली में देय हो।

नाम (स्पष्ट अक्षरों में) ....

पता ....

.... पिन ....

इस कूपन को काटिए और शुल्क सहित इस पते पर भेजिए :

विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक

प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, तल–7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली–110 066

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में कृषि

गिरीश चन्द्र पांडे

हाल ही में प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में राष्ट्रीय विकास परिषद की 54वीं बैठक में 11वीं पंचवर्षीय योजना (2007–12) के प्रारूप को स्वीकृति प्रदान की गयी। गौरतलब है कि 27 राष्ट्रीय लक्ष्यों के इस प्रारूप में सकल घरेलू उत्पाद की 10 प्रतिशत विकास दर और कृषि की 2 प्रतिशत की मौजूदा विकास दर को बढ़ाकर 4 प्रतिशत निर्धारित करते हुए कुल 36 लाख करोड़ रुपए के निवेश प्रस्तावों के साथ बजटीय सहायता की राशि 14 लाख करोड़ रुपए निर्धारित की गयी है जो 10वीं योजना से दुगनी है। योजना में केन्द्र और राज्यों के कुल आयोजना व्यय में पर्याप्त बढ़ोतरी कर इसे सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का 13.5 प्रतिशत रखा गया है, जबकि 10वीं योजना में यह 9.4 प्रतिशत था। साथ ही आगामी पांच वर्षों में ढांचागत क्षेत्र में निवेश को मौजूदा जीडीपी के 5 प्रतिशत से बढ़ाकर 9 प्रतिशत करने का लक्ष्य रखा गया है।

योजना में शिक्षित बेरोजगारों हेतु 7 करोड़ नए रोजगार सृजन करते हुए बेरोजगारी में 5 प्रतिशत तक कमी लाने, मातृ और शिशु मृत्यु दर में कमी, बालक–बालिका के बीच के लैंगिक अनुपात को कम करना और शिक्षा, स्वास्थ्य के साथ ही अल्पसंख्यकों के विकास के लिए 15 सूत्रीय कार्यक्रम बनाने पर भी जोर दिया गया है।

11वीं पंचवर्षीय योजना में गेहूं का उत्पादन बढ़ाने के लिए अतिरिक्त सहायता का प्रावधान

इस योजना में एक महत्वपूर्ण पहल खेती से जुड़ी महिलाओं की स्थिति की बेहतरी हेतु कई प्रावधान करना भी है। मसलन, भूमि सुधार अभियान प्रारम्भ करते हुए महिलाओं को जमीन देने की पहल करना और उन्हें स्वतंत्र रूप से मालिकाना हक प्रदान करने की व्यवस्था करना है। सरकारी जमीन का यह आबंटन किसी एक महिला या स्व–सहायता समूहों को भी देने की व्यवस्था है। इसके अलावा गरीब बेसहारा महिलाओं को जमीन खरीदने या पट्टे पर देने हेतु कर्ज रूप में मदद देने का भी प्रस्ताव है। इसमें दो राय नहीं कि गांवों में आज भी महिलाओं की उल्लेखनीय भूमिका होने के बावजूद उन्हें "फार्म वुमेन" की संज्ञा दी गयी है और उनकी आर्थिक तथा शारीरिक स्थिति ठीक नहीं है। उम्मीद करें कि इस पहल से उनकी स्थिति में सुधार होगा। योजना में विभिन्न क्षेत्रों और राज्यों की विषमताएं दूर करते हुए कृषि क्षेत्र पर विशेष ध्यान दिया गया है।

इसमें दो राय नहीं कि पिछले एक दशक से कृषि की नकारात्मक वृद्धि सरकार के लिए चिन्ता का विषय रही है और इसलिए पिछले 4–5 वर्षों में कृषि के विकास हेतु अनेक कार्यक्रम तैयार किए गये हैं। हाल ही में घोषित राष्ट्रीय किसान नीति के साथ ही मध्यावधि समीक्षा (2007–08) में उद्योग तथा ढांचागत क्षेत्र, मुद्रास्फीति, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा पूंजी प्रवाह, विदेशी ऋण, मुद्रा और बैंकिंग, पूंजी बाजार तथा सामाजिक क्षेत्र के साथ कृषि के विकास के लिए अनेक उपाय/सुझाव दिए गए हैं। राष्ट्रीय किसान नीति का मुख्य उद्देश्य किसानों की आय बढ़ाकर खेती को आर्थिक दृष्टि से और लाभकर बनाना है। साथ ही इस नीति में उपयुक्त मूल्य नीति और जोखिम प्रबन्धन, उत्पादकता, जमीन, पानी तथा सहायक सेवाओं में बढ़ोतरी करने पर भी जोर है।

यह नीति राष्ट्रीय किसान आयोग के अध्यक्ष कृषि वैज्ञानिक डॉ. एम.एम. स्वामीनाथन द्वारा केन्द्र सरकार को प्रस्तुत रिपोर्टों के परिप्रेक्ष्य में तैयार की गयी है। डा. स्वामीनाथन की रिपोर्ट में अन्य बातों के साथ–साथ कृषि को एक बेहतर आय का साधन बनाना और इस हेतु कृषक परिवारों द्वारा उत्पादित उपज के बजाय उसकी निवल आय से मापना, न्यूनतम समर्थन मूल्य के बजाय बाजार की मौजूदा कीमतों पर अनाज खरीद की सिफारिश करना और कृषि ब्याज दर को घटाकर 4 प्रतिशत करना शामिल है। इसी प्रकार मध्यावधि समीक्षा में किसानों की आय में सुधार लाने हेतु चार महत्वपूर्ण कारकों अर्थात् भूमि की उत्पादकता, बाजार कनेक्टिविटी, जोखिम प्रबन्धन और कृषि भिन्न फसलों तथा सम्बन्धित गतिविधियों सहित मूल्यवर्धन का उल्लेख किया गया है।

सिंचाई की सुविधा बढ़ाकर और बंजर भूमि में सुधार लाकर शस्यगत क्षेत्र को बढ़ाना, प्रौद्योगिकी तथा प्रबन्ध गतिविधियों का

सृजन तथा अन्तरण, उत्पादन स्तर में सुधार हेतु प्रशिक्षण तथा विजिट सिस्टम को तेज करना शामिल है जबकि दूसरे कारकों में उर्वरक, प्रमाणित बीजों, संस्थानिक ऋणों की व्यवस्था के साथ ही उपभोक्ताओं तथा बाजारों से सम्पर्क बढ़ाने, कृषि प्रसंस्करण, विपणन, भंडारण और आपूर्ति व्यवस्था को चुस्त–दुरुस्त करने पर जोर दिया है। जोखिम प्रबन्धन के तीसरे महत्वपूर्ण कारक के अन्तर्गत वर्षा का अनिश्चित मिजाज, घरेलू तथा वैश्विक मूल्य में उतार–चढ़ाव का सामना करने के लिए समर्थन मूल्य, कृषि बीमा जैसे परम्परागत साधनों के सुदृढ़ीकरण पर ध्यान दिया गया है। मूल्यवर्धन के अन्तर्गत पशुपालन, बागवानी तथा अन्य सम्बद्ध गतिविधियों का विकास कर किसानों को दीर्घकालिक स्तर पर लाभ प्रदान करना शामिल है। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (2007–08) तथा राष्ट्रीय कृषि विकास योजना के अन्तर्गत कृषि को पुनर्जीवित करने तथा उसकी गिरावट की प्रवृत्ति पर रोक लगाने का प्रयास किया गया है।

समीक्षा में इस बात को स्पष्ट तौर पर इंगित किया गया है कि यदि हम कृषि क्षेत्र की विकास दर 4 प्रतिशत प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें इस पर निरन्तर फोकस करना होगा। इसके अलावा, कृषि क्षेत्र में कतिपय संरचनात्मक परिवर्तनों की ओर भी ध्यान खींचा गया है जिनमें सबसे महत्वपूर्ण बढ़ते शहरीकरण की वजह से कृषि कामगारों का कृषि भिन्न गतिविधियों में तेजी से उन्मुख होना है। इसके अतिरिक्त अपेक्षाकृत कम खाद्यान्न उत्पादक राज्यों से कृषि कामगारों तथा सीमान्त किसानों का पंजाब, हरियाणा, पश्चिम उत्तर प्रदेश तथा आन्ध्र प्रदेश जैसे समृद्ध राज्यों का विस्थापित होना है। निश्चित तौर पर इससे बिहार, उड़ीसा जैसे बीमारु राज्यों की कृषि प्रभावित हुई है और साथ ही क्षेत्रीय असंतुलन को बढ़ावा मिला है। वर्ष 2000–01 में औसतन प्रचालनात्मक जोत का घटकर 1.32 हेक्टेयर होने का उल्लेख है और मौजूदा 120 मिलियन प्रचालनात्मक जोतों का लगभग 18 प्रतिशत भाग 2 हेक्टेयर से ऊपर है।

समीक्षा में स्पष्ट रूप से कृषि की मंदी के कारणों को भी रेखांकित किया गया है जिनमें मृदा पोषण तत्वों तथा जैव तत्वों का अत्यधिक दोहन, वर्षा कमी और अपर्याप्त जल प्रबन्धन, उर्वरकों का संतुलित तथा इष्टतम उपयोग न करना, एक ही जेनेटिक मेटिरियल की लगातार खेती, प्रमाणित बीजों की अनुपलब्धता, मिलावटी बीजों की बिक्री रोकने हेतु कानून प्रवर्तन मशीनरी का अभाव, जोत का घटता आकार, विपणन–सम्बन्धी फसल पर प्रबन्धन ढांचागत सुविधाओं की अपर्याप्तता शामिल है। योजना आयोग की बैठक में प्रधानमंत्री का यह भी कहना था कि वित्त मंत्रालय किसानों के कर्ज की समस्या के समाधान हेतु कार्यक्रम तैयार करने के लिए कृषि मंत्रालय के साथ विचार–विमर्श कर रहा है जिसका ब्यौरा शीघ्र ही घोषित कर दिया जाएगा। कृषि में सिंचाई की समस्या के समाधान के बारे में योजना आयोग में एक कार्यबल भी गठित किया गया है जो सिंचाई सुविधाओं के विस्तार हेतु संसाधनों की आवश्यकता पर गौर करेगा। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि देश की 60 प्रतिशत खेती वर्षा पोषित है। प्रधानमंत्री ने कुछ समय पहले गठित राष्ट्रीय वर्षा सिंचित क्षेत्र प्राधिकरण का उल्लेख करते हुए वर्षा जल संचयन की आवश्यकता पर भी जोर दिया ताकि उसका वर्षा पोषित क्षेत्र में उपयोग हो सके। यह वास्तव में विडम्बना है कि लगभग 79 हजार करोड़ रुपए खर्च करने के बावजूद धरती प्यासी है और 7 मिलियन हेक्टेयर भूमि ही कवर हो सकती है।

इसके अलावा जलवायु परिवर्तन से भी कृषि उत्पादन प्रभावित हुआ है और सूखा, बाढ़ तथा समुद्र का जल स्तर बढ़ने जैसी चुनौतियां सामने आयी हैं। फलस्वरूप, गेहूं, चावल और दाल की पैदावार प्रभावित हुई है। प्रधानमंत्री ने बैठक में जिस खाद्य संकट की बात की है उसके मूल में उनकी यही चिन्ता निहित है। इसलिए कृषि तथा सहकारिता विभाग ने वर्ष 2007–08 में चावल, गेहूं तथा दाल का क्रमशः 10 मिलियन, 8 मिलियन और 2 मिलियन टन उत्पादन बढ़ाने के लिए राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन की शुरूआत की है। राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा 11वीं योजना के दौरान विशेष अतिरिक्त केन्द्रीय सहायता से प्रायोजित राष्ट्रीय कृषि विकास योजना को प्रारम्भ किया गया है जिसके तहत आगामी चार वर्षों में कृषि क्षेत्रों में सार्वजनिक निवेश के जरिए 25000 करोड़ रुपए खर्च करने की व्यवस्था है। इसके साथ ही सरकार ने वर्ष 2004–05 से तीन वर्ष की अवधि यानी 2007–08 तक कृषि तथा सम्बद्ध गतिविधियों के लिए ऋण प्रवाह को दुगुना कर दिया है और 31 अगस्त 2007 की स्थिति के अनुसार 2,37,880 करोड़ रुपए की स्वीकृत राशि से वाणिज्यिक बैंकों, सहकारी बैंकों तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों द्वारा कुल लगभग 6.79 करोड़ रुपए के किसान क्रेडिट कार्ड जारी किए जा चुके हैं। उन्होंने जीडीपी में कृषि के घटते योगदान जो वर्तमान में लगभग 20 प्रतिशत है, पर भी चिंता व्यक्त की और उसमें निवेश तथा सस्ते ब्याज ऋण मुहैया कराने की वकालत की। सब्सिडी का लाभ जरूरतमंद तथा गरीब लोगों तक न पहुंचने पर निराशा व्यक्त करते हुए उसे विवेक सम्मत बनाने पर जोर दिया।

इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि जब तक सब्सिडी बिल में पर्याप्त कटौती नहीं की जाती तब तक केन्द्र तथा राज्य सरकारों की राजकोषीय स्थिति की पुनर्बहाली सम्भव नहीं है। लेकिन यह भी वास्तविकता है कि सभी प्रकार की सब्सिडियों पर एक समान नजरिया नहीं रखा जा सकता। गांवों के गरीब परिवारों के लिए लक्षित राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम को ही

लें, इसके लक्ष्य एवम् उद्देश्यों के प्रति किसी को सन्देह नहीं। इसलिए इस कार्यक्रम में व्याप्त भ्रष्टाचार की वजह से इसको बंद नहीं किया जा सकता बल्कि हमें भ्रष्टाचार का उन्मूलन कर इस योजना को आगे बढ़ाना होगा। प्रधानमंत्री ने स्वीकार किया कि समावेशी विकास की अवधारणा तभी मूर्त रूप ग्रहण कर सकती है जबकि उद्योग और सेवा क्षेत्र के साथ-साथ कृषि भी उसी रफ्तार में आगे बढ़े। उन्होंने कृषि पर जनसंख्या के बढ़ते दबाव को कम करने के लिए औद्योगीकरण की आवश्यकता भी जताई तथा उसे एक राष्ट्रीय आवश्यकता बताया। उनका स्पष्ट मत है कि कृषि पर आश्रित दो तिहाई आबादी की खेती के अलावा अन्य क्षेत्रों में रोजगार दिलाना आज समय की मांग है। उनका मत है कि कृषि के बजाय हजारों युवाओं को उद्योगों में रोजगार दिलाकर हम बेरोजगारी के साथ ही कृषि के संतुलित विकास में सहभागी बन सकते हैं। उनका स्पष्ट मत है कि कृषि क्षेत्र में निश्चित तौर पर यदि किसानों को बदहाली से बचाना है तो अगले पांच वर्षों में लगभग 1 करोड़ लोगों को कृषि से निकालकर दूसरे काम धन्धों में नियोजित करना होगा।

यह तथ्य है कि बढ़ती आबादी का भरण-पोषण मात्र कृषि से सम्भव नहीं है और इसीलिए आज कृषि किसानों के लिए घाटे का सौदा हो गयी है। लेकिन यहां हम इस वास्तविकता से मुंह नहीं मोड़ सकते कि गांवों में उचित ढांचागत सुविधाओं के अभाव की वजह से और भौगोलिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए बड़े उद्योगों की स्थापना में पर्याप्त दिक्कतें हैं, इसलिए स्थानीय आवश्यकताओं के परिप्रेक्ष्य में कुटीर तथा ग्रामीण उद्योगों को पुनर्जीवित करना आज समय की मांग है। गांवों में खादी तथा ग्रामोद्योग की विशेष भूमिका है, इसलिए उसे भी पुनर्जीवित करने की जरूरत है। ग्रामीण उत्पादों के निर्माण, विपणन तथा उनके वितरण में स्व-सहायता समूहों की भी हम अनदेखी नहीं कर सकते। इसलिए ऐसे समूहों के विकास हेतु हमें दोतरफा प्रयास करना चाहिए। पहला इन समूहों के विकास के लिए बैंकों तथा सहकारी सोसाइटियों द्वारा इन्हें उदार शर्तों पर ऋण मुहैया कराया जाए और दूसरा, महिलाओं को विशेष रूप से ऐसे समूहों के निर्माण में प्राथमिकता दी जाए ताकि उनका सशक्तिकरण भी हो।

योजना का उद्देश्य कृषि को बेहतर आय का साधन बनाना है

कृषि पर चूंकि सेज की मार भी पड़ी है और किसानों को औने-पौने दामों में अपनी उर्वर जमीन से हाथ धोना पड़ा है। किसानों के भारी विरोध के बावजूद सरकार ने भविष्य में केवल प्राइम कृषि भूमि यानि दो फसल देने वाली जमीन के अधिग्रहण के बजाय अब बंजर भूमि को अधिग्रहित करने का निर्णय लिया है और सेज के लिए उदार राहत तथा पुनर्वास नीति बनाने पर भी योजना में जोर दिया गया है। हम इस तथ्य को भी नजरंदाज नहीं कर सकते कि किसानों को उत्पाद के सही दाम उपलब्ध कराने और ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने में निगमित क्षेत्र की भी महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। इसलिए उन्हें गरीबी दूर करने हेतु ग्रामीण परियोजना में उदारता से निवेश करना चाहिए। सरकार का भी यह प्रयास होना चाहिए कि वे कृषि को उद्योग क्षेत्र के बैरक्स विकसित करे ताकि सार्वजनिक तथा निजी भागीदारी सम्भव हो सके। इसके अलावा, राज्यों में स्थित कृषि अनुसंधान केन्द्रों में कार्यरत वैज्ञानिकों को प्रयोगशालाओं से बाहर निकलकर गांवों में खेतों में जाकर मृदा किस्मों और स्थानीय भौगोलिक परिस्थितियों का अध्ययन कर उसके अनुरूप बीजों का विकास करना चाहिए।

11वीं योजना में विशेष रूप से पर्वतीय राज्यों और पर्वतीय इलाकों हेतु एक समान विकास सुनिश्चित करने के लिए एक कार्यबल का गठन करना निश्चित तौर पर उल्लेखनीय पहल कही जा सकती है। निःसन्देह रेगिस्तानी, मैदानी और पहाड़ी इलाकों की भौगोलिक, आर्थिक तथा संसाधनिक संरचना की दृष्टि से विकास की मूल आवश्यकताएं तथा प्राथमिकताएं भी भिन्न-भिन्न हैं। इसलिए इस पहल से गांव तथा शहर के बीच की खाई को पाटने में मदद मिलेगी, गांवों से शहरों की ओर तेजी से हो रहा पलायन रुकेगा, गांव फिर आबाद होंगे। परन्तु यहां यह भी उल्लेखनीय है कि पर्वतीय इलाकों में खेती आजीविका का एकमात्र जरिया होने के बावजूद उससे साल भर का अनाज ग्रामीणों को नहीं मिलता। इसका कारण जहां खेतों का छोटा आकार है वहीं जलवायु परिवर्तन की वजह से भी उनकी कृषि अतिवृष्टि और अनावृष्टि की शिकार रही हैं। उनके लिए

सब्सिडी तथा न्यूनतम समर्थन मूल्य कोई मायने नहीं रखते क्योंकि उनके पास इतना अनाज नहीं होता कि वे उसे मंडी में जाकर बेचें और मोलभाव करें।

इसी प्रकार रासायनिक खाद, बीज खरीदने के लिए भी उनके पास पैसे नहीं है, वे परम्परागत तौर पर जैविक खाद और कम्पोस्ट खाद का उपयोग करते हैं। इसलिए खेती के साथ यदि पशुधन के रखरखाव पर सरकार समुचित ध्यान दे, उनके लिए पौष्टिक चारे की व्यवस्था करे और उनके स्वास्थ्य पर ध्यान दे तो इससे दोतरफा फायदा होगा। पहला, गांवों में दुग्ध क्रांति आएगी और ग्रामीण कुपोषण जो कि देश के लिए एक गम्भीर चुनौती है, उससे निजात मिलेगी और दूसरा साथ ही फसल हेतु खाद आदि की आवश्यकता की भी पूर्ति होगी। इसके अलावा बागवानी मिशन के अन्तर्गत फल, सब्जी, मसाले, फूल, कुक्कुटपालन, मछली पालन पर जोर देना भी आवश्यक है। खाद्य प्रसंस्करण, भंडारण विपणन, ग्रामीण ज्ञान केन्द्रों की स्थापना और आर्गनिक कृषि पर भी ध्यान देने की जरूरत है।

यह भी वास्तविकता है कि गांवों में आज भी किसानों को बीज खाद और कृषि उपस्करों की खरीद हेतु साहूकार पर निर्भर रहना पड़ता है। यह अलग बात है कि बैंकों की शाखाओं का ग्रामीण क्षेत्रों में विस्तार जारी है और सरकार बराबर बैंकों को किसानों को ऋण मुहैया कराने में कोताही न बरतने के निर्देश भी देती रही है। परन्तु जमीनी हकीकत कुछ और है। साहूकार/ठेकेदार पर किसानों की निर्भरता की वजह से वह अपना कर्ज चुकाने के लिए अपनी उत्पादित फसल को सस्ते दामों में उसे बेचने को विवश है। इसलिए बैंकों से किसान को सस्ती तथा उदार शर्तों पर ऋण उपलब्ध हो, सूखे तथा बाढ़ की स्थिति में उनके कर्ज माफ हों और उनकी फसल का बीमा सुनिश्चित हो। इन सबके लिए ग्राम पंचायत की उल्लेखनीय भूमिका हो सकती है। इसलिए ग्राम पंचायतों का सशक्तिकरण किया जाए। साथ ही ग्रामीणों के सर्वांगीण विकास हेतु उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य और पर्यावरण पर भी ध्यान देना होगा। राज्यों का यह भी दायित्व है कि वे केन्द्र सरकार की पठारी इलाकों में गहरे खड्डों और कुओं के जरिए जल एकत्रीकरण कर भूजल स्तर बढ़ाने की कृत्रिम तरीके की योजना पर अमल करें। इससे उन्हें खेती के लिए सिंचाई की सुविधा उपलब्ध होगी।

इस प्रकार कृषि मौजूदा दौर में अनेक संकटों का सामना कर रही है और उसके समक्ष बहुआयामी चुनौतियां हैं। डेढ़ दशक पहले के आर्थिक सुधारों से भारतीय खेतीबाड़ी और किसानों की जिन्दगी बदतर हुई है यहां तक तक कि उन्हें आत्महत्या करने को भी विवश होना पड़ा है। यही नहीं, तीन दशक के अंतराल के बाद भारत को विदेशों से खाद्यान्न का भी आयात करना पड़ा है। लेकिन 11वीं पंचवर्षीय योजना में कृषि के विकास की जो तस्वीर खींची गयी है उससे एक उम्मीद बंधती जरूर है बशर्ते राज्य केन्द्र के साथ पूर्ण सहयोग करें। हम इस तथ्य को नजर अंदाज नहीं कर सकते कि कृषि राज्यों का विषय है और इस सम्बन्ध में केन्द्र की भूमिका उत्प्रेरक की है। इसलिए प्रत्येक राज्य अपनी स्थानीय जलवायु की दशा, मौसम, सिंचाई व्यवस्था और मिट्टी की किस्मों के अनुरूप कृषि नीतियां तैयार करे और बराबर योजना आयोग तथा केन्द्रीय कृषि मंत्रालय के सम्पर्क में रहे। उन्हें लम्बी अवधि के बजाय लघु तथा मध्यावधि योजनाओं को प्रोत्साहन देना चाहिए। कहना न होगा कि देश में गरीबी, बेरोजगारी व क्षेत्रीय असमानता परस्पर अन्तर्सम्बन्धित हैं, इनसे छुटकारा तभी मिल सकता है जब भारत की अर्थव्यवस्था का मेरुदंड कही जाने वाली कृषि के विकास हेतु केन्द्र तथा राज्य सरकारें अपनी कमर न कस लें। हमें इस वास्तविकता को भी ध्यान में रखना होगा कि किसी देश की प्रगति का मापदंड विकास दर नहीं बल्कि आम आदमी का खुशहाल जीवन होता है और वह तभी सम्भव है जबकि कृषि खुशहाल हो।

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं।)
ई-मेल :-girishchpande@yahoo.com

बिजली उत्पादन लक्ष्य

ग्यारहवीं योजना अवधि के दौरान अतिरिक्त 78,577 मेगावॉट बिजली उत्पादन क्षमता पर जोर दिया गया है। यह क्षमता हासिल करने के लिए जल विद्युत क्षेत्र में कुल 16553 मेगावाट की 53 बिजली परियोजनाओं, ताप ऊर्जा के क्षेत्र में 58644 मेगावॉट की 95 बिजली परियोजनाओं और परमाणु क्षेत्र में 3380 मेगावाट की 4 विद्युत परियोजनाओं की पहचान की गयी है।

राष्ट्रीय बिजली योजना के अनुसार प्रस्तावित क्षमता के जुड़ने से 11वीं योजना के अंत में 550 मीटर कोयले, 33 मी.ट. लिग्नाइट और 89 एमएमएससीएमडी गैस/एलएनजी की जरूरत होगी। इसके अतिरिक्त 11वीं योजना अवधि के दौरान करीब 3.61 लाख श्रमशक्ति की जरूरत होगी जिसमें से करीब 2.76 लाख तकनीकी और करीब 85000 गैर तकनीकी श्रम शक्ति होगी। (पसूका)

सहकारी किसान क्रेडिट कार्ड–उपयोगिता व प्रगति

प्रो. संदीपसिंह मुंडे एवं डॉ. रजनी वशिष्ठ

किसानों को महाजनों व साहूकारों के शोषण से मुक्त कराने व कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए संस्थागत साख की आवश्यकता है। इसी संस्थागत साख के अंतर्गत सहकारी संस्थाओं द्वारा कृषकों को अल्पकालीन, मध्यकालीन व दीर्घकालीन अवधि के सहकारी ऋण उपलब्ध करवाये जाते हैं।

'सहकारी किसान क्रेडिट कार्ड' की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इस योजना का लाभ कृषक ही उठाते हैं और कृषक को नगदी साख के साथ खाद, बीज व कीटनाशक आदि समिति के माध्यम से उपलब्ध होते हैं। काश्तकार नगदी साख का प्रयोग कृषि कार्यों में न करके कई बार अन्य घरेलू कार्यों में खर्च कर लेता है परन्तु समिति से उपलब्ध खाद, बीज व कीटनाशक का प्रयोग तो उसे कृषि कार्यों पर करना पड़ता है क्योंकि बैंक द्वारा स्वीकृत साख में 70 प्रतिशत नगद व 30 प्रतिशत साख का खाद, बीज व कीटनाशक उपलब्ध करवाया जाता है, जिससे काश्तकारों को अच्छी खाद, बीज व कीटनाशक उपलब्ध होने से निश्चित रूप से कृषि उत्पादन बढ़ता है।

सहकारिता आंदोलन परस्पर सहयोग के आधार पर आर्थिक विकास व ग्रामीण विकास का मुख्य आधार माना जाता है। सहकारिता का मुख्य उद्देश्य शोषणविहीन समाज की स्थापना करना है। राजस्थान राज्य की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि कार्य करके अपना जीवनयापन करती है और कृषि प्रमुखतः प्रकृति पर निर्भर है। इसलिए कई बार फसल का उत्पादन नहीं हो पाता जिससे किसान को आगामी फसल का उत्पादन करने हेतु ऋण लेना पड़ता है। यह ऋण किसान सदियों से महाजनों व साहूकारों से लेता आया है। ये साहूकार व महाजन ऋण पर मनमर्जी से ब्याज लगाकर किसानों का शोषण करते रहे हैं, जिससे किसान लगातार ऋण के बोझ से दबता आया है। अतः किसानों को महाजनों व साहूकारों के शोषण से मुक्त कराने व कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए संस्थागत साख की आवश्यकता है। इसी संस्थागत साख के अन्तर्गत सहकारी संस्थाओं द्वारा कृषकों को अल्पकालीन, मध्यकालीन व दीर्घकालीन अवधि के ऋण उपलब्ध करवाये जाते हैं। राजस्थान राज्य में सहकारी ऋण वितरण की त्रिस्तरीय व्यवस्था कार्यरत है। राज्य स्तर पर राजस्थान राज्य सहकारी बैंक लि., जिला स्तर पर केन्द्रीय सहकारी बैंक व गांव स्तर पर ग्राम सेवा सहकारी समितियां कार्यरत हैं। केन्द्रीय सहकारी बैंक अपनी शाखाओं के माध्यम से ग्राम सेवा सहकारी समितियों के सदस्यों को सहकारी साख सुविधाएं उपलब्ध करवा रहे हैं। कृषक उपलब्ध ऋण का प्रयोग खाद, बीज, कीटनाशक, श्रमिकों की मजदूरी आदि के भुगतान करने के लिए करते हैं। कृषक द्वारा इस प्रकार के ऋणों का भुगतान फसल काटने के बाद किया जाता है।

राज्य में भारत व पाकिस्तान की अन्तर्राष्ट्रीय सीमा से लगे श्रीगंगानगर जिले के लोगों के जीवनयापन का मुख्य साधन कृषि है। यहां काश्तकारों को कृषि उत्पादन करने हेतु अल्पकालीन व मध्यकालीन सहकारी साख 'दी गंगानगर केन्द्रीय सहकारी बैंक लि.' द्वारा उपलब्ध करवाई जा रही है। इस बैंक द्वारा अल्पकालीन सहकारी साख 'सहकारी किसान क्रेडिट कार्ड' के माध्यम से दी जा रही है। यह व्यवस्था इस बैंक द्वारा 1 अप्रैल 1999 से शुरू की गई थी। इस 'सहकारी किसान क्रेडिट कार्ड' में ऋणी सदस्य का नाम और अन्य विवरण सहित फसलवार स्वीकृत साख सीमा का उल्लेख किया जाता है। बैंक द्वारा सदस्य को 'सहकारी किसान क्रेडिट कार्ड' के साथ पासबुक व चैक बुक दी जाती है ताकि किसान स्वीकृत साख सीमा तक नगदी व समिति के माध्यम से खाद, बीज व कीटनाशक प्राप्त कर सके। बैंक के मुख्य कार्यालय से प्राप्त जानकारी के अनुसार कृषक को सहकारी किसान क्रेडिट कार्ड प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम 110 रुपये जमा करवाकर सम्बन्धित ग्राम सेवा सहकारी समिति का सदस्य बनना होगा। उसके पश्चात उस सदस्य को अपनी कृषि भूमि के विवरण समेत एक प्रार्थना पत्र समिति व्यवस्थापक को सौंपना होगा। बैंक की सम्बन्धित शाखा उस कृषक सदस्य की साख सीमा सम्बन्धित सुपरवाइजर से निर्धारित करवाएगा और आवश्यक कार्यवाही के बाद बैंक की सम्बन्धित शाखा सदस्य को 'सहकारी किसान क्रेडिट कार्ड' के साथ एक चैक बुक व पासबुक जारी करेगा जिससे काश्तकार अपनी निर्धारित साख सीमा तक ऋण प्राप्त करता रहेगा।

'दी गंगानगर केन्द्रीय सहकारी बैंक लि. द्वारा काश्तकार की साख सीमा कृषि भूमि की मात्रा व उससे उत्पन्न की जाने वाली फसल के आधार पर स्वीकृत की जाती है। इस 'सहकारी किसान क्रेडिट कार्ड' से स्वीकृत साख सीमा में काश्तकार को 70 प्रतिशत नगद साख व शेष साख का समिति के माध्यम से खाद, बीज व कीटनाशक उपलब्ध करवाया जाता है। एक काश्तकार को क्षेत्र में

अधिकतम 60,000 रुपये व असिंचित क्षेत्र में अधिकतम 50,000 रुपये तक का ऋण उपलब्ध करवाया जाता है। सहकारी किसान क्रेडिटधारी किसान स्वीकृत साख सीमा तक बैंक की सम्बन्धित शाखा में चैक प्रस्तुत कर जरूरत के अनुसार ऋण प्राप्त कर सकते हैं और प्राप्त ऋण का उपयोग कृषि उत्पादन कार्यों में कर सकते हैं। काश्तकार को धन उपलब्ध होने पर वह अपने बैंक खाते में जमा करवा सकता है। काश्तकार द्वारा निर्धारित साख सीमा तक आवश्यकतानुसार समिति के माध्यम से खाद, बीज व कीटनाशक प्राप्त किया जाता है। सहकारी किसान क्रेडिट कार्ड की सबसे बड़ी विशेषता यह भी है कि समिति कार्यालय में खाद,बीज व कीटनाशक न उपलब्ध होने की दशा में काश्तकार सम्बन्धित क्रय–विक्रय सहकारी समिति से खाद, बीज व कीटनाशक आदि उचित मूल्य पर प्राप्त कर सकते हैं। 7 बीघा या इससे अधिक सिंचित कृषि भूमि वाला 'सहकारी किसान क्रेडिट कार्ड' धारी काश्तकार बैंक की कृषक मित्र योजना के तहत अधिकतम 2,50,000 रुपये तक का ऋण प्राप्त कर सकता है।

'दी गंगानगर केन्द्रीय सहकारी बैंक लि.' ने 1 जुलाई 1999 को 'सहकारी किसान क्रेडिट कार्ड' जारी कर सहकारी साख के क्षेत्र में एक क्रान्तिकारी शुरूआत की। किसानों का इस क्रेडिट कार्ड के प्रारम्भिक वर्ष में ही 75,438 काश्तकारों को लाभान्वित किया गया इसके बाद क्रेडिट कार्ड धारी किसानों की संख्या में निरंतर वृद्धि होती गई। बैंक द्वारा 2004 में विभिन्न अभियान चलाकर भी काश्तकारों को 'सहकारी किसान क्रेडिट कार्ड' वितरित किये गये। मई–जून 2006 तक श्रीगंगानगर व हनुमानगढ़ जिले के 2.51 लाख से भी अधिक काश्तकारों को 'सहकारी किसान क्रेडिट कार्ड' जारी किये गये हैं और इनके माध्यम से 30 हजार लाख से भी अधिक के अल्पकालीन ऋण वितरित किये गये। यह

सहकारी किसान क्रेडिट कार्डधारी किसानों की संख्या

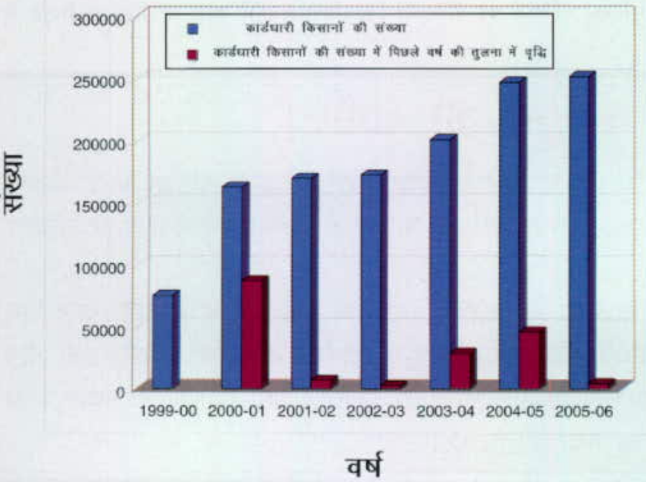

बैंक श्री गंगानगर व हनुमानगढ़ जिलों की कुल कृषि साख की 80 प्रतिशत पूर्ति अकेले ही कर रहा है। दी गंगानगर केन्द्रीय सहकारी बैंक लि. द्वारा विभिन्न वर्षों में जारी सहकारी किसान क्रेडिट कार्ड व अल्पकालीन ऋण वितरण का विवरण निम्न प्रकार है –

उपरोक्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि बैंक द्वारा वितरित किये जाने वाले अल्पकालीन ऋण व 'सहकारी किसान क्रेडिट कार्ड' धारी किसानों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है। सहकारी किसान क्रेडिट कार्ड शुरू होने के पहले वर्ष, 1999–2000, में ही 75438 किसानों ने 12303.29 लाख रुपये का ऋण प्राप्त किया। 2000–01के सत्र में सहकारी किसान क्रेडिट कार्ड धारी कृषकों की संख्या 115.49 प्रतिशत बढ़कर 62560 हो गई। इस प्रकार प्रत्येक आगामी वर्ष में सहकारी किसान क्रेडिट कार्ड धारी किसानों की संख्या में निंरतर वृद्धि हो रही है। क्रेडिट कार्ड धारी किसानों की संख्या 2001–02 में बढ़कर 169500, 2002–03 में 172000, 2003–04 में 200800, 2004–05 में 246735 व 2005–06 में बढ़कर 251172 हो गई। इस प्रकार 1999–2000 की तुलना में 2005–06 में सहकारी किसान क्रेडिट धारी किसानों की संख्या में लगभग 3.32 गुणा वृद्धि हो गई। क्रेडिट धारी किसानों की संख्या में वृद्धि के साथ–साथ उनके द्वारा लिये जाने वाले ऋण में भी वृद्धि हुई है। 1999–2000 में बैंक द्वारा वितरित ऋण की मात्रा 12303.29 लाख रुपये की जो कि 2000–01 में बढ़कर 15233.56 लाख रुपये व 2001–02 में बढ़कर 17029.13 लाख रुपये हो गई। इस प्रकार 1999–2000 की तुलना में बैंक द्वारा वितरित ऋण में लगभग 1. 24 गुणा वृद्धि हुई। 2002–03 में सहकारी किसान क्रेडिट कार्डधारी काश्तकारों की संख्या में तो वृद्धि हुई परन्तु बैंक द्वारा वितरित ऋण गत वर्ष की अपेक्षा 10.11 प्रतिशत राशि घटकर 15308.03

सहकारी किसान क्रेडिट कार्ड के माध्यम से अल्पकालीन वितरित ऋण (दी गंगानगर केन्द्रीय सहकारी बैंक द्वारा)

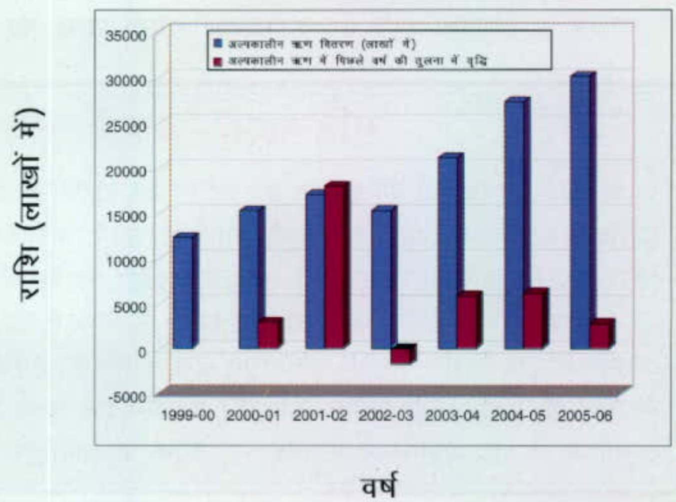

लाख रुपये रह गई। परन्तु आगामी वर्षों में बैंक द्वारा वितरित ऋण राशि में निंरतर वृद्धि का रुख बना हुआ है। बैंक द्वारा सहकारी किसान क्रेडिट कार्ड के माध्यम से 2003–04 में 21119. 91 लाख रुपये, 2004–05 में 27283.75 लाख रुपये एवं 2005–06 में 30082.81 लाख रुपये का ऋण वितरित किया गया। इस प्रकार बैंक द्वारा वितरित ऋण में 1999–2000 की अपेक्षा 2005–06 में लगभग 2.45 गुणा वृद्धि हुई है। इस प्रकार निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि बैंक सहकारी किसान क्रेडिट कार्ड के माध्यम से लाखों कृषकों को ऋण उपलब्ध करवा रहा है और इससे निंरतर प्रगति हो रही है।

परम्परागत कृषि साख उपलब्ध करवाने वाले साहूकार व महाजन कृषकों को 20 से 30 प्रतिशत की दर पर ऋण उपलब्ध करवाते हैं जबकि यह केन्द्रीय सहकारी बैंक 11 प्रतिशत की दर पर काश्तकारों को ऋण उपलब्ध करवा रहा है परन्तु वर्तमान में तो काश्तकारों को मात्र 7 प्रतिशत की दर पर सहकारी किसान क्रेडिट कार्ड के माध्यम से ऋण उपलब्ध करवाया जा रहा है। इसी कारण सस्ती दर पर सहकारी ऋण उपलब्ध होने से बैंक की 'सहकारी किसान क्रेडिट कार्ड' योजना के प्रति किसानों का उत्साह बढ़ रहा है। यह बैंक वर्ष में दो बार 30 जून व 31 दिसम्बर को ऋण वसूली करता है। ऋण वसूली के समय काश्तकार को ब्याज समेत ऋण चुकाना होता है परन्तु 'सहकारी किसान क्रेडिट कार्ड' धारी काश्तकार ऋण चुकाने के एक सप्ताह बाद पुनः निर्धारित साख सीमा तक ऋण प्राप्त कर सकता है। जिन किसानों के पास 'सहकारी किसान क्रेडिट कार्ड' हैं वह कृषक मित्र योजना के तहत प्राप्त ऋण को चुकाने के 24 घण्टे बाद ही निर्धारित साख सीमा तक पुनः ऋण प्राप्त कर सकता है।

'सहकारी किसान क्रेडिट कार्ड' की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इस योजना का लाभ कृषक ही उठाते हैं और कृषक को नगदी साख के साथ खाद, बीज व कीटनाशक आदि समिति के माध्यम से उपलब्ध होते हैं। काश्तकार नगदी साख का प्रयोग कृषि कार्यों में न करके कई बार अन्य घरेलू कार्यों में खर्च कर लेता है, परन्तु समिति से उपलब्ध खाद, बीज व कीटनाशक का प्रयोग तो उसे कृषि कार्यों पर करना पड़ता है क्योंकि बैंक द्वारा स्वीकृत साख में 70 प्रतिशत नगद व 30 प्रतिशत साख का खाद, बीज व कीटनाशक उपलब्ध करवाया जाता है। काश्तकारों को अच्छी खाद, बीज व कीटनाशक उपलब्ध होने से निश्चित रूप से कृषि उत्पादन बढ़ता है पुरातन समय से आढ़तीये और महाजन कृषक का तीन प्रकार से शोषण करते आए हैं। एक तरफ तो आढ़तीये और महाजन कृषक को मंहगी ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध करवाते थे दूसरी तरफ कृषक खाद, बीज, कीटनाशक व अन्य घरेलू सामान उस महाजन/आढ़तीये से ऊंचे मूल्य पर खरीदने को विवश था। इसके साथ–साथ कई बार कृषक को घटिया सामान भी आढ़तीये/महाजन उसकी मजबूरी का फायदा उठा कर बेच देते थे। कृषकों का तीसरे प्रकार का शोषण महाजन/आढ़तीये उनकी फसल को स्वयं सस्ते मूल्य पर खरीदकर करते थे। यदि ये स्वयं फसल नहीं खरीदते तो ऊंची दलाली लेकर कृषक की फसल सस्ते मूल्य पर बिकवा देते थे। इससे किसानों का निरंतर शोषण होता था। परन्तु दी गंगानगर केन्द्रीय सहकारी बैंक लि.द्वारा आसानी से 'सहकारी किसान क्रेडिट कार्ड' के तहत ऋण मिलने से काश्तकार किसी का मोहताज नहीं रहा है। वह अपनी फसल उचित मूल्य पर कहीं भी बेच सकता है जिससे वह अधिक लाभ कमा सकता है। काश्तकार प्राप्त ऋण से आधुनिक कृषि यन्त्र खरीदकर कृषि में आधुनिक तकनीक का प्रयोग करके अधिक उत्पादन कर सकता है। इस प्रकार 'दी गंगानगर केन्द्रीय सहकारी बैंक लि. ' ने अपने सहकारी किसान क्रेडिट कार्ड के माध्यम से लाखों किसानों को लाभांवित किया है जिससे साहूकारों व महाजनों द्वारा किसानों के शोषण में कमी आई है।

(प्रोफेसर संदीपसिंह मुण्डे ''केन्द्रीय सहकारी बैंक की ग्रामीण विकास में भूमिका'' विषय पर बीकानेर विश्वविद्यालय में शोध के लिए पंजीकृत हैं।)

महिलाओं–बच्चों संबंधी कानूनों की समीक्षा

सरकार ऐसे कानूनों की समीक्षा कर रही है जो महिलाओं से संबंधित हैं या उन्हें प्रभावित करते हैं। इनमें महिला अभद्र चित्रण (प्रतिबंध) अधिनियम 1986, गैरकानूनी अनैतिक तस्करी अधिनियम 1956, कार्यस्थलों पर महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार से संरक्षण विधेयक 2007 और दहेज उन्मूलन अधिनियम 1961 शामिल हैं।

बच्चों के खिलाफ अपराधों और हिंसा से निपटने के लिए भारतीय दंड संहिता, भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता, बाल श्रम अधिनियम और किशोर अपराध अधिनियम जैसे कानून हैं। इन अधिनियमों की समय–समय पर समीक्षा की जाती है और इन्हें और भी प्रभावकारी और कड़ा बनाया जाता है। मंत्रालय इस समय किशोर अपराध अधिनियम पर ध्यान दे रहा है। कानून मंत्रालय के अनुमोदन के बाद अधिनियम में कुछ नए नियमों को अधिसूचित किया गया है। (पसूका)

कृषि विकास में विपणन और भाण्डागार

जयश्री जैन

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। पिछले दो दशकों से अधिक अवधि में औद्योगीकरण के संगठित प्रयास के बावजूद कृषि का गौरवपूर्ण स्थान बना हुआ है। देश का सबसे बड़ा उद्योग होने के कारण, कृषि देश की 65 प्रतिशत जनता की जीविका का स्त्रोत है। इस जीविका के स्त्रोत को बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि उचित और मजबूत कृषि विपणन तथा भाण्डागार की व्यवस्था की जाये जिससे कि कृषि प्रधान देश होने की बात सही साबित हो सके।

कृषि विपणन– विपणन से आशय उस बाजार से है जहां पर वस्तुओं के उत्पादन से पूर्व से लेकर विक्रय तक की समस्त कार्य विधियों को सम्मिलित किया जाता है। विपणन वह व्यापक शब्द है जिसमें विक्रय और वितरण दोनों सम्मिलित होता है। अतः कृषि विपणन वह बाजार है जहां कृषि का आदान–प्रदान किया जाता है।

कृषि भाण्डागार– कृषि भाण्डागार वह स्थान है जहां पर कृषि को संगठित किया जाता है, जिसकी आवश्यकता हमारे देश में बहुत पहले से महसूस की जा रही है। भण्डारगृह जितने अच्छे और अधिक होंगे उतनी ही अच्छी तरह से कृषि का विपणन किया जा सकेगा।

भारत में कृषि का महत्व

राष्ट्रीय आय में कृषि का हिस्सा– देश के घरेलू उत्पाद में खेती का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है। आर्थिक विकास में तेजी आने के फलस्वरूप अन्य क्षेत्रों के अनुपात में अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि होने से खेती का प्रतिशत योगदान पिछले वर्षों में घट गया है और विकास की गति में तेजी आने से इसका सापेक्ष प्रतिशत भाग और घटेगा। लेकिन मात्रात्मक दृष्टि से इसका योगदान अभी भी बहुत महत्वपूर्ण ठहरता है।

रोजगार व जीवन निर्वाह– कृषि की इतनी अधिक प्रधानता है कि भारतीय कार्यकारी जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग रोजगार के लिए इस पर आश्रित है यह कारण है कि यह जीवन निर्वाह की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण ठहरता है क्योंकि अन्य बहुत से लोग कृषि पदार्थों के व्यापार, परिवहन आदि में लगकर अपनी आजीविका कमाते हैं।

पूंजी– देश की अधिकांश पूंजी खेती में लगी हुई है। स्थायी पूंजी की दृष्टि से कृषि ज़ोतों का स्थान संभवतः सबसे ऊंचा है। इसके अतिरिक्त देश की करोड़ों रुपये की पूंजी खेती के औजारों, सिंचाई के साधनों आदि में लगी हुई है। इस प्रकार निवेशित पूंजी की दृष्टि से भी भारतीय कृषि का स्थान कम महत्वूपर्ण नहीं ठहरता है।

औद्योगिक विकास के लिए कृषि का महत्व– भारत में कृषि के महत्व का कारण यह है कि इससे हमारे प्रमुख उद्योगों को कच्चा माल मिलता है। सूती और पटसन, वस्त्र उद्योग, चीनी, वनस्पति तथा बागान उद्योग में सब कृषि पर निर्भर है और भी ऐसे अनेक उद्योग हैं जो कृषि पर अप्रत्यक्ष रूप में निर्भर हैं।

अनाज व चाय– देश की विशाल जनसंख्या के लिए अन्न जुटाने का काम भी यहां खेती के द्वारा सम्पन्न होता है। भारत में मवेशियों की संख्या भी बहुत अधिक है। इनके लिए चारा भी मुख्य रूप से देश की खेती है।

विदेशी व्यापार में कृषि का महत्व– विदेशी व्यापार की दृष्टि से भी हमारी खेती का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। हमें खेती से निर्यात व्यापार की मुख्य–मुख्य वस्तुएं प्राप्त होती हैं जो विदेशी मुद्रा के अर्जन में विशेष हाथ बंटाती है। स्थूल रूप में कुल निर्यात में कृषि वस्तुओं का अनुपात लगभग 50 प्रतिशत है और कृषि से बनी वस्तुओं का अनुपात लगभग 20 प्रतिशत है। इस प्रकार भारत के निर्यात में कृषि और उससे संबंधित वस्तुओं का कुल भाग लगभग 70 प्रतिशत है।

आर्थिक आयोजन में कृषि क्षेत्र का कार्यभाग– राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में कृषि के महत्व के और भी अनेक कारण हैं। कृषि भारत की परिवहन–व्यवस्था का मुख्य अवलम्ब है क्योंकि रेलवे और सड़क मार्ग का अधिकांश व्यापार कृषि वस्तुओं को लाना–ले जाना है। सरकार के बजट अथवा सरकारी आय और व्यय पर भी कृषि का विशेष प्रभाव दिखाई पड़ता है।

भारत में कृषि विपणन एवं भाण्डागार– भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्व स्पष्ट परिलक्षित होता है। भूमि सुधार की भांति बाजार और बिक्री की सुविधाएं भी किसानों को कृषि विकास के लिए अभिप्रेरित करने की दृष्टि से विशेष महत्व रखती हैं। यदि बाजार में माल की बिक्री से प्राप्त होने वाली रकम के संबंध में किसान निश्चित नहीं हैं, तो खेती में अतिरिक्त निवेश के लिए किसानों में तत्परता कम होगी, फसल की बिक्री से किसानों को कितनी प्राप्ति हो सकेगी, यह बहुत कुछ बाजार और विपणन की सुविधाओं पर निर्भर करता है। भारत जैसे देश में कृषि विपणन और भाण्डागार के लिए सरकार द्वारा अनेक कदम उठाए गए हैं फिर भी कृषि उपज की बिक्री–व्यवस्था में आज भी अनेक गम्भीर दोष दिखाई देते हैं।

कृषि विपणन एवं भाण्डागार के दोष

वित्त–सुविधाओं का अभाव– बुआई से लेकर बिक्री तक की किसानों की विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त मात्रा में वित्त की सुविधाएं देश में उपलब्ध नहीं है। इस कारण

एक अरब भारतीय
एक राष्ट्र और
एक उत्सव...
...गणतंत्र दिवस की शुभकामनाएं
श्रीमति शीला दीक्षित
मुख्यमंत्री, दिल्ली
डा. अशोक कुमार वालिया
ऊर्जा एवं वित्त मंत्री
डा. योगानन्द शास्त्री
स्वास्थ्य एवं समाज कल्याण मंत्री
श्री मंगत राम सिंघल
उद्योग एवं श्रम मंत्री
श्री राज कुमार चौहान
राजस्व एवं विकास मंत्री
श्री हारून युसूफ
परिवहन, खाद्य एवं आपूर्ति मंत्री
श्री अरविंदर सिंह
शिक्षा एवं पर्यटन मंत्री
सूचना एवं प्रचार निदेशालय
दिल्ली सरकार
KH-03/08/3

भारत में भूमि सुधार कार्यक्रम का एक मूल्यांकन

डॉ. रमेश कुमार सिंह

एक कृषि प्रधान देश की समृद्धि अन्ततः इस बात पर निर्भर करती है कि वहां के निवासी प्रकृति द्वारा प्रदत मुक्त दान अर्थात भूमि को कितनी योग्यतापूर्वक प्रयोग करते हैं तथा उसकी किस तरह रक्षा करते हैं। यही नहीं, भूमि के उपयोग के तरीकों पर ही किसी देश के समाज अथवा सभ्यता के विकास का रूप निर्भर रहता है। 'भूमि सुधार कार्यक्रम' में मध्यस्थों की समाप्ति, काश्तकारी सुधार अर्थात् काश्तकार को भूमि पर स्वामित्व का अधिकार दिलाना, लगान की उचित दर का निर्धारण और उसकी बेदखली से रक्षा (भूधारण की सुरक्षा) के साथ–साथ जोतों की सीमाबन्दी, चकबन्दी, सहकारी खेती, भूमि का पुनर्वितरण तथा खेतिहर मजदूरों का पुनर्स्थापन आदि वे सभी कार्यक्रम सम्मिलित होते हैं जिनका उद्देश्य कृषि उपज को प्रोत्साहित करना, सुनियोजित विकास, सामाजिक न्याय एवं समानता, साथ ही गैर–कृषि उद्योगों का विकास करना है।

भारत में भूमि सुधार की शुरूआत तब हुई जब देश ने महसूस किया कि अधिसंख्य नागरिकों, खासकर ग्रामीण जनता, जिस के पास असमान विनिमय वाले बाजार में मोलभाव की शक्ति बहुत कम थी, के प्रति उसकी प्रत्यक्ष जिम्मेदारी है। स्वतंत्रता के पूर्व एवं समय देश में भूमि व्यवस्था सम्बन्धी रैयतवारी, महालवारी एवं जमींदारी प्रथाएं थीं जो ये प्रथाएं धीरे–धीरे कमियों के कारण स्वतः ही समाप्त हो गई। बाद में सरकार ने समय–समय पर नई भूमि सुधार नीतियां बनाई, जिनमें कुछ खामियां भी देखी गईं प्रगति भी हुई एवं उनका मूल्यांकन कर भूमि सुधार कार्यक्रम चलाए गए और सफलता हेतु सुझाव भी दिए गए।

साठ के दशक के मध्य में भूमि सुधारों का उत्साह तब मंद पड़ गया जब भारत को गंभीर रूप से अनाज की कमी का सामना करना पड़ा, खासकर देश के पूर्वी हिस्सों में। सरकार का ध्यान भूमि सुधार से हटकर अनाज का उत्पादन बढ़ाने पर केंद्रित हो गया, भूमि सुधार की योजनाएं प्रत्यक्ष रूप में तो शिथिल पड़ गई, लेकिन साठ के दशक के अंतिम वर्षों और सत्तर के दशक के शुरू में भूमि संबंधी ग्रामीण विद्रोह के पहले चरण के परिणामस्वरूप भूमि सुधार का मुद्दा एक बार फिर प्रमुख हो गया। 1972 में तत्कालीन प्रधानमंत्री ने ग्रामीण विद्रोह यानि नक्सलवाद की समस्या से निबटने के लिये मुख्यमंत्रियों की बैठक बुलाई। उस बैठक में भारत के तत्कालीन गृहमंत्री ने कहा – "हम हरित क्रांति को लाल क्रांति में तब्दील नहीं होने देंगे।" उस बैठक में भूमि की सीलिंग घटाने और परिवार आधारित सीलिंग लगाने, काश्तकारी सुधार और ऐसे ही अन्य उपाय अपनाने का फैसला किया गया, वे सारे कदम बहुत प्रगतिशील थे, न सिर्फ मौजूदा स्थिति के संदर्भ में, बल्कि उनके पीछे के सिद्धान्त और दर्शन के संदर्भ में भी। वे सिद्धांत और दर्शन आज भी सार्थक हैं। ध्यान देने की बात यह है कि हरित क्रांति के चरम पर जब भारत का सारा जोर अनाज के मामले में आत्मनिर्भर होने पर था ताकि यू एस पी एल .480 की जंजीरों को तोड़ा जा सके, तो भारत सरकार ने भूमि सीलिंग में भारी कमी करने का फैसला किया। इसके बाद ग्रामीण हिंसा का पहला दौर अपने आप खत्म हो गया। अस्सी के दशक के मध्य से जब उदारीकरण ने धीमी गति से भारतीय अर्थव्यवस्था में प्रवेश करना शुरू किया और फिर 1991 से जब उसने तेज गति पकड़ी तो भूमि सुधार का मुद्दा कहीं पीछे चला गया और इस एजेंडे को भूला दिया गया। सवाल यह उठता है कि क्या भूमि सुधार एल पी जी के मौजूदा दौर में अप्रासंगिक हो गया है? इस पर गंभीरता से विचार करना होगा।

भूमि सुधार नीति

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय विभिन्न प्रकार की भूमि व्यवस्थाएं थीं जिसके परिणामस्वरूप वास्तविक काश्तकारों एवं भूमि स्वामी के बीच कई बिचौलिए आ जाते थे जो भूमि उपज का एक बड़ा भाग लगान के रूप में लेते थे, लेकिन फिर भी काश्तकार को प्रतिवर्ष जोतने की गारण्टी नहीं देते थे जिससे भूमि में स्थायी सुधार नहीं हो पाता था। अतः स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सरकार का ध्यान इस ओर गया।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में राज्यों द्वारा भूमि सुधार योजना की रूपरेखा बनाने के लिए कहा गया था, जबकि दूसरी योजना में मध्यस्थ किरायेदारों की समाप्ति, काश्तकारी व्यवस्था में सुधार, भूमि की उच्चतम सीमाओं का निर्धारण, चकबन्दी और कृषि व्यवस्था के पुनर्गठन की बात कही गयी लेकिन तीसरी, चौथी व पांचवी योजना में भूमि सुधार कार्यक्रमों को तेजी से लागू करने पर जोर दिया गया। छठवीं योजना में यह व्यवस्था की गयी कि

- जिन राज्यों में भूमिहीन कृषकों को मालिकाना हक देने के नियम नहीं है, वहां नियम बनाए जाएंगे।
- अधिकतम जोत कानून लागू होने से जो अतिरिक्त भूमि सरकार के अधिकार में आ गयी है उसे भूमिहीनों में वितरित किया जाएगा।
- भूमि संबंधी आंकड़ों को सम्मिलित करने एवं उन्हें अद्यतन करने के लिए एक कार्यक्रम चलाया जाएगा।
- चकबन्दी का कार्यक्रम चलाया जाएगा और भूमिहीन श्रमिकों के मकानों के लिए स्थान की व्यवस्था की जाएगी।

सातवीं योजना में वर्तमान भूमि कानूनों को कड़ाई से लागू करने की बात कही गयी। आठवीं योजना में भूमि सुधार के पांच सिद्धांतों का पालन करने की बात कही गयी, वे सिद्धांत थे–मध्यस्थों का अंत, काश्तकारी सुधार, अतिरिक्त भूमि का पुनः वितरण, चकबंदी व भू–स्वामित्व रिकार्ड को अद्यतन करना।

"नौवीं पंचवर्षीय योजना में कहा गया है कि "अतिरिक्त भूमि को खोजने एवं वितरित करने के लिए सभी संभव प्रयास करने होंगे और अधिकतम जोत के कानूनों को सख्ती से लागू करना होगा। अनुपस्थित जमींदारों को समाप्त करने के लिए सभी छिद्र बन्द करने होंगे तथा कार्यान्वयन मशीनरी को मजबूत बनाना होगा और राजस्व न्यायालयों में अधिनिर्णयण संबंधी विवादों को तेजी से सुलझाना होगा। मजदूरों और फसल सहभाजकों के अधिकारों को रिकार्ड करने की आवश्यकता है और इस प्रकार उन्हें पट्टे की सुरक्षा प्रदान की जा सकती है। केवल इसी से कृषि में विनियोग बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन उपलब्ध कराया जा सकता है जैसा कि देश के कुछ भागों के अनुभव से सिद्ध हुआ है। गरीबों को, विशेषकर स्त्रियों को व्यर्थभूमियों और साझी सम्पति संसाधनों के वितरण में प्राथमिकता देनी होगी"।

भूमि सुधार कार्यक्रमों की प्रगति

भारत में भूमि सुधार कार्यक्रमों की प्रगति निम्नलिखित रही है:–

- मध्यस्थों तथा जमींदारों का उन्मूलन :– भूमि सुधार प्रयत्नों में सबसे पहला प्रयत्न मध्यस्थों व जमींदारों की समाप्ति के लिए किया गया। इस संबंध में मद्रास में 1948 में, मुम्बई व हैदराबाद में 1949–50 में, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा असम में 1951, पंजाब, राजस्थान व उड़ीसा में 1952 में तथा हिमाचल प्रदेश, कनार्टक व पश्चिम बंगाल में 1954–55 में संबंधित अनिधिनियम पारित किए गए।

इस विभिन्न राज्य अधिनियमों के अन्तर्गत लगभग दो करोड़ काश्तकारों का राज्य के साथ सीधा संबंध हो गया और उन्हें मालिकाना हक दे दिए गए हैं तथा लगभग 60 लाख हेक्टेयर भूमि भूमिहीन कृषकों को वितरित की गई। विभिन्न राज्य सरकारों ने जमींदारी उन्मूलन के लिए जो अधिनियम बनाए थे उनमें निम्नलिखित विशेषताएं थी–

- अधिकारों का उन्मूलन एवं क्षतिपूर्ति– जम्मू एवं कश्मीर राज्य को छोड़कर शेष सभी राज्यों में जमींदारों के अधिकारों का उन्मूलन कर दिया गया और इसके बदले में उनको मुआवजा या क्षतिपूर्ति दी गयी।
- क्षतिपूर्ति का आधार – जमींदारों को क्षतिपूर्ति का आधार अलग–अलग राज्यों में अलग–अलग रखा गया जैसे उत्तर प्रदेश में आधार 'शुद्ध सम्पति' रखा गया था, जबकि असम, राजस्थान एवं मध्य प्रदेश में 'शुद्ध आय' था। कुछ राज्यों में बड़े जमींदारों को निम्न दर से व छोटे जमींदारों को ऊंची दर से क्षतिपूर्त्ति की गयी।
- क्षतिपूर्ति का भुगतान – क्षतिपूर्ति का भुगतान कुछ राज्यों द्वारा पूर्णतः नकदी में किया गया, जबकि कुछ राज्यों द्वारा नकदी व बाण्डों में किया गया। जिन राज्यों में बाण्डों द्वारा भुगतान किया गया उन्होंने अपने राज्यों में 'जमींदारी उन्मूलन कोष' की स्थापना की। इस कोष में उस रकम को जमा किया गया जो कृषक ने भूमिधारी काश्तकार बनने के लिए सरकार को दी थी।
- वैयक्तिक कृषि के लिये भूमि रखने की छूट – विभिन्न अधिनियमों में यह व्यवस्था भी की गयी थी कि जो जमींदार जितनी भूमि को स्वयं जोतते थे उसे उनके पास ही छोड़ देने की छूट थी।
- सामान्य भूमि पर राज्य सरकारों का अधिकार – जमींदारी उन्मूलन के पश्चात् गांव में जो समान्य भूमि बची उस पर राज्य सरकारों का अधिकार हो गया।
- लगान देने का दायित्व – इस अधिनियमों में यह व्यवस्था भी की गयी थी कि जमींदारी उन्मूलन के पश्चात् काश्तकार अपनी भूमि पर लगान सीधा ही सरकार को देगा और लगान देने की उसकी स्वयं की जिम्मेदारी होगी।
- जमींदारी पुनः उत्पत्ति पर प्रतिबंध – जमींदारी व्यवस्था पुनः पनप न पाए इसके लिए अधिनियमों में यह व्यवस्था की गयी कि प्रत्येक काश्तकार के लिए भूमि को स्वयं ही जोतना अनिवार्य होगा, परन्तु विधवा, सेना में कार्य करने वाले सेविवर्ग, बन्दी व रोग से पीड़ित व्यक्ति अपनी भूमि को लगान पर दूसरों को दे सकते हैं।

काश्तकारी व्यवस्था में सुधार – देश में अनेक राज्यों में काश्तकारों के स्वामित्व अधिकारों को प्रदान करने या काश्तकारों द्वारा मुआवजा भरने पर स्वामित्व अधिकारों को प्राप्त करने संबंधी वैधानिक प्रावधान किए गए हैं। अब तक 156.30 लाख एकड़ क्षेत्र पर 124.22 लाख काश्तकारों के अधिकारों को सुनिश्चित किया गया है। जमींदारी उन्मूलन अधिनियमों के अन्तर्गत सैनिक, अवयस्क, विधवाओं तथा असमर्थ लोगों को यह छूट दी गयी है कि वे अपनी भूमि को दूसरे को जोतने के लिए दे सकते हैं, इस प्रणाली को पट्टेदारी प्रणाली कहते हैं। इस पट्टेदारी व्यवस्था में भी सुधार किए गए, जो निम्नलिखित हैं –

लगान नियमन कानून बनने के पूर्व पट्टेदार को कुल उपज का आधा भाग भूमि के मालिक को लगान के रूप में देना पड़ता था। अतः प्रथम योजना में इस बात की सिफारिश की गयी कि ऐसा लगान कुल उपज के 20 से 25 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए। बाद में विभिन्न राज्यों ने इस संबंध में भिन्न–भिन्न अधिनियम बनाए जिनके अनुसार लगान की उचित दर पंजाब व हरियाणा में 33.5 प्रतिशत, मद्रास में सिंचित भूमि का 40 प्रतिशत तथा शुष्क भूमि का 25 प्रतिशत, आन्ध्र प्रदेश में सिंचित भूमि का 30 प्रतिशत व शुष्क भुमि का 25 प्रतिशत निर्धारित किया गया। जम्मू व कश्मीर में लगान की दर 25 प्रतिशत से 50 प्रतिशत तक है। शेष सभी राज्यों में वह दर 25 प्रतिशत से अधिक नहीं है।

इस प्रकार बिहार, गुजरात, केरल, मध्यप्रदेश, कर्नाटक, उड़ीसा, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश व महाराष्ट्र के अधिनियमों में यह व्यवस्था है कि भूमिपति को पट्टेदार के पास पट्टे वापस लेते समय कुछ भूमि अवश्य छोड़नी होगी।

कई राज्यों में पट्टेदारों को स्वामित्व अधिकार दिलाने के लिए वैधानिक व्यवस्था की गयी है जिसके अन्तर्गत पट्टेदारों को निर्धारित क्षतिपूर्ति के बाद भूमि पर स्वामित्व अधिकार प्राप्त हो सकता है।

पचास व साठ के दशकों में अधिकांश राज्यों में भूमि हकबंदी कानून बनाए गए, जिन्हें बाद में 1972 में केन्द्र द्वारा जारी दिशा–निर्देशों के अनुरूप संशोधित किया गया।

सितम्बर 2001 तक देश में 73.69 लाख एकड़ भूमि अतिरिक्त घोषित की गई, जिसमें से लगभग 64.95 लाख एकड़ भूमि को अधिगृहित किया गया और 53.79 लाख एकड़ भूमि को 54.84 लाख लाभार्थियों में वितरित किया गया जिनमें से अनुसूचित जाति से संबंधित 36 प्रतिशत लोग थे वे 15 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति से सम्बन्धित थे। इसके अतिरिक्त अभी तक 147.50 लाख एकड़ सरकारी बंजर, भूमिहीन ग्रामीण गरीबों में वितरित की जा चुकी है। इसके चार उद्देश्य हैं–

- बड़े भूखण्डों को उचित आकार के खण्डों में बदलना जिससे कि उनका प्रबन्ध उचित प्रकार से हो सके तथा उत्पादन बढ़ाया जा सके।
- अधिशेष भूमि को भूमिहीनों में बांटकर सामाजिक न्याय करना।
- अधिक व्यक्तियों को रोजगार सुविधाएं उपलब्ध कराना और
- अधिशेष बंजर भूमि पर कृषकों, कारीगरों व शिल्पकारों को घर बनाने की सुविधा देना।

भारत के प्रायः सभी राज्यों में कृषि जोत की सीमाबंदी से सम्बन्धित कानूनों में सीमाबन्दी के स्तर, सीमाबन्दी की इकाई (अर्थात् क्या भूमि का मालिक परिवार का प्रत्येक सदस्य अलग–अलग माना जाए या पूरा परिवार संयुक्त रूप से माना जाए) भूमि के हस्तान्तरण और सीमाबन्दी से छूट के बारे में जो व्यवस्थाएं की गई हैं, उनमें पर्याप्त अन्तर है।

अधिकतम जोत सीमा–निर्धारण के लाभ

- अधिकतम जोत निर्धारण से भूमि के असमान वितरण में कमी होती है।
- यह नियम केन्द्रीकरण की प्रवृत्रि को हतोत्साहित करते हैं और समाजवादी अर्थव्यवस्था की स्थापना में सहायक देते हैं तथा राजनीतिक जागृति की आकांक्षाओं को पूरा करते हैं।
- बड़ी–बड़ी जोतें समाप्त होने से समानता का वातावरण पैदा होता है जिससे कृषकों में पारस्परिक सहयोग का विकास होता है जो अन्त में सहकारी कृषि को प्रोत्साहन देता है।
- अधिकतम जोत नियम एक व्यक्ति के पास भूमि की मात्रा को कम करते हैं जिसके फलस्वरूप एक कृषक आय बढ़ाने के लिए गहन खेती करने को प्रोत्साहित होता है।
- अधिकतम जोत सीमा निर्धारण से कृषि उत्पादन को प्रोत्साहन मिलता है। गहन खेती की मात्रा बढ़ती है इससे कृषि उत्पादन बढ़ता है।
- इसके फलस्वरूप सरकार को जो भूमि बड़े किसानों से मिलती है उसे वह भूमिहीन कृषकों में बांट देती है, इससे उनको लाभ होता है।

अधिकतम जोत सीमा निर्धारण की हानियाँ –

- सबसे प्रमुख एवं पहला तर्क दिया जाता है कि अधिकतम जोत निर्धारण कानून बड़े खेतों को छोटे–छोटे खेतों में बदल देता है जिसके फलस्वरूप समाज बड़े पैमाने पर कृषि करने के लाभों से वंचित रह जाता है साथ ही कृषि में यंत्रीकरण सम्भव नहीं होता है।
- यदि भूमि की अधिकतम सीमा निर्धारित की जाती है तथा गैर कृषि भूमि जैसी गहरी भूमि की कोई सीमा निर्धारण नहीं की जाती है तो इससे आयों में विषमताएं पैदा हो जाती है, जो उचित नहीं है।
- यदि अधिकतम सीमा निर्धारित की जाती है, तो इससे बड़े किसानों में असंतोष उत्पन्न होगा, जो इस प्रजातांत्रिक युग में उचित नहीं है।
- इस अधिनियम के लागू होने से खेत छोटे–छोटे हो जाएंगे जिससे कृषक के पास विपणन योग्य अधिशेष कम रहेगा। नियमों के लागू होने से पहले जितनी भूमि जोती जाती है उतनी ही नियमों के लागू होने के बाद भी जोती जाएगी। अतः उत्पादन में कोई कमी नहीं होगी, लेकिन पहले जो कृषक बाजार में क्रय करके खाद्य पदार्थ खाते थे वे अब स्वयं उत्पादित करके अपने पास रख लेंगे, इससे विपणन योग्य अधिशेष में कमी होगी। निश्चय ही इससे स्वयं पोषण खेती की स्थिति पैदा होगी।
- इसके फलस्वरूप यदि किसान से अतिरिक्त भूमि ली जाएगी तो उसे क्षतिपूर्ति देने होगी जिसकी रकम करोड़ों व अरबों रुपयों में होगी जिसे राज्य सरकारें देने में कठिनाई महसूस करेगी।

भूमि के पुनर्गठन के लिए चार उपायों को काम में लिया गया हैः

चकबन्दी – चकबन्दी वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा स्वामित्वधारी कृषकों को उनके इधर–उधर बिखरे हुए खेतों के बदले में इसी किस्म के कुल उतने ही आकार के एक या दो खेत लेने के लिए राजी किया जाता है। इस प्रक्रिया में एक कृषक के बिखरे हुए खेतों को एक स्थान पर दे दिया जाता है। यह चकबन्दी दो प्रकार से की जाती है। ऐच्छिक चकबन्दी और अनिवार्य चकबन्दी – ऐच्छिक चकबन्दी इस समय गुजरात, मध्य प्रदेश व पश्चिम बंगाल में लागू है, जबकि आन्ध्र प्रदेश, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम, मणिपुर, मेघालय, त्रिपुरा, नगालैण्ड, तमिलनाडु व केरल में चकबन्दी संबंधी कानून नहीं है परन्तु शेष सभी राज्यों में अनिवार्य चकबन्दी सम्बन्धी कानून लागू है।

सहकारी खेती – सहकारी खेती से तात्पर्य कृषकों के द्वारा सहकारिता के सिद्धांतों के आधार पर संयुक्त रूप से कृषि करने से है। भारत में सभी भूमि सुधारों का अन्तिम लक्ष्य सहकारी ग्रामीण अर्थव्यवस्था की स्थापना करना है।

भू–दान – इस कार्यक्रम के जन्मदाता आचार्य विनोवा भावे थे। भूदान से तात्पर्य स्वेच्छा से भूमि के दान से है, इसके उद्देश्य बताते हुए आचार्य भावे ने एक बार कहा था कि यह न्याय तथा समानता पर आधारित है कि भूमि में सभी का अधिकार है, इसलिए हम भेंट में भूमि की भीख नहीं मांगते, बल्कि उस भाग की मांग करते हैं जिनमें निर्धनों को न्यायपूर्ण हक है।

भू–स्वामित्व का अद्यतन रिकार्ड – वर्ष 1988–89 में भू–अभिलेखों के कम्प्यूटरीकरण के लिए एक केन्द्र प्रायोजित योजना आठ जिलों में शुरू की गई थी। वर्तमान में यह योजना देश के 582 जिलों में लागू की गई हैं। अनेक राज्यों में उपयोगकर्त्ताओं तथा आम जनता के लिए अधिकारों के अभिलेखों को कम्प्यूटरीकृत प्रतियां उपलब्ध कराई गई

हैं। 1997–98 के दौरान इस योजना को तहसील/तालुका स्तर पर लागू करने का निर्णय लिया गया था, ताकि जनता को सामान्य तौर पर कम्प्यूटरीकृत भूमि रिकार्ड उपलब्ध कराने में सुविधा हो सके।

भूमि सुधार कार्यक्रमों का मूल्यांकन

देश में पिछले वर्षों में भूमि सुधार के कई कार्यक्रम बड़े उत्साह से प्रारम्भ किए गए जिनके अन्तर्गत जमींदारी उन्मूलन, अधिकतम जोत सीमा निर्धारण, चकबन्दी, सहकारी खेती, लगान नियम एवं पट्टे की सुरक्षा की व्यवस्था की गयी है।

संयुक्त राष्ट्र की भूमि संबंधी एक रिपोर्ट में कहा गया है कि "भारत में भूमि सुधार से हाल के अधिनियम संख्यात्मक दृष्टि से सबसे अधिक महत्वपूर्ण है, इतने अधिनियम कहीं भी नहीं बनाए गए हैं। यह अधिनियम लाखों, करोड़ों कृषकों पर प्रभाव डालते हैं और भूमि के विशाल क्षेत्रों को अपने दायरों में सम्मिलित करते हैं, लेकिन ऐसा होने पर भी भूमि सुधार कार्यक्रमों की प्रगति धीमी रही है" जिसके निम्नलिखित कारण रहे –

- भूमि सुधार कार्यक्रमों की आलोचना इस आधार पर की जाती है कि विभिन्न राज्यों में भूमि सुधार संबंधी अधिनियम भिन्न–भिन्न है जिससे राष्ट्रीय स्तर पर उनको एक साथ क्रियान्वित नहीं किया जा सका है।
- बड़े भूमि स्वामियों ने भूमि सुधार कार्यक्रम लागू होने से अपना बचाव करने के उद्देश्य से सहकारी कृषि समितियां बना ली हैं, इस प्रकार अधिकांश कृषि सहकारी समितियां जाली हैं।
- भूमि सुधारों के फलस्वरूप काश्तकारों पर लगान ऊंची दरों से लगाया गया है जिससे किसान को उत्पादकता बढ़ाने की प्रेरणा नहीं मिली है।
- इन भूमि सुधार कानूनों का क्रियान्वयन तेज गति से न होने के कारण जमींदारों व अन्य निहित स्वार्थ वालों को इन कानूनों से बचने का पूरा–पूरा कानूनी समय या अवसर मिल जाता है और वे कानून के अनुसार अपनी–अपनी जोत कर लेते हैं।
- भूमि सुधारों में कई कार्यक्रम हैं जिनमें तालमेल बैठाने की आवश्यकता है जिसकी कोई चेष्टा नहीं की गयी है। इसी प्रकार जब अतिरिक्त भूमि बांटी जाती है, तब साख या वित्त की सुविधा उन भूमिहीन कृषकों को दिलाने का कोई प्रबंध नहीं किया जाता जिनको वह भूमि मिलती है।

भूमि सुधार कार्यक्रमों की सफलता के लिए कुछ सुझाव निम्नलिखित हैं :

- भूमि के संबंध में नवीन रिकार्ड तैयार किए जाए, ताकि स्वामित्व के प्रश्न पर मतभेद न हो सके।
- खेतिहर श्रमिकों व बंटाईवालों के संगठन बनाए जाए तथा उनके प्रतिनिधियों को भूमि सुधार कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में सम्मिलित किया जाय।
- जिन नए कृषकों को भूमि मिले इनके लिए वित्तीय संसाधनों जैसे कृषि साख का प्रबंध किया जाना चाहिए, ताकि वे उस भूमि का समुचित उपयोग कर सके।
- भूमि सुधार कानूनों का क्षेत्रीय भाषाओं के समाचार–पत्रों, आकाशवाणी व दूरदर्शन के माध्यम से प्रचार किया जाए, ताकि इन कानूनों को समझकर अधिकाधिक लाभ प्राप्त किया जा सके।
- राज्य, जिला व तहसील स्तर पर कुशल प्रशासनिक मशीनरी की स्थापना की जाए, लेकिन इसमें पटवारी को दूर रखा जाए।
- योजना आयोग ने सुझाव दिया है कि भूमि सुधार कानूनों को सफल बनाने हेतु निर्धारित कार्यक्रमानुसार क्रियान्वित किया जाए।
- भूमि सुधार कानूनों की कानूनी विधियों को सरल बनाया जाए, ताकि कानून बिना अड़चन ठीक से कार्य कर सके।

हमें वर्षों पहले शुरू किया गया भू–सुधारों के अपूर्ण कार्य को पूरा करना होगा और भूमिहीन गरीबों और छोटे किसानों को जिन्हें हरित क्रान्ति से कोई लाभ प्राप्त नहीं हुआ, सशक्त करना होगा। उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण के आधार पर बनाया गया किला बालू के रेत पर खड़ा किया गया है। जब तक भारत के करोड़ों देशवासियों के हाथ में क्रयशक्ति नहीं दी जाती, उदारीकरण कायम नहीं रह सकता। निश्चय ही इसकी सफलता लाभान्वित वर्ग के संगठनों की ताकत और सरकार की इच्छा शक्ति पर निर्भर करेगी। सरकार की इच्छा शक्ति इतनी हो जो भू–सुधार के स्थायी उपाय द्वारा सभ्य समाज के लक्ष्य को प्राप्त कराने के लिए आरम्भिक उथल–पुथल और झटके झेलने की क्षमता रखती हो।

(लेखक जी.एन.मिश्रा कालेज रोहतास, बिहार में अर्थशास्त्र के व्याख्याता हैं)

कच्चे पटसन के लिए 2008–09 में न्यूनतम समर्थन मूल्य

आर्थिक कार्य मंत्रिमंडलीय समिति ने 2008–09 के मौसम के दौरान कच्चे पटसन का प्रति क्विंटल 1250 रुपये न्यूनतम समर्थन मूल्य की घोषणा की। यह तोसा देसी–5 ग्रेड के एक्स–असम पटसन के संदर्भ में है। वर्ष 2007–08 के मौसम के दौरान न्यूनतम समर्थन मूल्य 1055 रुपए प्रति क्विंटल था। इस तरह इसमें 195 रुपए का इजाफा किया गया है।

भारतीय पटसन निगम न्यूनतम समर्थन मूल्य के संबंध में केन्द्रीय नोडल एजेंसी का कार्य करता रहेगा और अगर कोई घाटा होता है तो उसकी भरपाई केंद्रीय सरकार करेगी। (पसूका)

पौष्टिक हरे चारे की उपज कैसे बढ़ाएं

डॉ. अंशु राहल

हमारे देश में कृषि एवं पशुधन एक दूसरे के पूरक हैं। एक अनुमान के अनुसार भारत में इस समय पशुधन की संख्या 492.63 मिलियन है। इस पशुधन की संख्या के हिसाब से विश्व में भारत का प्रथम स्थान है तथा साथ ही साथ दुग्ध उत्पादन (100 मिलियन टन, 2006–07) में भी प्रथम स्थान है, लेकिन उत्पादकता बहुत ही कम है। इसीलिए इनकी कार्य क्षमता एवं दुग्ध उत्पादन बढ़ाने के लिए पशुओं को पर्याप्त मात्रा में हरा चारा उपलब्ध कराना अति आवश्यक है, क्योंकि दूध उत्पादन क्षमता के साथ–साथ पशुओं की सेहत भी ठीक रहती है। दूसरे जायद के मौसम में खाली पड़ी जमीन एवं पानी का भी सही उपयोग हो जाता है। विशेषकर जायद ऋतु में अर्थात् अप्रैल–जून के मास में हरे चारे का अभाव अधिक हो जाता है जो कि हमारे पशुपालकों की एक प्रमुख समस्या है। इस समस्या के समाधान हेतु जायद ऋतु में डेरी फार्मों तथा उन किसानों के यहां पर जहां सिंचाई की सुविधा है कुछ क्षेत्रों में हरा चारा उगा लिया जाता है। परन्तु समूचे देश के कृषि क्षेत्र तथा चारे की समस्या को देखते हुए यह मात्रा नहीं के बराबर है। विशेष कारण यह है कि गर्मियों में दूध का उत्पादन बहुत

जायद चारों में फसलों की तुलनात्मक पौष्टिकता

(प्रतिशत में)

फसल	प्रोटीन	कैल्शियम	फास्फोरस	रेशा	नाइट्रोजन रहित निष्कर्षीय पदार्थ
ज्वार					
60 दिन में कटाई	6.64	0.53	0.24	31.31	49.18
90 दिन में कटाई	4.62	0.32	0.32	34.05	56.10
बाजरा					
60 दिन में कटाई	10.00	0.65	0.31	28.52	40.73
90 दिन में कटाई	5.29	0.50	0.28	33.16	47.58
मक्का					
80 दिन में कटाई	10.20	0.70	0.29	25.00	56.00
मकचरी					
80 दिन में कटाई	12.00	0.65	0.28	19.90	55.30
90 दिन में कटाई	7.30	0.93	0.38	22.90	58.00
लोबिया					
पुष्पावस्था पर कटाई	17.86	......	......	18.21	......
फली बनने पर कटाई	19.93	......	......	18.52	......

कम हो जाता है। अतः दुग्धोत्पादन की कमी को सुधारने हेतु जायद ऋतु में चारा उत्पादन पर पर्याप्त ध्यान देने की आवश्यकता है।

इस समस्या के समाधान हेतु जायद ऋतु में कुछ प्रमुख चारे के रूप में उगाई जाने वाली फसलें निम्नलिखित हैं :

- एक दाल वाले मौसमी चारे (एक वर्षीय) ज्वार, मकचरी, मक्का, सूड़ान घास, बाजरा इत्यादि।
- एक दाल वाले बहुवर्षीय चारेः हाथी घास, पारा घास, नन्दी घास, गिनी घास इत्यादि।

बाजरा चारे की बालियां निकलने की अवस्था

- दो दाल वाले प्रमुख चारेः लोबिया, ग्वार, मोंठ इत्यादि।

वर्गीकरण के बाद यह आवश्यक हो जाता है कि जायद में जो भी चारे उगाये जाएं उनमें वांछित गुण अवश्य होने चाहिए ताकि चारा अच्छी गुणवत्ता और भरपूर मात्रा में मिल सकें।

जायद चारा फसलों के वांछित गुण

- शीघ्र व ऊंची बढ़ने वाली फसलें।
- चारे में प्रोटीन व कार्बोहाइड्रेट पर्याप्त मात्रा में होने चाहिये।
- चारे में विषैले पदार्थों का अभाव हो।
- चारा स्वादिष्ट एवं पाचनशील हो।
- पौधों में पत्तियां अधिक, लम्बी एवं मुलायम तथा तना रसीला हो।
- हरे व सूखे चारे की पैदावार अधिक हो।
- फसलों की जड़ों का विकास अच्छा हो जिससे खाद एवं पानी का उचित उपयोग हो सके।

इस प्रकार उन्नत सस्य विधियां अपनाकर चारा उगाया जाये तो पशुओं को अधिक व पौष्टिक चारा मिल जायेगा। परीक्षणों से यह देखा गया है कि दूध देने वाले एवं बोझा खींचने वाले

पशुओं को अगर प्रोटीन व कार्बोहाइड्रेट युक्त चारा खिलाया जाये तो उनकी कार्यक्षमता एवं दुग्ध उत्पादन क्षमता 25–30 प्रतिशत तक बढ़ायी जा सकती है, साथ ही दाने पर किया जाने वाला खर्च भी कम हो जायेगा। सारणी में जायद चारों में पौषक तत्वों का विवरण दिया गया है जिससे पता चलता है कि उत्पादन के साथ–साथ पोषक तत्व भी उचित मात्रा में हो तो पशुओं को पोषक तत्वों की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध हो जायेगी। जायद ऋतु में पौष्टिक चारों का उत्पादन बढ़ाने के लिये अन्य सस्य विधियों के साथ–साथ समय पर बुवाई और सही ढंग से बुवाई, भूमि एवं उन्नत किस्मों का चुनाव, खाद की संतुलित मात्रा का प्रयोग, सिंचाई एवं कटाई प्रबन्धन करना जरूरी हैं।

जलवायु एवं भूमि

जायद ऋतु के चारों की सामान्य वृद्धि के लिये 25–30 सेन्टीग्रेड तापमान एवं वायुमण्डल में उचित आर्द्रता होना आवश्यक है, तथा भूमि का तापमान 15–20 सेन्टीग्रेड होने पर बीज का अंकुरण अच्छा होता है। जलवायु के साथ–साथ दोमट, बलुई दोमट तथा औसत, भूमि जिसका जल–निकास अच्छा हो तो जायद ऋतु के चारों की पैदावार के लिए अच्छी मानी जाती है। ऊंची–नीची भूमि में सिंचाई करना काफी कठिन होता है इसलिए खेत को समतल करना अति आवश्यक है। भूमि का पी.एच.मान 6.5 से 7.5 तक चारे की पैदावार के लिए सबसे अच्छा माना जाता है।

मक्का एवं लोबिया की मिश्रित चारा फसलें

उन्नत किस्में

जायद ऋतु में चारे की अच्छी पैदावार लेने के लिए जलवायु व भूमि के अनुसार उन्नत किस्मों का उगाना अत्यन्त आवश्यक है। इन दिनों में चारे की वही किस्में लगायी जायें जो कम समय में तैयार हो जाये, खाद की पूरी मात्रा सहन करने की शक्ति रखती हों, अधिक उपज देने वाली हों एवं साथ ही साथ सघन खेती के रूप में आसानी से ली जा सकें। जायद के चारों की ऐसी किस्मों का चुनाव करें जिनमें विषैले पदार्थों की मात्रा कम हो। जैसे–बाजरे में आक्जैलिक अम्ल और ज्वार में हाइड्रोसायनिक अम्ल (धुरीन) की कम मात्रा हो ताकि गर्मियों में हरा–चारा खिलाने पर पशुओं में विषैले पदार्थ का प्रभाव न पड़े। अगर इस दृष्टि से देखा जाये तो ज्वार की ऐसी उन्नत किस्में अनुसंधान द्वारा निकाली जा रही हैं जिनमें हाइड्रोसायनिक अम्ल की मात्रा बहुत ही कम होती है और पशुओं को गर्मियों में हरा चारा आसानी से खिलाया जा सकता है।

खेत की तैयारी

जायद ऋतु में हरा चारा उगाने के लिए खेत की मिट्टी का भुरभुरा होना अति आवश्यक है ताकि बीज का जमाव अच्छा हो सके। प्रायः देखा गया है कि एक या दो बार हैरो या कल्टीवेटर चला कर खेत को बुवाई के लिये तैयार कर लिया जाता है। इसके बाद खेत की अच्छी तरह पलेवा कर देनी चाहिए। 4–5 दिन के बाद जब भी खेत बत्तर में आये या जुताई करने योग्य हो जाये तो हैरो या कल्टीवेटर चला कर, साथ ही पाटा लगाकर खेत की नमी को दबा दिया जाता है, यदि हो सके तो पलेवा करने से पहले खेत को समतल कर लेना चाहिए ताकि गर्मियों में सिंचाई करने में असुविधा न हो। इस प्रकार खेत बुवाई के लिए तैयार हो जाता है।

बीज की मात्रा

विभिन्न चारे की फसलों की बीज की मात्रा उसकी किस्म एवं दाने के आकार पर निर्भर करती है। जैसे ज्वार के लिये बीज की उचित मात्रा, किस्म व दाने के आकार पर निर्भर करती है। इसलिए जायद ऋतु में ज्वार की बीज दर 40–60 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर पर्याप्त होती है। जबकि बाजरे की बीज दर 10–12 कि. ग्रा. प्रति हैक्टेयर उचित मानी जाती है। मकचरी, लोबिया और ग्वार की बीज दर 40–50 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर उचित है। मक्का का बीज मोटा होता है इसलिए मक्का का 40–50 कि. ग्रा. बीज प्रति हैक्टेयर पर्याप्त होता है। घासों में बीज की दर दाने के आकार के अनुसार अलग–अलग होती है, जबकि हाथी घास को जमीन के साथ से सकर एवं ऊपर से तना काटकर एक मीटर की कतारों में पौधे से पौधे की दूरी 50 से. मी. रखकर लगा दिया जाता है और लगाने के बाद खेत में पानी उसी दिन लगा देना चाहिए।

बुवाई का उचित समय एवं सही विधि

जायद ऋतु के चारे की बुवाई का सही समय मध्य फरवरी से मार्च का महीना माना जाता है, अगर इस समय बुवाई में देरी

की गयी तो मई–जून के महीने में हरा–चारा नहीं मिल पायेगा। इसलिए हरे चारे की अच्छी पैदावार लेने के लिए सही समय पर ही बुवाई करें। इस समय चारे वाली फसलों की बुवाई सदैव कतारों में ही करनी चाहिए और यह भी ध्यान रखें कि बीज की गहराई अधिक न हो। परीक्षणों द्वारा यह पाया गया है कि जायद में चारा फसलों की बुवाई 25–30 से.मी. की दूरी पर कतारों में करने एवं बीज की गहराई 3–4 से.मी. रखने से बीज का बचाव अच्छा होता है और चारे की पैदावार भी अधिक मिलती है। वैसे तो चारे की बुवाई जायद ऋतु में बीज छिटक कर करनी ही नहीं चाहिए क्योंकि गर्मी की वजह से भूमि के ऊपर पड़े बीज का जमाव नहीं हो पाता है। जिससे पैदावार पर बुरा असर पड़ता है, अगर मजबूरी में बीज छिटक कर ही बुवाई करनी पड़े तो बीज की मात्रा 15–20 प्रतिशत तक अधिक रखें और बुवाई सुबह के समय ही करें।

मक्का एवं लोबिया की मिश्रित खेती

जायद ऋतु में चारे की मिलवां फसल लेकर हरे चारे की भरपूर पैदावार व प्रोटीन की मात्रा और सूखे चारे की पाचन शीलता बढ़ायी जा सकती है जैसे मक्का–लोबिया मिलाकर बोने पर चारे में प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट की भरपूर मात्रा मिल जाती है। बुवाई की इस विधि में मक्का की एक लाइन और एक लाइन लोबिया की लेकर एवं दो लाइन मक्का और एक लाइन लोबिया लगाकर भरपूर चारा लिया जा सकता है। यह पद्धति उत्तरी भारत के मैदानी भागों में बहुत प्रचलित है।

खाद एवं उर्वरक

दाल वाली फसलों (लोबिया एवं ग्वार) की जड़ों में ग्रन्थियां होती है जो वायुमण्डल की नाइट्रोजन को जमीन में एकत्र करती हैं और बाद में यह नाइट्रोजन पौधों के बढ़वार के लिये काम आती है। इसीलिये इन फसलों में नाइट्रोजन की कम और फास्फोरस की अधिक जरूरत होती है। परीक्षणों द्वारा यह देखा गया है कि 25 कि.ग्रा. नाइट्रोजन और 50 कि.ग्रा. फास्फोरस तत्व प्रति हैक्टेयर के हिसाब से दिया जाए तो हरे चारे की भरपूर पैदावार मिलती है। नाइट्रोजन एवं फास्फोरस की यह सारी मात्रा बुवाई के समय ही दी जाए। उर्वरकों के साथ इन फसलों के बीज को जैविक खाद टीका बुवाई से पहले अवश्य लगायें। टीका लगाने से जड़ों में ग्रन्थियां अधिक बनती हैं। जो फसलों की बढ़वार में सहायक होती है। टीका लगाते समय विशेष ध्यान यह रखना है कि टीका लगाने के बाद बीज को धूप में न सुखा कर छाया में ही सुखाया जाए क्योंकि धूप की गर्मी में टीका के जीवाणु मर सकते हैं।

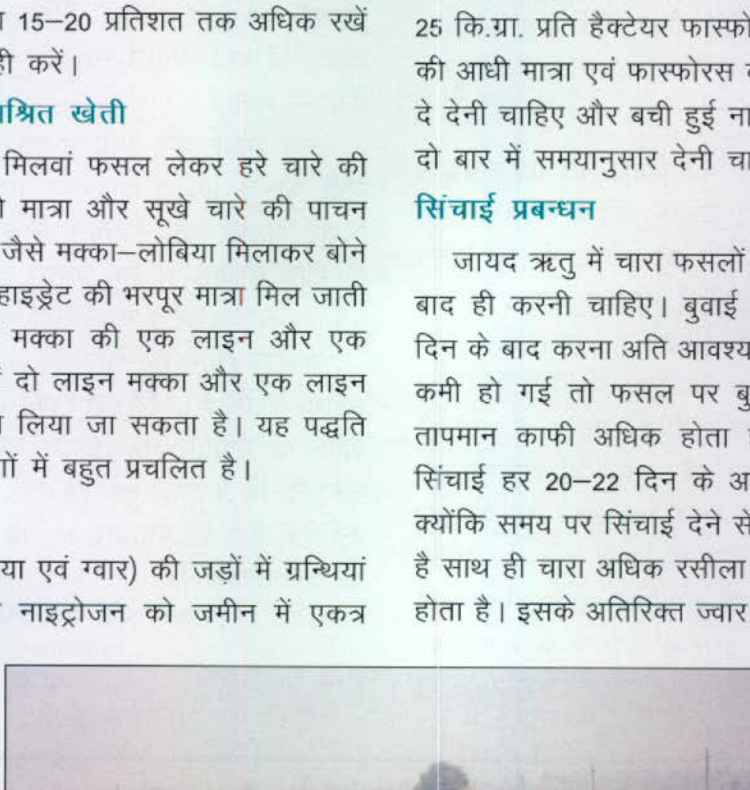

जायद ऋतु में लोबिया एवं मक्का की साथ–साथ खेती

घास कुल वाले चारे जैसे–मक्का, ज्वार, बाजरा, एवं मकचरी को नाइट्रोजन की आवश्यकता दाल वाली फसलों की अपेक्षा अधिक होती है। इसीलिए इन फसलों में 80–90 कि.ग्रा. नाइट्रोजन एवं 35–40 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर फास्फोरस की आवश्यकता होती है। जबकि अन्य घासों में 50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर फास्फोरस पर्याप्त होता है। नाइट्रोजन की आधी मात्रा एवं फास्फोरस की पूरी मात्रा बुवाई के समय ही दे देनी चाहिए और बची हुई नाइट्रोजन की आधी मात्रा एक या दो बार में समयानुसार देनी चाहिए।

सिंचाई प्रबन्धन

जायद ऋतु में चारा फसलों की बुवाई सदैव पलेवा करने के बाद ही करनी चाहिए। बुवाई के बाद पहली सिंचाई 25–26 दिन के बाद करना अति आवश्यक है क्योंकि इस समय नमी की कमी हो गई तो फसल पर बुरा प्रभाव पड़ता है। गर्मियों में तापमान काफी अधिक होता है इसलिए दूसरी और तीसरी सिंचाई हर 20–22 दिन के अन्तराल पर करते रहना चाहिए, क्योंकि समय पर सिंचाई देने से चारे का उत्पादन तो बढ़ता ही है साथ ही चारा अधिक रसीला होने के कारण अधिक स्वादिष्ट होता है। इसके अतिरिक्त ज्वार की पत्तियों व तनों में धुरीन की मात्रा भी काफी कम होती है। अगर बहु कटाई वाली ज्वार लगा रखी है तो 60–65 दिन पर पहली कटाई करके तुरन्त सिंचाई कर देनी चाहिए। इसके बाद दूसरी कटाई के बाद अगर वर्षा न हो तो भी सिंचाई करना न भूलो। इस प्रकार दाल वाले चारे और मक्का एवं बाजरा में 2–3 सिंचाइयों और ज्वार में समयानुसार 4–5 सिंचाइयों की आवश्यकता पड़ती है।

निराई – गुड़ाई

वैसे तो जायद ऋतु में चारा फसलों की शीघ्र बढ़वार होने के कारण फसल खरपतवारों को दबा लेती है। लेकिन गर्मी के दिनों में प्रारम्भ में खरपतवार आ जाते हैं जो फसल को काफी नुकसान करते हैं। इसलिए खरपतवार रोकने के लिये पहले तो खेती की जुताई अच्छी प्रकार करनी चाहिए। अगर फिर भी खेत में अधिक खरपतवार दिखाई दें तो 30–35 दिन बाद एक निराई–गुड़ाई करके खेत को खरपतवार रहित बना देना चाहिए।

लोबिया चारे की लहलाती फसल

कटाई प्रबन्धन एवं उपज

जायद ऋतु की चारा फसलों की कटाई का उपज बढ़ाने में बहुत योगदान है। इसलिए कटाई सदैव समय पर ही करनी चाहिए। समय के बाद चारा की कटाई में देरी करने से चारे की गुणवत्ता कम हो जाती है और पशु चारा चाव से नहीं खाते, क्योंकि चारे में रेशा अधिक हो जाता है। समय से पहले कटाई करने से एक तो पैदावार कम मिलती है, जो पशुओं के लिये अति हानिकारक होती है। मक्का के चारे की कटाई भुट्टा बनने पर करनी चाहिये। ज्वार, बाजरा, मकचरी और लोबिया की कटाई, फल आने पर करने से पैदावार अधिक एवं पौष्टिक चारा मिलता है। यदि एक से अधिक कटाई करनी है तो पहली कटाई बुवाई के 50–55 दिन बाद एवं दूसरी और तीसरी कटाई 35–40 दिन के अन्तराल पर करने से चारे की पैदावार तो अधिक मिलती ही है साथ ही साथ चारे में पौष्टिकता अच्छी पायी जाती है। बहु कटाई वाली चारा फसलों में कटाई करते समय यह ध्यान रहे कि कटाई सदैव ही जमीन से 7–10 से.मी. ऊंचाई से करें ताकि फूटाव वाली कलियां न कट पायें और फूटाव अच्छा हो। इसी प्रकार बहुवर्षीय या बहु कटाई वाली घासों की भी कटाई सही समय पर सही ऊंचाई पर करें ताकि पौष्टिक चारा मिल सके। प्रत्येक कटाई के बाद नाइट्रोजन खाद की मात्रा तथा हल्की सिंचाई देना न भूलें।

इस प्रकार यदि सभी उन्नत सस्य विधियां अपनायी जायें, सही उन्नत किस्म का बीज प्रयोग किया जाये, समय पर निराई–गुड़ाई, खाद प्रबन्धन, सिंचाई का उचित प्रबन्ध एवं साथ ही साथ मिश्रित–मिलवां फसल द्वारा पौष्टिक चारे की भरपूर पैदावार जायद ऋतु में ली जा सकती है।

फसलानुसार हरे चारे की प्रति हैक्टेयर औसतन पैदावार अलग–अलग है। जैसे ज्वार की औसतन पैदावार 60–70 टन, बाजरे की पैदावार 40–45 टन, मक्का की पैदावार 40–45 टन, मकचरी की पैदावार 60–70 टन, लोबिया की पैदावार 30–35 टन एवं मोंठ की पैदावार 15–18 टन प्रति हैक्टेयर तक प्राप्त की जा सकती है।

(लेखिका पशु पोषण विभाग, पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय, पंतनगर में सहायक प्रोफेसर हैं।)
ई–मेल : anshurahul@rediffmail.com

जैव ईंधन में ग्रामीण विकास के लिए अहम, रोजगार की संभावनाएं

बायो–डीजल एक क्षमतावान ऊर्जा है और उसके आधार पर ग्रामीण इलाकों में रोजगार के अवसर पैदा हो सकते हैं। ग्रीन हाउस प्रभाव को कम करने के लिए जैव–ईंधन एक अच्छा विकल्प हो सकता है और इस क्षेत्र में रोजगार सृजन व ग्रामीण विकास की अपार संभावनाएं हैं। मरु विकास कार्यक्रम के अंतर्गत ग्रामीण विकास मंत्रालय ने गांवों में जटरोफा की खेती को प्रोत्साहन देने के लिए पिछले साल 50 करोड़ रुपए का प्रावधान किया था।

पेट्रो ईंधन की कीमतों में तेजी से इजाफा हो रहा हो और जलवायु पर प्रभाव भी पड़ रहा हो तो ऐसे समय में जैव–ईंधन बेहतर विकल्प हो सकता है। किसानों और खेतिहारों के लिए बेहतर वृक्षारोपण सामग्री, उचित परती जमीन, वर्षा आदि अहम पहलू हैं ताकि वे गैर–खाद्य तिलहन की खेती कर सकें। (पसूका)

विटामिन–सी से भरपूर अमरूद

डॉ. राकेश कुमार प्रजापति एवं डॉ.श्यौराज सिंह

अमरूद हमारे देश का एक अत्यंत ही लोकप्रिय फल है। अमरूद की खेती विभिन्न प्रकार की मृदाओं, विभिन्न प्रकार की मौसमी दशाओं में भी की जा सकती है। इसके फल पूरे वर्ष के दौरान उपलब्ध रहते हैं। दूसरे फलों की अपेक्षा यह सस्ता होने के कारण सब लोग इसे खरीद सकते हैं। इसलिये इसको "गरीबों का सेब "भी कहा जाता है। भारत में इसकी खेती उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल एवं गुजरात राज्यों में प्रमुखता से की जाती है। सबसे अच्छे गुणों वाले अमरूद उत्तर भारत में उगाए जाते हैं। उत्तर प्रदेश प्रथम स्थान पर लगभग 50 प्रतिशत अमरूद पैदा करने वाला राज्य है। जबकि दूसरे स्थान पर बिहार आता है। इसमें विटामिन सी लगभग 100 से 260 मिली ग्राम प्रति 100 ग्राम फल में पाई जाती है, जो बार–बार डोस चेरी और आंवले को छोड़ अन्य सभी फलों से अधिक है। इसके प्रति 100 ग्राम फल में 76 प्रतिशत प्रोटीन, 0.2 ग्राम वसा, 14.5 ग्राम कार्बोहाइड्रेट 6.9 ग्राम रेशा, 0.8 ग्राम खनिज लवण, 0.01 ग्राम कैल्शियम, 0.04 ग्राम फास्फोरस, 0.1 ग्राम लौह, 66 कैलोरी ऊर्जा, 30 मिली ग्राम विटामिन बी– 1, तथा 0.2 मिली ग्राम निकोटिनिक अम्ल पाया जाता है।

अमरूद और स्वास्थ्य

- अमरूद का सेवन स्मरण शक्ति बढ़ाता है। जिनकी याददाश्त कमजोर हो, उन्हें अमरूद का सेवन करना चाहिये। स्कूल–कॉलेज में पढ़ने वाले बच्चों के लिये, यह विशेष लाभदायक है। यदि अजीर्ण की शिकायत हो तो अमरूद के पत्तों का रस निकाल लें तथा दो चम्मच शक्कर मिलाकर प्रातः सेवन करें।

अमरूद का बगीचा अतिरिक्त आय का साधन

- यदि बच्चों के पेट में कीड़े पड़ गये हैं, तो अमरूद में शहद और सेंधा नमक मिलाकर खिलाने से पेट के कीड़े खत्म हो जाते हैं। अमरूद का सेवन रक्त को शुद्ध बनाता है। इसके परिणामस्वरूप रक्त विकार से उत्पन्न कील–मुहांसे, फोड़े–फुंसियां आदि नहीं होते और यदि हो तो नष्ट हो जाते हैं।
- यदि अर्श रोग से पीड़ित हैं, तो यह नुस्खा आजमाएं, पके हुए अमरूद में एक छेद करें तथा उसमें आधा चम्मच अजवाइन चूर्ण भर दें तथा छेद को बन्द करके, गर्म रेत में दबा दें। दस मिनट बाद रेत से बाहर निकाल कर सेवन करें। यदि मुंह में छाले हो गये हों, तो अमरूद के ताजे पत्तों का रस निकालकर तथा उसमें थोड़ा सा कत्था मिलाकर छालों पर लगायें।
- यदि उन्माद का प्रकोप ज्यादा हो तो रोगी को सुबह–शाम पके हुए लाल अमरूद खिलाएं। जिनके शरीर में खून की कमी हो या जो एनीमिया के शिकार हों, उन्हें रोजाना अमरूद का सेवन करना चाहिये। लौह तत्व की प्रधानता होने की वजह से यह रक्त निर्माण में सहायक होता है।
- भांग का नशा उतारने की अचूक दवा है अमरूद। नशा चढ़ने के बाद अमरूद खिला दें, नशा तत्काल उतर जायेगा। यदि पेट में गैस या वायु बनती है तो अमरूद पर सेंधा नमक मिलाकर सेवन करने से लाभ होता है।
- अमरूद का सेवन खांसी से भी निजात दिलाता है। इसके लिये इसे रेत में भूनकर खाना चाहिये। जुकाम होने पर आग में अमरूद को भून कर तथा नमक लगाकर खाना चाहिए।
- यदि कील–मुंहासे की शिकायत है तो पानी में अमरूद के पत्ते उबाल कर उसमें थोड़ा सा नमक मिलाकर चेहरे पर लगाना चाहिए।
- अमरूद शरीर की रोग प्रतिरोधक शक्ति बढ़ाता है। विटामिन सी होने से यह शरीर से विजातीय तत्वों को बाहर निकालकर शरीर की वृद्धि करता है।
- पेट संबंधी विकारों को दूर करने के लिए अमरूद का सेवन करें। इसके बीजों में विटामिन बी की प्रधानता होती है, जो पाचन तन्त्र को सक्रिय बनाता है। यदि मंदाग्नि की शिकायत हो या भोजन के प्रति अरूचि उत्पन्न हुई हो तो अमरूद पर थोड़ा–सा सेंधा नमक डाल कर सेवन करें।
- अतिसार की स्थिति में अमरूद के पेड़ की जड़ को उबाल कर उसका काढ़ा बनाकर सेवन करने से लाभ होता है। यदि माइग्रेन का दर्द सताये तो अमरूद को पीस कर मस्तिष्क पर लेप करने से राहत मिलती है।

• दांतों और हड्डियों के निर्माण और उनकी मजबूती के लिये, कैल्शियम व फास्फोरस की आवश्यकता से इंकार नहीं किया जा सकता। अमरूद में ये दोनों ही खनिज पर्याप्त मात्रा में मौजूद होते हैं। इसलिये ये दांतों तथा हड्डियों की मजबूती बढ़ाते हैं। इसी प्रकार यह स्कर्वी रोग से भी बचाता है। अगर पेट दर्द हो रहा है, तो अमरूद के सेवन से लाभ होता है। अगर वायु विकार से पीड़ित है तो अमरूद पर सेंधा नमक लगाकर सेवन करने से लाभ होता है।

अमरूद एक स्वादिष्ट फल है, जिसका उगाना अत्यन्त ही सरल है। यह गृह उद्यानों में भी लगाया जा सकता है। भारत में अमरूद सत्रहवीं शताब्दी में लाया गया है। भारत में इसका क्षेत्रफल अनुमानतः 93,937 हेक्टेयर है। इसका उत्पादन 10,95,309 टन है।

अमरूद की सरल व लाभप्रद बागवानी से लोग परिचित होने लगे हैं। अमरूद की खेती का क्षेत्रफल अधिक बढ़ने की संभावना निम्न कारणों से और भी अधिक हो जाती है।

- मिट्टी और जलवायु के प्रति अमरूद की विस्तृत अनुकूलता।
- कम खर्च पर सरलता से रोपण।
- प्रतिवर्ष अच्छी फसल।
- फलों का अधिक पोषण महत्व।

किस्में

इलाहाबाद सफेदा – फल अण्डाकार, छिलका चिकना, चमकदार तथा पीला होता है। गूदा सफेद, मुलायम स्वादिष्ट एवं मनमोहन होता है जिसमें बीज की मात्रा कम पाई जाती है। यह उत्तर प्रदेश की प्रमुख किस्म है जिसकी खेती देश के विभिन्न भागों में विस्तृत क्षेत्रफल में की जाती है। इसके वृक्ष लम्बे, तथा पत्तियां चौड़ी होती हैं।

चित्तीदार – इसके फल गोल, अण्डाकार, छोटे, चिकने एवं हल्के पीले रंग के होते हैं जिन पर लाल चित्तियां पाई जाती है। गूदा मुलायम, सफेद, सुगन्धित व स्वादिष्ट होता है। इसकी भण्डारण क्षमता अधिक होती है तथा फलत सामान्य होती है।

लखनऊ–49 (सरदार अमरूद) – इसके फल मध्यम से बड़े गोला, खुरदरी सतह वाले एवं पीले रंग के होते हैं। इसका गूदा मुलायम, सुवासयुक्त सफेद एवं खटास लियें हुए अत्यन्त स्वादिष्ट होता है। इसमें बीजों की संख्या अधिक, आकार बड़े एवं कड़े होते हैं।

एपिल कलर – सेव की तरह इसका रंग एवं आकार होता है। इसमें फल कम लगते हैं। इसके पेड़ फैलने वाले व मध्यम आकार के होते हैं। फल छोटे गोल, चिकने व आकर्षक होते हैं। इसका छिलका गहरे हरे रंग या गुलाबी रंग का होता है। फलों का गूदा मुलायम सफेद व स्वादिष्ट होता है।

विटामिन सी से भरपूर अमरूद

बनारसी सुर्खा – इसका पेड़ ऊपर की ओर बढ़ने वाला तथा अधिक शाखाओं वाला होता है। इसमें बहुत अधिक फलत लगते है। इसके फल नाशपाती की तरह सतह खुदरी, रंग पीला, गूदा लाल, स्वादिष्ट एवं बीज मध्यम आकार के होते हैं।

बेहट कोकोनेट – उ.प्र. के सहारनपुर जिले के बेहट काकोनेट नामक स्थान से विकसित की गयी किस्म है। इसमें शाखायें एवं कलर अधिक होती है। फल गोल, अण्डाकार, बड़े खुरदरी सतह वाले, हरे–पीले रंग के होते हैं।

सुप्रीम माइल्ड फलेस्ड – जैली बनाने के लिये यह उत्तम किस्म है, क्योंकि पेक्टिन एवं खरास की मात्रा अधिक होती है। पेड़ ऊपर की तरफ बढ़ने वाले अधिक शाखायुक्त एवं ज्यादा फलते हैं। फल मध्यम आकार के लम्बे अण्डाकार एवं खटास युक्त, सुवास वाले होते हैं जिसमें बीज की मात्रा मध्यम होती है।

बेदाना – यह बीज रहित किस्म है, जिसमें पेड़ बड़े एवं बहुत अधिक शाखायें देने वाले होते हैं। इसमें फलत कम होती है।

जलवायु एवं मृदा

अमरूद की खेती ऐसी जगह पर की जा सकती है जहां पर सूखी मर्यादित सर्दी तथा गर्मी 100 सेमी या कम वर्षा होती है, जो जून से सितम्बर तक वितरित रहती है। अमरूद का पौधा सूखी दशों से प्रभावित नहीं होता है तथा गर्मियों में 96.1 सेंटी ग्रेड तापक्रम पर खड़ा रह सकता है। लेकिन यह पाले से शीघ्र ही प्रभावित हो जाता है। इसकी खेती हल्की रेती दोमट मिट्टी में जो गुजरात में मिलती है, की जाती है, मध्य प्रदेश में अधिक जल–धारण करने वाली चिकनी मिट्टी में, उत्तरी भारत में गंगा नदी के पास के मैदानों में गहरी एवं शक्तिशाली जलोढ़ मिट्टी में तथा दक्षिण की उथली चट्टानीय भूमि में इसकी खेती की जाती है। अम्लीय एवं क्षारीय मिट्टियों में भी इसकी खेती सफलतापूर्वक की जाती है। गहरी एवं प्रागरिक पदार्थ से परिपूर्ण बलुई दोमट मिट्टी इसकी खेती के लिये सबसे उपयुक्त समझी जाती है।

रोपण

अमरूद को बीज द्वारा या वानस्पतिक प्रसारण द्वारा रोपण किया जाता है। बीज द्वारा पौध तैयार करने के लिये अच्छे पके हुये फलों को लेना चाहिये। फलों के बीज वाले भाग को राख से रगड़कर या हल्के अम्ल के घोल द्वारा बीजों को साफ करके सुखा

लिया जाता है। एक वर्ष से अधिक समय पुराने बीजों को नहीं बोना चाहिये। वर्षा ऋतु में उठी हुई क्यारियां बनाकर व तैयार करके बीजों को 2.5 सेमी दूरी देकर पंक्तियों में बो दिया जाता है। पंक्ति की दूरी 7.5 में 10 सेमी रखी जाती है। जब पौधे 8–10 सेमी लम्बे हो जायें तो उनको 22.5 सेमी आपसी फासला देकर कम दिया जाता है।

वानस्पतिक विधि में अमरूद को शीघ्र प्रसारित करने का स्टूलिंग सबसे अच्छा तरीका है। इसमें पौधे को 15 सेमी की ऊंचाई से काटकर नयी निकाली शाखाओं में छल्ला बनाकर मिट्टी में दबा देते हैं। दबे भाग से जड़े निकल आती हैं। जब पौधा बन जाता है तो काटकर मिट्टी के साथ उठाकर अलग लगा दिया जाता है। पौधे लगाने के लिये 60×60×60 सेमी आकार के गड्ढे तैयार किये जाते है। इन गड्ढों को 15 किग्रा अच्छी सड़ी गोबर की खाद तथा मिट्टी के मिश्रण से भरकर वर्षा ऋतु में पौधों को लगा दिया जाता है। पौधों की दोनों तरफ से आपसी दूरी 4.5 से 7.5 मीटर तथा औसतन दूरी 6 मीटर रखी जाती है।

कृषि क्रियाऐं

अमरूद की खेती में समय पर सिंचाई, निदाई–गुढ़ाई तथा खाद देना चाहिये। पौधों में चारों तरफ पाले बनाये जाते हैं तथा इन्हीं पालों में जाड़ों में 15–20 दिन एवं गर्मियों में एक सप्ताह में अन्तर से सिंचाई करते हैं। वर्षा ऋतु के प्रारंभ में 11.25 किलो ग्राम सड़ी हुई गोबर की खाद देनी चाहिये। प्रति वर्ष के हिसाब से इतना ही खाद को चार वर्ष तक बढ़ाते रहना चाहिये। अगर मिट्टी अधिक कमजोर होती है तो पौधों के बीच मटर, उर्द, मूंग बरसीम पैदा की जानी चाहिये। जबकि अच्छी मिट्टी वाले बागों में फूलगोभी, मूली या गाजर पैदा की जा सकती है।

अन्तर्वर्ती फसलें

अमरूद का रोपण 6 से 8 मी. दूरी पर किया जाता है तथा अमरूद में व्यावसायिक रूप से फलन 4–5 वर्ष में प्रारंभ होता है। पेड़ों के भी आपस में मिलने में अधिक समय लगता है, ऐसे में बीच की भूमि का उपयोग कम बढ़वार वाली सब्जियां, दालें आदि उगाकर अतिरिक्त आय प्राप्त की जा सकती है। अन्तवर्ती फसलें मुख्य रूप से फसल से 0.5 से 1 मी. छोड़कर लेते हैं। इसके लिए अतिरिक्त खाद, उर्वरक इत्यादि की व्यवस्था करें।

खाद एवं उर्वरक

व्यावसायिक खेती के लिए यह आवश्यक है कि अधिक से अधिक उत्पादन लिया जाये और यह बिना खाद उर्वरक के संभव नहीं है। अमरूद के लिए खाद एवं उर्वरक की आवश्यकता किस्म, पौधे की उम्र, भूमि की उर्वरता, जलवायु, प्रबंधन विधि आदि पर निर्भर करती है।

पोटाश और फास्फोरस की सम्पूर्ण मात्राएं वर्ष में एक बार विशेष रूप से नवम्बर में देना अच्छा रहता है। नत्रजन की आधी मात्रा नवम्बर और आधी मात्रा जुलाई में देना चाहिए। वर्ष में तीन बार (फलन से पहले, फल टिकने के बाद और फल वृद्धि एवं विकास) पर मैगनीशियम, जिंक और बोरान को मिश्रित रूप से छिड़काव, प्रत्येक का 0.3 प्रतिशत घोल का छिड़काव करने से अच्छी उपज मिलती है।

कटाई छटाई (कृन्तन)

कृन्तन वह क्रिया है, जिसमें अतिरिक्त शाखाओं को पौधे से काट कर हटा दिया जाता है जिससे पैदावार अधिक होती है। जब पौधे अधिक पुराने एवं आर्थिक रूप से बेकार हो जाते हैं तो मूल कृन्तन की क्रिया की जाती है। अमरूद में वर्ष में तीन बार फूल तथा फलत होती है। इसमें 320–500 फल प्रति पौधा नवम्बर से जनवरी तक फलत मिलती है। इसमें 100 से 300 फल प्रति पौधा फलत मिलती है। इसका समय जून–जुलाई से सितम्बर तक होता है। फरवरी से अप्रैल तक फलत 200–250 फल प्रति फल पौधा मिलती है।

मृग बहार में अच्छी फसल लेने के लिये अम्बे बहार से फूलों को गिरा देना चाहिये क्योंकि इस बहार के फल प्रायः असमान आकृति वाले, आकार में छोटे, कम भी है व रोग ग्रस्त पैदा होते हैं। फूलों को गिरने के लिये नेप्थलीन एसिटिन एसिड 100 मिली ग्राम रसायन 1 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करते हैं।

कीट एवं रोग की रोकथाम

छिलका खाने वाला तना छेदक – यह कीट पौधों का छिलका खाता है तथा तने में छेद बनाकर अन्दर घुस जाता है। इसकी

खाद एवं उर्वरक की मात्रा

आयु (वर्ष) कि.ग्रा.	गोबर की खाद (ग्राम)	नत्रजन (ग्राम)	फास्फोरस (ग्राम)	पोटाश (ग्राम)
1–2	10–15	60	30	30
3	20	120	60	60
4	30	180	90	90
5	40	240	120	120
6	50	300	150	150
7 और अधिक	60	360	180	180

रोकथाम के लिये प्रभावित भाग को साफ करके, छेद में पतले तार की सहायता से क्लोरोफार्म से भीगी रूई को भर देते हैं। पुनः उसे गीली मिट्टी से बन्द कर देते हैं अथवा छिद्रों में पेट्रोलियम या 40 प्रतिशत फार्मलीन डालना चाहिये या पैराडाई क्लोरी बैंजीन का चूर्ण से भरकर उनको चिकनी मिट्टी से बन्द कर देना चाहिये।

फल मक्खी – बरसात के दिनों में यह मक्खी फलों को हानि पहुंचाती है। यह फल के अन्दर अण्डे देती है जिनसे मैगर पैदा होकर गूदे को फल में अन्दर से खाते हैं। ये फल इनसे प्रभावित होकर गिरने लगते हैं। ग्रसित फलों को नष्ट करना तथा 0.03 प्रतिशत फास्फोमिडान का छिड़काव लाभकारी पाया गया है।

कैल्शियम से युक्त कच्चे अमरूद

मिली बग – ये कीड़े नयी कोमल शाखाओं पर चिपके रहते हैं तथा रस चूसते हैं जिससे फूल पैदा नहीं होते हैं। इसके नियंत्रण के लिये एक भाग निकोटिन सल्फेट 600 भाग पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिये।

सूखा रोग – उत्तर प्रदेश के मध्य एवं पूर्वी जिलों में इसका प्रकोप अधिक देखा जाता है। यह रोग एक कवक के द्वारा होता है। सर्वप्रथम इसका लक्षण वर्षा ऋतु में दिखाई देता है। रोगी पेड़ों की पत्तियां भूरी हो जाती है तथा पेड़ मुरझा जाते हैं। प्रभावित पेड़ों की डालियां एक–एक करके सूखने लगती हैं और अंत में पूरा पेड़ सूख जाता है। इसकी रोकथाम के लिये कार्बोडाजिक (3 ग्राम दवा) प्रति लीटर पानी में घोलकर गढ़ढे में डालना चाहिये या ट्राइकोडरमा नामक फफूंदी को सड़ी हुई गोबर की खाद में मिलाकर गढ़ढों में डालना चाहिये।

• **कालव्रण (ऐन्थ्रक्नोज)**– यह भी कवक से होने वाला रोग है। इसके प्रभाव से फलों पर काले खुरदरे धब्बे बन जाते हैं तथा फल प्रारम्भिक अवस्था में ही गिरकर सड़ जाते हैं। कभी–कभी रोगग्रस्त फल बहुत बड़े हो जाते हैं। रोगी फलों को तोड़कर जला देना चाहिए तथा 2–3 ग्राम मैकोजेब प्रति लीटर पानी में फल लगने के बाद 10–15 दिन के अन्तर पर 4–5 छिड़काव करने से इसकी रोकथाम की जा सकती है।

कैंकर– यह रोग वर्षा ऋतु की फसल पर अधिकतर पैदा होता है। इसमें फलों पर गोल, काले कठोर–धब्बे पड़ जाते हैं। 4:4:50 बोर्डो मिश्रण (बुझा हुआ चूना–नीला थोथा–पानी) का छिड़काव दो माह के अन्तर पर करना चाहिए। कॉपर ऑक्सीक्लोराइड के 0.4 प्रतिशत घोल अथवा जिरम के 0.4 प्रतिशत घोल को किसी स्ट्रिकर जैस टेनेक के साथ अगस्त से नवम्बर में 15 दिन के अन्तर से छिड़काव करें।

फलों का सड़ना–यह कवक रोग वातावरण में अधिक नमी के कारण फलों पर होता है। फलों पर पहले पानी भरे धब्बे दिखलाई पड़ते हैं तथा बाद में पूरे फल पर फैलकर उसे गला देते हैं। नियंत्रण के लिये 4:4:50 बोर्डो मिश्रण, या आक्सीक्लोराइड 5.0 प्रतिशत या डाइयेन 2–78 0.02 प्रतिशत के घोल के रूप में पौधों पर छिड़काना चाहिये।

(लेखक कृषि विज्ञान केन्द्र में वरिष्ठ वैज्ञानिक हैं।
ई–मेल : rkiipr@yahoo.com

हमारे आगामी अंक

अप्रैल 2008 अंक वार्षिक बजट (वर्ष 2008–09) व आर्थिक नीतियों पर केंद्रित है।

मई 2008 अंक ग्रामीण पर्यटन पर केंद्रित है।

जून 2008 अंक जल का ग्रामीण जीवन में महत्व पर आधारित होगा।

इसके अतिरिक्त ग्रामीण विकास, कृषि व स्वास्थ्य से संबंधित लेख भी इनमें शामिल किए जाएंगे। उपरोक्त विषयों पर सारगर्भित लेख (आम बोलचाल की भाषा में) व फोटो हमें भेजे जा सकते हैं। पत्रिका के प्रकाशन की तिथि आगामी माह से एक माह पूर्व होती है। अतः प्रकाशन सामग्री एक माह पूर्व हमें मिल जानी चाहिए।

प्रकाशन विभाग के विक्रय केंद्र : दिल्ली सूचना भवन, सीजीओ, काम्प्लैक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली–110003, हॉल न. 196, पुराना सचिवालय, दिल्ली– 110054; **मुंबई** 701 बी विंग, 7वीं मंजिल, केंद्रीय सदन बेलापुर, नवी मुंबई– 400614; **कोलकाता** 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कोलकाता–700069; **चेन्नई** 'ए' बिंग, राजाजी भवन, बेसेंट नगर, चेन्नई– 600090; **तिरुअनंतपुरम** प्रेस रोड, निकट गवर्मेंट प्रेस, तिरुअनंतपुरम – 695001; **हैदराबाद** ब्लॉक नं. 4 प्रथम तल, गृहकल्प काम्प्लैक्स, एम.जी. रोड, नामपल्ली, हैदराबाद–500001; **बंगलौर** प्रथम तल, एफ विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला, बंगलौर –560034; **पटना** बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना–800004; **लखनऊ** हाल नं.1, द्वितीय तल, केंद्रीय भवन, सैक्टर एच, अलीगंज, लखनऊ–226024; **अहमदाबाद** अम्बिका काम्प्लैक्स, प्रथम तल, पालदी, अहमदाबाद– 380007; **गुवाहाटी** हाउस नं. 07, चेनीकुथी , न्यू कालोनी, के.के.बी. रोड, गुवाहाटी – 781003.

30 जनवरी को बापू के बलिदान दिवस पर उन्हें श्रद्धा-सुमन

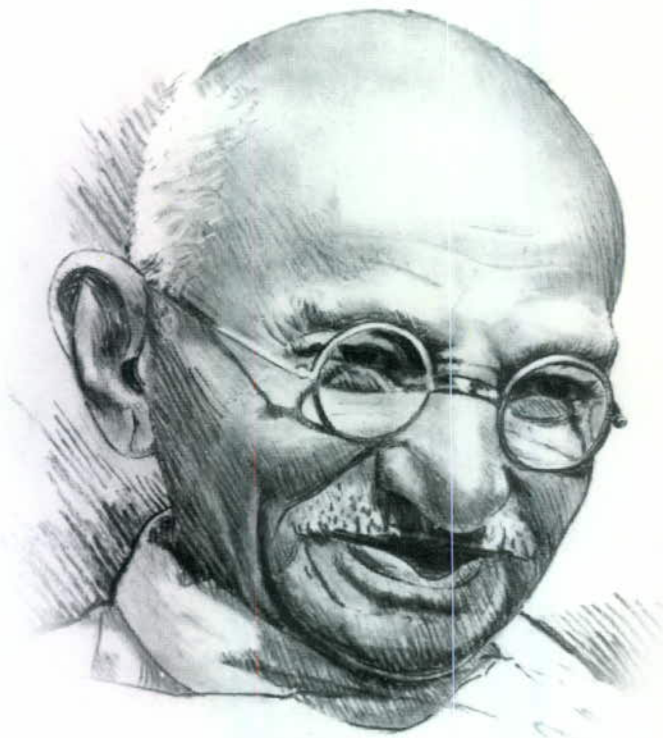

"…..मेरा विश्वास है और मैं हर बार यही कहूंगा
कि भारत चंद शहरों में नहीं
बल्कि गांवों में बसता है….."

महात्मा गांधी

ग्राम स्वराज **उनका स्वप्न था**
आइए, इसे साकार करने का पुनःसंकल्प लें

सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार

davp22202/13/0140/0708

KH-03/08/1

आर. एन./708/57
डाक–तार पंजीकरण संख्या : डी.एल. (एस)–05/3164/2006–08
आई.एस.एस.एन. 0971–8451, पूर्व भुगतान के बिना आर.एम.एस.
दिल्ली में डाक में डालने के लिए लाइसेंस : यू (डी.एन.)–55/2006–08

R.N./708/5
P&T Regd. No. DL (S)-05/3164/2006-0
ISSN 0971-8451, Licenced under U (DN)-55/2006-0
to Post without pre -payment at R.M.S. Delh

प्रकाशक और मुद्रक : वीना जैन, अपर महानिदेशक (प्रभारी), प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्पलेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली-110003.
मुद्रक : अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स प्रा. लि., डब्ल्यू-30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया-II, नई दिल्ली-110 020 : वरिष्ठ संपादक : कैलाश चन्द मीना